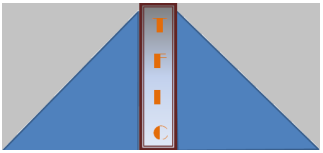

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला···पुष्प नं० २

नेमिनाथ-चरित्र

—:()•():—

लेखक :—
पण्डित काशीनाथ जैन

प्रकाशक :—
पण्डित काशीनाथ जैन
अध्यक्ष :—आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला
७, खेलात घोष लेन, कलकत्ता-६
पो० बंबोरा (उदयपुर-मेवाड़)

[सन् १९५६] [मूल्य १०) दस रुपये]

(सर्वाधिकार स्वाधीन)

आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-मालाके माननीय

आजीवन-संरक्षक और सभासदों की

नामावली

संरक्षक :—

जीयागंज-बालुचर (मुर्शिदाबाद) निवासी लक्ष्मीपतसिंहजी छत्रपतसिंहजीके पुत्र-रत्न परम श्रद्धेय धर्म-निष्ठ दानवीर श्रीमान् माननीय बाबू

श्री श्रीपतसिंहजी दूगड़

आजीवन सभासद्

श्रीयुत् बाबू वीरेन्द्र कुमार सिंहजी, अशोक कुमार सिंहजी सिंघी, कलकत्ता ।

,, ,, लक्ष्मीचन्द्रजी धन्नालालजी करनावट, कलकत्ता ।

,, ,, छन्नालालजी रिखबदासजी करनावट, कलकत्ता ।

,, ,, रावतमलजी भैरूँदानजी सुराणा, बीकानेर ।

,, ,, चान्दमलजी जवानमलजी मुणोत, शोलापुर ।

,, ,, हजारीमलजी नथमलजी रामपुरिया, बीकानेर ।

,, ,, रायसाहब मन्नालालजी दयाचंदजी पारख, कलकत्ता ।

Printed by—S. K. MANNA
Bholanath Printing Works, 13, Rajendra Sen Lane, Calcutta-6

जैन शास्त्रोंमें ज्ञानका जो अटूट खजाना भरा पड़ा है। उसके चार हिस्से किये गये हैं। द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, कथानुयोग और चरितानुयोग।

द्रव्यानुयोग दर्शनको कहते हैं, इससे वस्तुओंके वास्तविक स्वरूपका भली-भाँति ज्ञान मिलता है। दूसरा चरितानुयोग है, इसमें महत् पुरुषोंके जीवन-चरित्र और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाली शिक्षायें भरी हुई हैं। तीसरा गणितानुयोग है, इसमें गणित और ज्योतिषके समूचे विषय भरे हुए हैं। और चौथा चरण करणानुयोग कहलाता है, इसमें चरण सत्तरी और करण सत्तरीका विवेचन और तत्सम्बन्धी विधियाँ दी गयी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ चरितानुयोगका है। इस प्रकारके ग्रन्थोंसे अल्प बुद्धि मनुष्य भी एक समान लाभ ले सकते हैं। इसीसे प्राचीन कालके यति और आचार्योंने कथानुयोगके अनेक ग्रन्थ रच डाले हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उसी ढंगका है।

इसमें भगवान नेमिनाथ स्वामीके चरित्रके अतिरिक्त कृष्ण, बलराम, वसुदेव, कंस, जरासन्ध, देवकी, रुक्मिणी- सत्यभामा और राजिमती प्रभृतिका भी चरित्र अंकित किया गया है। जो हरएक मनुष्यके पढ़ने सुनने और मनन करने योग्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थके मूल लेखक गुणविजयजी हैं, जिन्होंने इस

ग्रन्थको १६६८ में लिखा है। इसकी मूल भाषा गद्य संस्कृत है, और इसीके आधार पर हमने इस ग्रन्थको लिखा है। आशा है, हमारे प्रेमि पाठकोंको हमारा यह उद्योग प्रिय प्रतीत होगा। यदि हमारे पाठक इसे पसंद कर हमें उत्साहित करेंगे तो भविष्यमें अन्यान्य तीर्थंकरोंके चरित्र भी लिखकर हम पाठकोंके समक्ष रखनेका प्रयत्न करेंगे।

यहाँ पर मैं बीकानेर-निवासी रावतमलजी भैरूँदानजी सुराणा की फर्मके मालिक माननीय बाबू भैरूँदानजी सुराणा को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने हमारी आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-मालाको २०१) रुपये प्रदान कर आजीवन सदस्य बनने की कृपा की है। आशा है, हमारे अन्यान्य जैन बन्धु भी आपकी उदार भावनाका अनुसरण कर "माला" के सदस्य बनने की कृपा करेंगे।

मैं उन सज्जनोंका पूर्ण आभारी हूँ। जिन्होंने इस ग्रन्थके अग्रिम ग्राहक बनकर मुझे उत्साहित किया है। अस्तु!

ता० १५-७-१९५६
७, खेलात घोष लेन,
कलकत्ता-६

आपका—
काशीनाथ जैन

जीयागंज (मुर्शिदाबाद) निवासी

माननीय बाबू श्रीपतसिंहजी दूगड़

आपने "आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला" के सहायतार्थ ५०००) पाँच हजार रुपये पुरस्कार देकर 'सहायक-संरक्षक' बनने की कृपा की है।

जीयागंज (मुर्शिदाबाद) निवासी स्वर्गीय

राय बहादूर लछमीपत सिंहजी के वंशज

श्रीयुक्त बाबू

श्रीपत सिंहजी दूगड़ का

संक्षिप्त जीवन परिचय

शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है कि :—

परिवर्तिनि संसारे, मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतिम् ॥

इस संसार-सागरमें जिसके रंग निरन्तर पलटते रहते हैं। जिसमें मनुष्यका जीवन पानीके बुलबुलके समान है। पैदा होना और मर जाना नित्यका खेल-सा है। उसमें उसीका जन्म ग्रहण करना ठीक है जिसके द्वारा अपनी जाति की कुछ भलाई हो, अपने वंशका गौरव हो, अपने कुलका नाम ऊँचा हो, नहीं तो इस संसार में निरन्तर हजारों लाखों पैदा होते और मरते रहते हैं। उनकी ओर कौन लक्ष देता है और इस जातिके उपकार करनेवालोंका नाम मर जानेपर भी इस संसारके चित्र-पटपर विराजमान रहता है। उनके यशरूपी शरीरको न तो बुढ़ापा आता है और न मृत्यु ग्रास करती है। वे अपनी कीर्तिके द्वारा अमर हो जाते हैं। ऐसे अमर कीर्ति सत्पुरुषोंका नाम सभी लोग बड़ी श्रद्धाके साथ लिया करते हैं। ऐसे ही विरले सज्जनोंमें बालुचर जीयागंज (मुर्शिदाबाद) निवासी सुप्रसिद्ध रईस-जमिदार बाबू श्रापत सिंहजी हैं। आपका जन्म सं० १९३८ में जीयागंज में हुआ था। आपके पिताजीका नाम

छत्रपत सिंहजी और माताजीका नाम फुलकुमारी थी। आपकी शिक्षा जीयागंज में हुई। आपका विवाह संस्कार १२ वर्ष की आयु में बीकानेर-निवासी गोरेलालजी कोचर की सुपुत्रीके साथ हुआ था। आपका जैसा रहन-सहन एवं अध्यवसाय है, वैसा ही आपकी धर्मपत्नी रानी धन्नाकुमारी का भी है। फलतः आपका गृहस्थ-जीवन सानन्द व्यतीत होता जा रहा है। आपकी ३७ वर्षकी आयुमें आपके पिताजी का देहावसान हो गया। इसके बाद कारोबार का सारा भार आपके ऊपर आ पड़ा। जिसे आप सुचारु रुपसे संचालन करते जा रहे हैं।

आपका धर्म प्रेम, जाति-प्रेम, देश-प्रेम परम प्रशंसनीय है। आपने अपने बाहुबलसे अच्छा वैभव उपार्जन किया है। आपकी दानशीलताकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। आपके औदार्यके उज्ज्वल उदाहरण भी ऐसे हैं जो आपकी कीर्तिको चिर-स्थायी बनाये रहेंगे।

आपने निम्नलिखित संस्थाओंको आर्थिक सहायता प्रदान की है और नियमित मासिक सहायता भी दिया करते हैं। आपने अपनी जमिदारीके राजमहल नामक गाँवमें अपनी माता जवाहिर कुमारीके स्मरणार्थ हाई स्कूल (High School) बनवा दी है, जिसमें आपने १०,०००) दस हजार रुपये प्रदान किये हैं एवं मासिक सहायता भी दिया करते हैं। ईस्वी सन् १९१९ के दुष्कालके जमाने-में आपने अनेक दीन-दुःखी मनुष्योंको अन्न-वस्त्र एवं उनके निर्वाहके लिये बहुमूल्यमें चावल खरीदकर नाममात्र अल्पमूल्य लेकर बँटवाये थे। भागलपुरमें अपने पूर्वजोंका निर्माण कराया हुआ "श्रीवासुपूज्य

भगवान" का मंदिर है। वह जीर्ण शीर्ण हो गया था, इसलिये उसके जीर्णोद्धारमें १२,०००) बारह हजार रु० लगाकर पुनः प्रतिष्ठा करवाई। एवं समूचे मंदिरका जीर्णोद्धार करवाया। यह जीर्णोद्धार २००१ में करवाया है। इसी वर्ष जीयागंजके श्रीसंभवनाथ भगवानके मंदिरमें तथा दादा-वाड़ीके मंदिरमें भी १५००) रु० लगाकर जीर्णोद्धार करवाया।

इसके सिवा बनारसमें अपने पूर्वजोंका बनाया हुआ श्रीपार्श्वनाथ भगवानका मंदिर है, उसके जीर्णोद्धारके चन्देमें ३०००) तीन हजार रुपये प्रदान किये। बालुचर-जीयागंजके श्रीआदीश्वर भगवानके मन्दिरमें वेदी निर्माणके लिये १०००) रु० प्रदान किये। पावापुरीके जल-मन्दिरमें तालाबके चारों ओर कोट बनवाने के लिये १०००) रु० की सहायता दी है। दिनाज पुरके मन्दिरके जीर्णोद्धार में भी ५००) रुपये प्रदान किये हैं। संवत् १९४९ में जीयागंज हाईस्कूल (High School) में श्रीपतसिंह हॉल (Hall) के नामसे नई कक्षा (Class) खोलनेके लिये ४०००) चार हजार रुपये लगाकर भवन निर्माण करवाया है। मालदा जिलेमें आपकी जमींदारीका गाँव महानन्द टोला है, उसमें हाई-स्कूल बनानेके लिये एवं छात्रोंके खेल कूद करनेके लिये ५०००) पाँच हजार रुपये की जमीन प्रदान की है। इसके अलावा आपके रहनेका एक विशाल भवन है, उसमें हॉस्पिटल (Hospital) औषधालय बनवानेके लिये वचन दिया है।

राजगृह, पावापुरी, चम्पानगर, क्षत्रिय-कुण्ड आदि तीर्थ एवं अनेक जैनमन्दिर, धर्मशाला तथा भोजनालयोंमें भी हजारों रुपयोंका

दान प्रदान किया है। आत्मीय स्वजन भाई-बन्धुओंको भी आपने बहुतसी सहायता रुपयों से प्रदान की है। कठगोला बगीचा तथा मन्दिरके मरम्मत कार्यमें २००००) बीस हजार रू० लगाये हैं। इसके अतिरिक्त आपके पिताजीका निर्माण कराया हुआ श्रीविमल नाथजी भगवानका विशाल मन्दिर है। उसके अगल-बगल दक्षिण और पश्चिम दिशामें जमीन पड़ी थी, उसे १२,५००) साढ़े बारह हजार रूपयोंमें खरीदकर उस जगहमें नयी धर्मशाला और आयंबिल भवन बनवा दिया है। उसमें लगभग ६०,००० । ६५,०००) साठ-पैंसठ हजार रूपये लगाये हैं। आयंबिल भवनमें नियमित रूपसे साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविकाऐं निरन्तर आयंबिल, अक्षय-निधी, एवं वर्धमान तपस्या आदिका लाभ उठाते रहते हैं।

इस कार्यमें मुख्यत: आपकी धर्मपत्नी रानी धन्नाकुमारी देवी अग्र-गण्य रहा करती हैं। वे स्वयं बड़ी ही आदर्श तपस्विनी हैं। निरन्तर एकासन, बियासन, उपवास आयंबिल, निवी, ओली आदिकी तपस्यायें करती रहती हैं। एवं सामायिक प्रतिक्रमण, पौषध आदि क्रियाएँ भी निरन्तर करती रहती हैं। कभी-कभी तो आप चौसठ प्रहरी पौषध-व्रत ग्रहण कर साध्वीकी भाँति उग्र तपस्या करती हैं। सत्तर वर्षकी आयु होते हुए भी इतनी उग्र तपस्या करना, यह एक बड़े ही महत्वपूर्ण गौरवका विषय है। और यही कारण है कि आयंबिल भवनमें आपकी आदर्श प्रवृत्ति देखकर अन्यान्य श्राविका वर्ग भी आपके साथ तपस्यायें करती रहती हैं। इसके फल स्वरूप सौ-सौके लगभग छोटे-मोटे तपस्वी हो जाया करते हैं। इधर कुछ समय से तो आपने अपना जीवन साध्वीकी भाँति बना डाला

है। गृह-संसारके व्यवसाय को त्याग कर अपनी पौषधशालामें निरन्तर रहना और एक तपस्विनी साध्वी की तरह कठिन तपस्या करते रहना ही अपना मुख्य ध्येय बना दिया है। जिनके पास लाखोंकी सम्पत्ति और सुख के साधन मौजूद हों, उनको त्यागकर यदि वे अपने अन्तिम समय को विशुद्ध मनसे धर्म-कार्य में लगा दें तो फिर उनके लिये कहना ही क्या है? वह एक देवी-देवता के समान बन जाते हैं और अपनी आत्माका कल्याण कर इहलोक और परलोक साधित कर लेते हैं।

जीयागंजमें कॉलेज स्थापित करनेके लिये

७,५२,०००) सात लाख बावन हजार रुपये का दान

सन् १९४९ में आपने कालेज स्थापित करवाया जिसमें अपने निजी निवासस्थानका विशाल भवन था, जिसकी लागत लगभग २५०००) ढाई लाख रुपये की है, उसे कॉलेजके लिये दिया है। एवं २५०००) ढाई लाख रुपये नगद तथा १५०००) डेढ़ लाख की जमींदारी भी कॉलेजके संचालन के लिये दी है एवं अभी गत जून मास में होस्टेल छात्रावास निर्माणके लिये भी १०,२०००) एक लाख दो हजार रुपये "गवर्नमेण्ट ओफ वेस्ट बंगाल" के शिक्षा विभाग मन्त्री महोदय को प्रदान किये हैं। और अब से इस कॉलेजके संचालन का सारा भार "गवर्नमेण्ट ओफ वेस्ट बंगाल" के जिम्मे रख दिया है।" और कॉलेजका नाम "श्रीपतसिंह कॉलेज" रखा गया है। इसके सिवा प्रसूती गृहके लिये सन् १९५० में जीयागंजके London Mission Society's Hospital में जैन महिलाओंके लिये रानी धन्नाकुमारी श्रीपतसिंह वार्डके नामसे

लगभग ६५,०००) पैंसठ हजार रूपये प्रदान कर एक पृथक् प्रसूति-गृह बनवा दिया है।

कलकत्तेके जैन-भवनके निर्माणार्थ एक लाख रूपये का दान

आपने जैन भवनमें "लक्ष्मीपतसिंह श्रीपतसिंह दूगड़" हाल बनवानेमें एक लाख रुपये प्रदान किये हैं। इसके पूर्व जैनभवनके चन्देमें भी २५००) रूपये दिये थे। इस हॉलको बनवा कर आपने बड़ाही उपकार कार्य किया है। जो चिरस्मरणीय बना रहेगा।

पुस्तकालय-भवन के लिये पचास हजार का दान

इधर गत २४ दिसम्बर १९५३ को "लक्ष्मीपतसिंह श्रीपतसिंह दूगड़ हॉल" का उद्घाटन समारोह माननीय डा० श्रीकैलाशनाथ काटजू "केन्द्रिय सरकार-गृहमन्त्री" के करकमलों द्वारा किया गया था। इस अवसरपर आपने अपनी धर्म-पत्नी रानी धन्नाकुमारीके नामपर उपरोक्त हॉलके ऊपर एक नया पुस्तकालय भवन निर्माणके लिए ५०,०००) पचास हजार रुपये प्रदान किये हैं। इसके अतिरिक्त इसी अवसरपर कलकत्तेके माननीय राज्यपाल ऐच० सी० मुखर्जी के द्वारा दार्जिलिङ्ग में दीन, अनाथ जनताके लिये स्थापित संस्था में २५५१ रु० प्रदान किये हैं।

मुर्शिदाबादके जैन-मन्दिरोंके जीर्णोद्धार करानेमें १०,०००) दस हजार रुपये प्रदान करनेका वचन दिया है एवं अभी आप यात्रार्थ पधारे उस समय अजमेर, आदि अन्यान्य स्थानोंमे मन्दिरोंके जीर्णोद्धारके लिये लगभग ५,०००) पांच हजार रुपये प्रदान किये हैं। पालीतानेमें राय बहादुर धनपतसिंह जी के धनवसी मन्दिरके

निकट नवीन जल मन्दिर बन रहा है, उसमें मूल नायकके अगल-बगल में पार्श्वनाथ भगवान की मूर्तियें प्रतिष्ठित करवाने के लिये श्रीपतसिंह जी एवं आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रानी धन्नाकुमारीके नाम से १०,०००) दस हजार रुपये प्रदान किये हैं एवं बनारस में आपके पूर्वजों का बनाया हुआ विशाल मंदिर है। उसके जीर्णोद्धार में भी इस वर्ष लगभग ५००) पाँच सौ रुपये लगाये हैं। इसके अतिरिक्त —"आदिनाथ-हिन्दी-जैन-साहित्य-माला" को ५००१। पाँच हाजार एक रुपयेका पुरस्कार दिया है जिसका प्रकाशन काशीनाथ जैन करते रहते हैं। साहित्य-प्रचारकी इच्छा से पर्युषण आदि उत्सवोंके सुअवसर पर लगभग २५००) रुपये मूल्यकी पुस्तकें प्रभावनामें प्रदान कर ज्ञान-दानका अपूर्व लाभ प्राप्त किया है। और समय समय पर ज्ञान-प्रभावना करते रहते हैं। अज़ीम-गंजके श्रीपद्मप्रभु भगवानके मन्दिरके जीर्णोद्धार करवाने में १५००) तथा शान्तिनाथ भगवानके मन्दिरके जीर्णोद्धार में ५००) रुपये प्रदान किये हैं। इसके अलावा राजगिरीमें ६०००) रुपये की लागतसे विश्राम गृह बनवाया है जिसमें जैन बन्धु जलवायु परिवर्त्तनके लिये आते और ठहरते हैं। यह विश्राम गृह आपकी अनुपस्थिती में श्वे० जैन धर्मशालाके अन्तर्गत रहेगा। इसकेसिवा राजगिरी के मन्दिरका जीर्णोद्धार हो रहा है, उसमें भी आपने ५०००) रुपये प्रदान किये हैं, इधर गतवर्ष कलकत्तेमें दीक्षोत्सव हुआ था, उसमें उपकरणकी बोली में तीन हजार रुपये लगाये थे।

जीयागंज में आपकी संस्था—श्रीविमलनाथ भगवानका मन्दिर, पौषधशाला, आयंबिल खाता, अक्षय निधि खाता, तथा धर्मशाला

हैं। उनके निरन्तर निर्वाहके लिये आपने इस वर्षके जून मास १९५४ में एक लाख रुपये बैंकमें जमा करवा दिये है। जिनकी ब्याजकी आमदनीसे उपरोक्त संस्थाओं का निर्वाह होता रहेगा। इन संस्थाओं के संचालनका सारा कार्यभार "कलकत्ता तुलापट्टी जैन श्वेताम्बर बड़े मंन्दिर" के संचालकोंके जिम्मे रखा गया है। इसके अतिरिक्त पावापुरीके जल-मंदिर में मारबल पत्थर लगवाने के लिये ता १५-७-५४ को ३५००) ढाई हजार रुपये दिये हैं। एवं ३५००) रुपये स्वामी वात्सल्यादि कार्योंमें भी व्यय किये हैं।

संवत् २००७ में आप की धर्मपत्नीने ओली की तपस्या की थी। उसके उपलक्ष्यमें वीस स्थानककी पूजा एवं नव पद महाराजके मण्डलकी पूजन करवाई। इसके सिवा आत्मीय स्वजन बन्धुओंको वेष-पोषाक आदि प्रदान किये। धर्मोपकरण,—चन्द्रवाँ पुठिया, साधु साध्वियोंके पात्र आदि उपकरणमें लगभग १२,०००) बारह हजार रुपये व्यय किये।

आज तक आपने धार्मिक कार्योंमें बड़े उत्साहसे दान दिया है। और देते रहते हैं। आप बड़े ही नम्र और मिलनसार प्रकृतिके हैं। इस समय आपकी उम्र ५६ वर्ष की है। अस्तु! शासनदेव आपको दीर्घजीवी करें। आपके चित्तमें सदैव धर्मकी सद्भावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

कलकत्ता
७, खेलात घोष लेन
१५—७—१९५६

निवेदक :—
काशीनाथ जैन।

नेमिनाथ चरित्रके अग्रिम ग्राहकोंकी नामावली

श्रीआत्मकमल लब्धि लक्ष्मण सूरि जैन पुस्तकालय	बेंगलोर सिटी
„ ऋषि श्री अनूपचन्द्रजी महाराज अधिष्ठाता श्रीवर्धमान जैन ज्ञान मन्दिर	उदयपुर
„ यतिजी महाराजश्री पूनमचन्द्रजी	रामनवास
श्रीमती पानीबाई जैन	दोडाइचा
„ हीराकुमारी जैन	कलकत्ता
„ सुन्दर कुमारी गधैया	सरदारशहर
श्री वस्तीमलजी भेराजी शाह जैन	कैसवण
„ चन्दनलाल जी जैन	नाभा
„ आर. जी. उदयराज जी जैन	मद्रास
„ माणिकलाल जी सम्पतलालजी जैन	नगरी
„ दुवाचन्दजी मोतीलालजी बम्बोरिया जैन	रठाणना
„ महावीर जैन पब्लिक लायब्रेरी	देहली
„ सूरजमलजी नेमिचन्दजी पारख जैन	जगदलपुर
„ उदयराजजी हरकचन्दजी रेदासणी जैन-	बीबी
„ अनोपचन्द्रजी मगेलालजी वरड़िया जैन	बेलिंगटन बाजार
„ पुखराजी जीवनलालजी बंगानी जैन	धमतरी
„ लालचन्दजी मोहनलालजी जैन	सिकन्द्राबाद
„ धोकलचन्दजी मुन्नालालजी एण्ड को०	रामनगरम्
„ जे० पी० मुलतानमलजी पृथ्वीराजजी गोलेच्छा जैन	आचारापाकम
„ घेवरचन्दजी डाकलिया जैन	राजनान्दगाँव
„ शिखरचन्दजी कँवरलालजी शांतिलालजी	बीकानेर

श्री भीखमचन्दजी छाजेड़ जैन	राजनान्दगाँव
„ जेठमलजी गोलेच्छा जैन	राजनान्दगाँव
„ बी. देवीलालजी लोढ़ा जैन	भीलवाड़ा
„ भीकमचन्दजी जैन	फिरोजाबाद
„ जैन मिशन लायब्रेरी	मद्रास
„ सागर मलजी शांतिलालजी बापना जैन	पीपल्यारावजीका
„ मथुरालालाजी भागचन्दजी कोठोफोड़ा जैन	पीपल्यारावजीका
„ केसरीमलजी गोर्धन सिंहजी जैन	पीपल्यारावजीका
„ शाह बी जो. नथमलजी जैन	मद्रास
„ शाह पन्नालालजी गंगारामजी देरासरिया जैन	भीम
„ शाह मोतीलालजी हंसराजजी जैन	जनापुर
„ सेठ सूरजमलजी कँवरलालजी कोठारी जैन	खैरागढ़राज
„ दोलतरामजी जैन	फिरोजाबाद
„ मूलचन्दजी भोमराजजी जैन	शहादा
„ सुगनचन्दजी डूंगरमलजी जैन	मोरारटाउन लश्कर
„ जी. सी. धाड़ीवाल जैन	कलकत्ता
„ पूरणचन्दजी शामसुखा जैन	कलकत्ता
„ राजवैद्य जसवन्तराजजी जैन	कलकत्ता
„ डी. आर. कुमार ब्रदर्स जैन पंजाबी	कलकत्ता
„ देवचन्दजी बोथरा जैन	कलकत्ता
„ चुन्नालालजी. बी. शाह जैन	कलकत्ता
„ छोटमलजी सुराना जैन	कलकत्ता
„ रतनमलजी बोथरा जैन	कलकत्ता
„ भुरमलजी रत्ताजी जैन शाह	बाई

श्री निहालचन्दजी बोहरा जैन	कलकत्ता
,, रावतमलजी भैरुदानजी हाकिम कोठारी	कलकत्ता
,, मोहनलालजी सुराना जैन	कलकत्ता
,, फूलचन्दजी रुपराजजी जैन	पूना
,, जे. बन्सीलालजी जैन	मद्रास
,, कनकमलजी रतनलालजी मुणोत जैन	रतलाम
,, कनकमलजी राजमलजी मुणोत जैन	रतलाम
,, तेजमालजी मेघराजजी जैन	अकलकुआ
,, मूलचन्दजी गणेशलालजी जैन	भद्रावती
,, गणेशमलजी वरड़िया जैन	सिलचर
,, लाभचन्दजी देवीचन्दजी वैद जैन	जालन्धर
,, केसरीमलजी महेता जैन	आकोदियामंडी
,, प्रेमराजजी गुलाबचन्दजी जैन	सटाणा
,, जवाहरलालजी राक्यान जैन	देहली
,, उत्तमचन्दजी भण्डारी जैन	सिकन्द्राबाद
,, डी० सावन्त राजजी. जे. जैन	सिकन्द्राबाद
,, राजमलजी पारख जैन	भेलसा
,, रामलालजी धुरालालजी जैन	बड़ोद
,, मणिलालजी. एम. जैन	पिथापुरम
,, जैन सोड़ा वाटर फेक्टरी	जालंधर सिटी
,, मगन मलजी गजराजजी कानूगा जैन	तिनडीवनम
,, के. लालचन्दजी गोलेच्छा जैन	तिनड़ीवनम
,, राजमलजी हरखचन्दजी वैद जैन	तिनड़ीवनम
,, मँवरीलालजी कोचर	बीकानेर

श्री पूनम चन्दजी चम्पालालजी कानूगा जैन	तिनड़ीवनम
,, कालूरामजी अमरचन्दजी वोथरा जैन	नवापाराजिम
,, रतिचन्दजी शोभालालजी बंवोरिया जैन	रठांजना
,, माणिकलालजी बम्बोरिया जैन	रठांजना
,, मोमराज जी प्रेमराज जी जैन	असलोद
,, शांन्तिनाथ लायब्रेरी	बस्सी
,, शाह सूरजमलजी समरथजी मनशाली जैन	उमेदाबाद
,, दीपचन्दजी चम्पालालजी ओसवाल जैन	सेलू
,, शाह नेमाजी नथमलजी जैन	वारंगल
,, हस्तीमलजी सूरजमलजी भण्डारी जैन	समदड़ी
,, जेठमलजी सुराना जैन	सिकन्द्राबाद
,, हीरालालजी बाफना जैन	सिकन्द्राबाद
,, पारसमलजी शाह जैन	लुणी
,, श्री सरस्वती वाचनालय'	रूण
,, शाह हजारीमलजी टेकचन्दजी जैन	मद्रास
,, मोखमचन्दजी नाहटा जैन	नेवारी
,, शाह सदनमलजी भण्डारी जैन	सिआणा
,, मदनचन्दजी मोहनलालजी जैन	जुगसलाइ
,, मूलचन्दजी भगवानदासजी जैन	खिड़की
,, चन्दनमलजी सुरतिंगजी जैन	सिआणा
,, ताराचन्दजी बोथरा	कलकत्ता
,, चन्दनमलजी रुगनाथमलजी जैन	डुंडसी
,, कमलसिहजी दुधोड़िया	कलकत्ता

नेमिनाथ-चरित्र

पहला परिच्छेद

पहला और दूसरा भव

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अचलपुर नामक एक सुन्दर नगर था। वहाँ विक्रमधन नामक एक प्रतापी और युद्धप्रिय राजा राज करता था। उस राजाके धारिणी नामक एक रानी थी, जो उसे बहुत ही प्रिय थी। एक दिन उसने पिछली रातमें एक स्वप्न देखा। उस स्वप्नमें उसे बौरोंसे लदा हुआ एक आम्रवृक्ष दिखायी दिया, जिस पर भौंरे चक्कर लगा रहे थे और कोयलें कूक रही थीं। उसे स्वप्नमें ही ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई रूपवान पुरुष उस आम्रवृक्षको हाथमें लेकर उससे कह रहा है कि

"आज जो यह वृक्ष तुम्हारे आंगनमें लगाया जा रहा है, वह यथासमय नव बार अन्यान्य स्थानोंमें रोपित करने पर उत्तरोत्तर उत्कृष्ट फल प्रदान करेगा।"

यह स्वप्न देखते ही रानीकी नींद खुल गयी। उस समय सवेरा हो चला था। उसने उसी समय उस स्वप्नका हाल अपने पतिदेवसे निवेदन किया। उन्होंने स्वप्न-पाठकोंसे उसके फलाफल का निर्णय कराना स्थिर किया। निदान, राज-सभामें पहुँचते ही उन्होंने कई स्वप्न-पाठकोंको बुला भेजा और उनसे उस स्वप्नका फल पूछा। उन्होंने कहा :—"राजन्! रानीका यह स्वप्न बहुत ही अच्छा है। स्वप्नमें आम्र वृक्ष दिखायी देने पर सुन्दर पुत्रका जन्म होता है। परन्तु स्वप्नमें किसी पुरुषने रानीसे जो यह कहा है कि यथा समय नव बार अन्यान्य स्थानोंमें रोपित करने पर यह वृक्ष उत्तरोत्तर उत्कृष्ट फल प्रदान करेगा, इसका तात्पर्य हमारी समझमें नहीं आता। इसका रहस्य तो सिर्फ केवली ही बतला सकते हैं।

स्वप्न पाठकोंके यह वचन सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने वस्त्रा-भूषण आदिसे पुरस्कृत कर

उन्हें सम्मानपूर्वक विदा किया। शीघ्र ही रानीने भी यह समाचार सुना। सुनते ही वे भी आनन्दित हो उठीं। जिस प्रकार पृथ्वी रत्न-भण्डारको धारण कर उसकी रक्षा करती है, उसी प्रकार उस दिनसे रानी अपने गर्भको धारण कर यत्न-पूर्वक उसकी रक्षा करने लगीं। यथा समय उन्होंने एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर उसके उज्ज्वल प्रकाशसे दशों दिशायें प्रकाशित हो उठती हैं, उसी प्रकार उस पुत्र-रत्नके जन्मसे राजा विक्रमधनका राज-प्रासाद आलोकित हो उठा। राजाने बड़ी धूमके साथ इस पुत्रका जन्मोत्सव मनाया। सभी इष्ट-मित्र और आश्रित-जन भेंट तथा पुरस्कार द्वारा इस अवसर पर सम्मानित किये गये। राजाने ज्योतिषियोंके आदेशानुसार अपने इस पुत्रका नाम धन रक्खा।

धनका लालन-पालन करनेके लिये राजाने अनेक दाई-नौकरों को नियुक्त कर दिये। शुक्ल पक्षमें जिस प्रकार चन्द्रकी कलाएँ बढ़ती हैं, उसी प्रकार उनके यत्नसे राजकुमार बड़ा होने लगा। धीरे-धीरे जब उसकी

अवस्था आठ वर्षकी हुई, तब राजाने उसकी शिक्षा-दीक्षाके लिये कई अध्यापकोंको नियुक्त किया। राजकुमारकी बुद्धि बहुत ही प्रखर थी इसलिये उसने थोड़े ही समयमें समस्त विद्या-कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली। अन्तमें उसने किशोरावस्था अतिक्रमण कर यौवनावस्था—जीवनके वसन्तकालमें पदार्पण किया।

जिन दिनों अचलपुरमें यह सब बातें घटित हो रही थीं, उन्हीं दिनों कुसुमपुर नामक नगरमें सिंह नामक एक बलवान राजा राज करते थे। उनकी पटरानीका नाम विमला था। वह अपने नामानुसार गुण और रूपमें पूरी विमला ही थी। उसने धनवती नामक एक सुन्दर कन्याको जन्म दिया था। उसका सौन्दर्य रति, प्रीति और रम्भाके रूपको भी मात कर देता था। वह जैसी रूपवती थी, वैसी ही गुणवती भी थी। ऐसी एक भी विद्या या कला न थी, जिसका उसने ज्ञान न प्राप्त किया हो। इन्हीं कारणोंसे उसके मातापिता उसे पुत्रसे भी बढ़कर प्यार करते थे।

इस समय धनवतीकी किशोरावस्था व्यतीत हो रही

थी। यौवनावस्थामें उसने अभी पदार्पण न किया था, किन्तु उसकी सीमासे अब वह बहुत दूरी पर भी न थी। एक दिन वसन्त-ऋतुका सुहावना समय था। उसकी सखियोंने उपवनकी सैर करने पर जोर दिया। वह भी इसके लिये राजी हो गयी। शीघ्र ही मातापिताकी आज्ञा ले, वह अपनी सखियोंके साथ वसन्त-वाटिकामें जा पहुँची। वह वाटिका आम्र, अशोक, पारिजात, चम्पक आदि अनेक वृक्षोंसे सुशोभित हो रही थी। कहीं राजहंस और सारस पक्षी विचरण कर रहे थे, तो कहीं भ्रमर पंक्तियां गुञ्जार कर रही थीं। राजकुमारी इन मनोरम दृश्योंको देखती हुई एक अशोक वृक्षके पास जा पहुँची। उसने देखा कि उस वृक्षके नीचे एक चित्रकार बैठा हुआ है। उसके हाथमें किसी रूपवान पुरुषका एक चित्र था और उसे ही वह बड़े ध्यानसे देख रहा था।

राजकुमारी धनवती भी उस चित्रको देखनेके लिये उत्सुक हो उठी। उसकी यह इच्छा देखकर उसकी कमलिनी नामक एक सखी उस चित्रकारके पास गयी और

उससे वह सुन्दर चित्र मांग लायी। राजकुमारीने बड़े उत्साहसे उसे देखा। देखकर वह प्रसन्न हो उठी। वह जिस पुरुषका चित्र था, उसके अंग प्रत्यङ्गसे मानो सौन्दर्य फूटा पड़ता था। उसने चित्रकारके पास जाकर पूछा :—"हे भद्र! यह किसका चित्र है? ऐसा रूप तो सुर, असुर या मनुष्यमें होना असम्भव है। मैं समझती हूँ कि शायद तुमने अपना कौशल दिखानेके लिये अपनी कल्पनासे यह चित्र तैयार किया है। वर्ना जरा-जर्जर विधातामें अब ऐसी शक्ति कहाँ कि वे ऐसे रूपवान पुरुषका निर्माण कर सकें।"

राजकुमारीके यह वचन सुनकर चित्रकारको हँसी आ गयी। उसने कहा :—"हे मृगलोचनी! इसे कल्पित चित्र समझनेमें तुम भूल करती हो। संसारमें अभी रूपवान पुरुषोंकी कमी नहीं। सच बात तो यह है कि जिस पुरुषका यह चित्र है, उसके वास्तविक रूपका शतांश भी इस चित्रमें मैं नहीं दिखा सका। यह अचलपुरके राजकुमार धनका चित्र है। मैंने अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार इसे अंकित करनेकी चेष्टा की है, परन्तु

मेरा विश्वास है कि साक्षात् धनको देखनेके बाद जो इस चित्रको देखेगा, वह अवश्य ही मेरी निन्दा करेगा। तुमने उसे अपनी आंखोंसे नहीं देखा है, इसीलिये तुम कूप-मण्डूककी भांति विस्मित हो रही हो। राजकुमारका रूप देखकर मानव-स्त्रियाँ तो दूर रहीं, देवाङ्गनाएँ भी मोहित हुए बिना नहीं रह सकतीं। मैंने तो केवल अपने नेत्रोंको तृप्त करनेकेलिये ही यह चित्र अङ्कित किया है।"

धनवती खड़ी-खड़ी चित्रकारकी यह सब बातें सुनती रही। सच बात तो यह थी कि उस चित्रको देखकर वह मुग्ध हो गयी थी और स्वयं भी चित्रकी भांति गति हीन बन गयी थी। उसे वह चित्र हाथसे छोड़नेकी इच्छा ही न होती थी। उसकी यह अवस्था देखकर कमलिनीने उसका मनोभाव ताड़ लिया। उसने चित्रकारके निकट उसके कला-कौशल और उसकी निपुणताकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर, उससे उस चित्रकी याचना की। चित्रकार कमलिनीकी यह याचना अमान्य नहीं कर सका। राजकुमारीके विनोदार्थ उसने सहर्ष वह चित्र कमलिनीको दे दिया।

चित्रको लेकर राजकुमारी अपनी सखियोंके साथ अपने वासस्थानको लौट आयी। परन्तु उसका मन अब उसके अधिकारमें न था। जिस प्रकार हंसिनीको मरु-भूमिमें सन्तोष नहीं होता, उसी प्रकार उसकी तबियत अब राजमहलमें न लगती थी। खाना, पीना और सोना उसके लिये हराम हो गया था। सारी रात बिछौनेमें करवटें बदलते ही बीत जाती थीं। दिनको, जब देखो तब, वह गाल पर हाथ रक्खे राजकुमार धनका ही ध्यान किया करती थी। इस व्यग्रताके कारण उसकी स्मरण शक्ति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता था, फलतः वह जो कुछ कहती या करती थी, वह तुरन्त भूल जाती थी। जिस प्रकार योगिनी अपने इष्टदेवका और निर्धन मनुष्य धनका ही चिन्तन किया करता है, उसी प्रकार वह सदा राजकुमारका ही चिन्तन किया करती थी। उसके चेहरेकी प्रसन्नता मानो सदाके लिये लोप हो गयी थी और उसका स्थान उदासीनताने अधिकृत कर लिया था। उसका शरीर धीरे-धीरे-कृश हो गया और रूप-लावण्यमें भी बहुत कुछ कमी आ गयी

उसकी यह अवस्था देखकर एक दिन उसकी प्रिय सखी कमलिनीने उससे पूछा :—"बहिन ! तुम्हें आज कल क्या हो गया है ? न अब तुम पहलेकी भाँति हँसती हो न बोलती हो। चेहरा पीला पड़ गया है और शरीर दुबला हो गया है। रात दिन अपने मनमें न जाने क्या सोचा करती हो ? क्या मैं जान सकती हूँ कि तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों हो रही है ?"

राजकुमारीने कहा :—"हे सखी कमलिनी ! तुम सर्वथा एक अपरिचित व्यक्तिकी भाँति मुझसे यह प्रश्न क्यों करती हो ? मैं तो समझती हूँ कि मेरी इस अवस्थाका कारण तुम्हें भली भांति मालूम है। तुम तो मेरे हृदय—मेरे जीवनके समान हो। मुझसे ऐसा प्रश्न-कर मुझे क्यों लज्जित करती हो ?"

कमलिनीने कहा :—हे सखी ! तुम्हारा कहना कुछ-कुछ ठीक है। तुम्हारी इस अवस्थाका कारण मुझसे सर्वथा छिपा नहीं है। मेरी धारणा है कि तुम राज-कुमार धनसे मिलनेके लिये व्याकुल हो रही हो। जबसे तुमने उस चित्रको देखा, तभीसे तुम्हारी इस अवस्थाका

सूत्रपात हुआ है। मैं यह बात उसी समय ताड़ गयी थी और इसीलिये मैंने उस चित्रकारसे तुम्हारे लिये वह चित्र मांग लिया था। अनजानकी तरह यह प्रश्न करना केवल मनोविनोद था। बाकी मैं तुम्हारा दुःख भलीभांति समझती हूँ और उसे दूर करनेके लिये चिन्ता भी किया करती हूँ। हालहीमें मैंने एक ज्ञानीसे पूछा था कि क्या मेरी सखीका मनोरथ पूर्ण होगा? क्या उसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति होगी?" उसने कहा :—"उसका मनोरथ अवश्य और शीघ्र ही पूर्ण होगा।" उसके इस वचन पर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं। मैं समझती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी और कोई ऐसा उपाय अवश्य निकल आयगा, जिससे यह कठिन कार्य भी सुगम बन जायगा।"

कमलिनीके यह वचन सुनकर धनवतीका चित्त कुछ शान्त हुआ। इसके बाद उन दोनोंमें बहुत देरतक इधर-उधरकी बातें होती रहीं। कमलिनी उसे प्रारब्ध पर भरोसा करनेका उपदेश देकर अन्तमें अपने वास-स्थान-को चली गयी।

रोने लगे। मन्त्री आदिक भी निराश हो गये। परन्तु सौभाग्यवश इसी समय क्रीड़ा निमित्त विचरण करते हुए चित्रगति वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि समूचे नगर पर शोककी काली घटा छायी हुई है। जांच करने पर उन्हें राजकुमारको विष देनेका वृत्तान्त ज्ञात हुआ। वे तुरन्त अपने विमानसे नीचे उतर पड़े। उन्होंने कुमारके शरीर पर ज्योंही मन्त्रित जलके छींटे दिये, त्योंही वह इस प्रकार उठ बैठा, जिस प्रकार कोई मनुष्य गहरी निद्रासे उठ बैठता है। अपने आसपास राजा और मन्त्री आदिको एकत्रित देखकर सुमित्रने अपने पितासे इसका कारण पूछा। राजाने कहाः—"हे पुत्र! तुम्हारी विमाता ने तुम्हें विष दिया था। उसके प्रभावसे तुम मूर्छित हो गये थे। हम लोगोंने अनेक प्रकारके उपचार किये, किन्तु कोई फल न हुआ। अन्तमें, हमलोग तुम्हारे जीवनकी आशा छोड़ बैठे थे। इतनेमें ही यह महापुरुष आ पहुँचे। इन्होंने अपने मन्त्र-बलसे तुम्हारी मूर्च्छा दूर कर तुम्हें जीवन-दान दिया है।"

पिताके यह वचन सुनकर सुमित्रने हाथ जोड़कर

चित्रगतिसे कहा:—"हे महापुरुष! आपने अकारण मुझपर जो उपकार किया है, वही आपके उत्तम कुलका परिचय देनेके लिये पर्याप्त है, फिर भी यदि आप अपने नाम और कुलका पूरा परिचय देंगे, तो बड़ी कृपा होगी।"

चित्रगतिका मन्त्रीपुत्र भी चित्रगतिके साथही था। उसने चित्रगतिके वंशादिकका वर्णन कर सब लोगोंको उसका नामादिक बतलाया। चित्रगतिका प्रकृत परिचय पाकर सुमित्रको बहुतही आनन्द हुआ। उसने कहा :—"हे अकारण बन्धो! मेरी विमाताने आज मुझे विष देकर, मेरा अपकार नहीं, बल्कि उपकार किया है। यदि वह विष न देती, तो मुझे आपके दर्शन कैसे होते? आपने मुझे न केवल जीवन-दानही दिया है, बल्कि मुझे प्रत्याख्यान और नमस्कार हीनको दुर्गतिमें पड़नेसे भी बचाया है। बतलाइये, मैं इस उपकारका बदला आपको किस प्रकार दे सकता हूँ?"

चित्रगतिने कहा :—"मित्र! मैंने जो कुछ किया है, वह बदलेकी इच्छासे नहीं, बल्कि अपना कर्त्तव्य

समझकर ही किया है। आपके प्राण बच गये, यही मेरे लिये परम सन्तोषका विषय है। मुझे अब आज्ञा दीजिये, ताकि मैं अपने नगरको जा सकूँ।"

सुमित्रने कहा :—"हे बन्धो! मैं अकारण आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता। परन्तु सुयशा नामक एक केवली समीपके ही प्रदेशमें विचरण कर रहे हैं और वे शीघ्रही यहाँ आनेवाले हैं। यदि उन्हें वन्दन करनेके बाद आप यहाँसे प्रस्थान करें तो बहुत अच्छा हो!"

सुमित्रका यह अनुरोध अमान्य करना चित्रगतिके लिये कठिन था। वे वहीं ठहर गये। सुमित्रको भी इस बहाने उनका आतिथ्य-सत्कार करनेका मौका मिल गया। कई दिन देखते-ही-देखते बीत गये। इस बीच उन दोनोंमें घनिष्ठ मित्रता हो गयी। सारा दिन क्रीड़ा-कौतुक और हास्य-विनोदमें ही व्यतीत होता था, इसलिये चित्रगतिको दिन जरा भी भारी न मालूम होते थे।

अन्तमें एक दिन केवली भगवान भी वहाँ आ पहुँचे। उनका आगमन-समाचार सुनकर राजा सुग्रीव

और वे दोनों उन्हें वन्दन करने गये। केवली भगवान उस समय धर्मोपदेश दे रहे थे, इसलिये वे उन्हें वन्दन कर, उनका उपदेश सुनने लगे। मुनिराज का उपदेश बहुतही मर्मग्राही और सारपूर्ण था, इसलिये श्रोताओंपर उसका बड़ाही अच्छा प्रभाव पड़ा।

धर्मोपदेश पूर्ण होनेपर चित्रगतिने मुनिराजसे कहा:—"हेभगवन्! आज आपका उपदेश सुनकर मुझे आर्हत धर्मका वास्तविक ज्ञान हुआ है। यह मेरा सौभाग्य ही था, जो सुमित्रसे मेरी भेट हो गयी, वर्ना मैं आपके दर्शनसे वञ्चितही रह जाता। मैं अब तक उस श्रावक-धर्मको भी न जान सका था, जो हमारे यहाँ कुल परम्परासे प्रचलित है।"

इतना कहकर चित्रगतिने केवली भगवानके निकट सम्यक्त्व मूलक श्रावक धर्म ग्रहण किया। इसके बाद राजाने केवली भगवानसे पूछा:—"भगवन्! संसारकी कोई भी बात आपसे छिपी नहीं है। आप सर्वज्ञाता हैं। दयाकर बतलाइये कि मेरे प्रिय पुत्रको विष देकर भद्रा कहाँ चली गयी? वह इस समय कहाँ है और क्या कर रही है?"

मुनिराजने कहा :—"वह यहाँसे भागकर एक जंगलमें गयी थी। वहाँपर भिल्लोंने उसके गहने-कपड़े छीनकर उसे अपने राजाके हाथोंमें सौंप दिया। उसने उसे एक वणिकके हाथ बेच दिया। किसी तरह वह उसके चंगुलसे भी भाग निकली, परन्तु उसके भाग्यमें अब सुख और शान्ति कहाँ? वह फिर एक जंगलमें पहुँची और वहाँ दावानलमें जलकर खाक हो गयी। इस प्रकार रौद्र ध्यानसे मृत्यु होनेपर इस समय वह प्रथम नरक भोग रही है। वहाँसे निकलने पर वह एक चाण्डालकी स्त्री होगी। वहाँ भी गर्भधारण करनेपर सौतसे उसका झगड़ा होगा, जिसमें सौत उसे छुरी मार देगी, जिससे उसकी मृत्यु हो जायगी। मृत्यु होने पर कुछ दिन वह तीसरा नरक भोग करेगी। इसके बाद उसे तिर्यञ्च गति प्राप्त होगी। इसी प्रकार वह जन्म-जन्मान्तरमें—अनन्तकाल तक दुःख भोग करेगी। आपके सम्यग्दृष्टि पुत्रको विष देनेके कारणही उसकी यह अवस्था होगी। उसने जो घोर पाप किया है, उसका यही प्रायश्चित होगा।"

केवली भगवानके यह वचन सुनकर सुग्रीव राजाके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने भगवानके निकट संयम लेनेकी इच्छा प्रकट की। उधर सुमित्रके हृदयमें भी उथल-पुथल मच रही थी। उसने कहा :—"मुझे धिक्कार है कि माताके इस दुष्कर्ममें मुझे कारण रूप बनना पड़ा। हे गुरुदेव! कृपाकर मुझे भी इस भव-सागरसे पार कीजिये। मुझे भी यह संसार अब विषवत् प्रतीत होता है।"

पुत्रके यह वचन सुनकर राजा सुग्रीवने कहा :—"हे पुत्र! जो कुछ होना था वह तो हो चुका। अब उन बातोंके लिये सोच करना व्यर्थ है। तुम्हारी अवस्था अभी संयम लेने योग्य नहीं है। मैं तुम्हारा पिता हूँ। मेरी आज्ञा मानना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मैं अभी तुम्हें संसार-त्यागके लिये अनुमति नहीं दे सकता। इस समय तो तुम्हें राज्य-भार ग्रहण कर प्रजा-पालन करना होगा। यही इस समय मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ।"

सुमित्रको पिताकी यह आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी। राजा सुग्रीवने उसे सिंहासन पर बैठाकर चारित्र

ले लिया। अब वे केवली भगवानके साथ विचरण करते हुए जप-तप और साधनामें अपना समय बिताने लगे। सुमित्रने अपने सौतेले भाई पद्मको कई गाँव देकर उससे मेल रखनेकी चेष्टा की, परन्तु इसका कोई फल न हुआ। वह असन्तुष्ट होकर कहीं चला गया। चित्रगति अब तक सुमित्रके पास ही था। वह उसे किसी प्रकार भी जाने न देता था। अन्तमें बहुत कुछ कहने, सुननेपर सुमित्रने उसे विदा किया। उसे बहुत दिनोंके बाद वापस आया देखकर उसके मातापिताको असीम आनन्द हुआ। चित्रगति देवपूजादिक पुण्यकार्य करते हुए अपने दिन बिताने लगा। उसकी इस जीवन-चर्यासे उसके माता पिता और गुरुजन उससे बहुत प्रसन्न रहने लगे।

हमारे पाठक राजा अनंगसिंह और उसकी पुत्री रत्नवतीको शायद अभी न भूले होंगे। उनका परिचय इसी परिच्छेदके आरम्भमें अंकित किया जा चुका है। रत्नवतीके कमल नामक एक भाई भी था। वह कुबुद्धिके कारण एक दिन सुमित्रकी बहिनको हरण कर ले गया। इस घटनासे सुमित्र बहुत उदास हो गया, क्यों

यह भी पता न था कि यह कार्य किसने और किस उद्देशसे किया है। एक विद्याधरके मुहसे यह समाचार चित्रगतिने सुना, तो उसने इस विपत्ति कालमें अपने प्यारे मित्रकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझा। उसने तुरन्त अपने विद्याधरों द्वारा सुमित्रको बहला भेजा, कि आपकी इस विपत्तिसे मैं बहुत दुःखी हूँ, परन्तु आप कोई चिन्ता न करें। आपकी बहिनका पता लगा कर उसे जिस प्रकार हो, आपके पास पहुँचा देनेका भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

चित्रगतिकी इस सान्त्वनासे सुमित्रके व्यथित हृदय को बहुत शान्ति मिली। चित्रगतिकी यह सान्त्वना केवल मौखिक ही न थी। बल्कि उसने दूसरेही दिन उसका पता लगानेके लिये अपने नगरसे सदलबल प्रस्थान कर दिया। मार्गमें उसे अपने गुप्तचरोंद्वारा मालूम हुआ कि उसका हरण कमलने ही किया है। इसलिये उसने अपनी समस्त सेनाके साथ शिवमन्दिर नगर पर धावा बोल दिया। कमलमें इतनी शक्ति कहाँ, कि वह उसके सामने ठहर सके। जिस प्रकार गजेन्द्र कमल-नालको

उखाड़ फेंकता है, उसी प्रकार चित्रगतिने कमलकी सेना-को छिन्नभिन्न कर डाला। वह युद्धसे मुख मोड़कर मैदानसे भागनेकी तैयारी करने लगा।

अपने पुत्रकी पराजयका यह समाचार सुनकर राजा अनंगसिंह अपनी सेनाके साथ वहाँ दौड़ आया और चित्रगति से युद्ध करने लगा। दोनोंने अपनी शस्त्रविद्या और भुज-बलसे काम लेनेमें कोई बात उठा न रक्खी। घण्टों युद्ध होता रहा, परन्तु दोमेंसे कोई भी किसीको पराजित न कर सका। राजा अनंगसिंहने जब देखा, कि इस शत्रुको जीतना बहुत ही कठिन है तब उसने उस खड्गका स्मरण किया जो उसके पूर्वजोंको किसी देवताकी कृपासे प्राप्त हुआ था। स्मरण करतेही वह खड्ग उसके हाथमें आ पहुँचा। वह खड्ग क्या था, मानो मूर्तिमान काल था उससे अग्निकी ज्वालाके समान भयंकर लपटें निकल रही थीं, जो बिजली की तरह चारों ओर लपक-लपक कर शत्रु-सेनाको झुलसाये देती थीं। उस दैवी खड्गके सामने ठहरना तो दूर रहा, उसकी ओर आंख उठाकर देखना भी कठिन था। वह खड्ग हाथमें आतेही

अनंगसिंहने चित्रगतिको ललकार कर कहा :—"हे बालक! यदि तुझे अपने प्राणोंका जरा भी मोह हो, तो इसी समय यहाँसे भाग जा, वर्ना मैं तेरा शिर धड़से अलग कर दूँगा।"

चित्रगतिने उपेक्षापूर्ण हास्य करते हुए कहा :—"हे मूढ़! एक लोहका टुकड़ा हाथमें आ जानेसे तुझे इतना गर्व हो गया, कि तू अपने उस प्रतिस्पर्धीको रणसे भाग जानेको कहता है, जो तुझे घंटोंसे हँफा रहा है? इस शस्त्रके बूते पर लड़ना कोई वीरता नहीं है। यदि तेरी भुजाओंमें बल हो, तो इसे दूर रख दे और जितनी देर इच्छा हो, मुझसे आकर लड़ले।"

चित्रगतिके यह वचन सुनकर राज अनंगसिंह क्रोधसे, कुचले हुए सर्पकी भांति झल्ला उठा। उसने चित्रगति पर उस दिव्य खड्गसे वार करनेकी तैयारी की, परन्तु चित्रगति भी असावधान न था। उसने अपनी विद्याके बलसे चारों ओर अन्धकार फैला कर दिनकी रात बना दी। जिसप्रकार श्रावणकी अंधेरी घटामें कुछ सूझ नहीं पड़ता, उसी प्रकार अन्धकारके

कारण सब लोग किंकर्त्तव्य विमूढ़ बन गये। उन्हें अपने पास खड़े हुए मनुष्य भी आंखोंसे दिखायी न देते थे। चित्रगतिने जान बूझकर यह माया-जाल फैलाया था। अन्धकार होते ही वह लपक कर राजा अनंगसिंहके पास पहुँचा और उसके हाथसे वह दैवी खड्ग छीन लाया। इसके बाद वह उस स्थानमें गया जहाँ सुमित्रकी बहिन रक्खी गयी थी। वह उसे एक घोड़ेपर बैठाकर अपने साथ ले आया। और उसी क्षण अपनी सेनाके साथ वहाँसे नौ दो ग्यारह हो गया।

उसके चले जाने पर, उसकी इच्छासे, वह अन्धकार दूर हो गया। अन्धकार दूर होने पर राजाने देखा कि उसका वह दैवी खड्ग गायब है। न कहीं उसके शत्रुका पता है, न कहीं उसकी सेनाका। इसी समय उसे समाचार मिला कि सुमित्रकी वह बहिन भी गायब है, जिसे कमल हरण कर लाया था। अपनी इस पराजयसे वह बहुत लज्जित हुआ। वह दैवी खड्ग हाथसे निकल जानेके कारण भी उसे कम दुःख न था, परन्तु इतने ही में उसे उस ज्योतिषीकी बात याद आगयी। उसने

कहा था कि जो आपके हाथसे आपका खड्ग छीन लेगा, उसीसे आपकी कन्याका विवाह होगा। इस बातके स्मरणसे उसका दुःख हलका हो गया और वह एकबार चित्रगतिसे मिलनेके लिये उत्कंठित हो उठा। परन्तु अब उसका पता पाना सहज न था। राजा इससे निराश हो गया। परन्तु इतने ही में उसे उस ज्योतिषीकी दूसरी बात स्मरण आ गयी। उसने यह भी कहा था, कि "सिद्धायतनको वन्दन करते समय उसपर पुष्पवृष्टि होगी।" यही एक ऐसी बात थी, जिससे उसका पता लग सकता था। वह इसी बात पर विचार करता हुआ अपने राज-महलको लौट आया।

उधर चित्रगतिने सुमित्रकी बहिनको ले जाकर सुमित्रको सौंप दिया। इससे उसे बहुत ही आनन्द हुआ। उसने चित्रगतिकी प्रशंसा कर उसे धन्यवाद दिया। इसके बाद चित्रगति उससे विदा ग्रहण कर अपने नगरको लौट गया।

सुमित्रके हृदयमें वैराग्यके बीजने तो पहले ही जड़ जमा ली थी। इधर उसकी बहिनका हरण होने पर

कामदेवका विषम रूप उसकी आंखोंके सामने आ गया। इससे जलती हुए अग्निमें मानो घृतकी आहुति पड़ गयी। वैराग्यकी प्रबलताके कारण उसने अपने पुत्रको राज्य-भार सौंप कर, सुयशा केवलीके निकट जाकर दीक्षा लेली।

दीक्षा ग्रहण करनेके बाद पहले बहुत दिनोंतक सुमित्र अपने गुरुदेवके निकट शास्त्राभ्यास करता रहा। इसके बाद उनकी आज्ञा प्राप्त कर वह सर्वत्र अकेला विचरण करने लगा। कुछ दिनोंके बाद विचरण करता हुआ वह मगध देशमें जा पहुँचा। वहाँ एक नगरके बाहर उसने कायोत्सर्ग करना आरम्भ किया। इसी समय उसका सौतेला भाई पद्म कहींसे घूमता-घामता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसकी दृष्टि सुमित्र पर जा पड़ी। वह ध्यानावस्थामें पर्वतकी भांति स्थिर बैठा था। उसे देखते ही उसकी प्रतिहिंसा-वृत्ति जागृत हो उठी। उसने कानतक धनुष खींचकर इतने जोरसे एक बाण मारा, कि सुमित्र मुनिका हृदय छिन्न-भिन्न हो गया। वे अपने मनमें कहने लगे :—"यह बेचारा अपने आत्माको

नरकमें डालकर मुझे स्वर्ग भेज रहा है। इसलिये इससे बढ़ कर मेरा हितैषी और कौन हो सकता है? मैंने इसकी इच्छानुसार इसे राज्य न दिया था, इसीलिये यह मुझसे असन्तुष्ट हो गया था, मुझे विश्वास है कि अब वह इसके लिये मुझे क्षमा कर देगा।" इस प्रकार धर्म-ध्यान करते हुए नमस्कार मन्त्रका स्मरण कर सुमित्र मुनि कालके कराल गालमें प्रवेश कर गये। मृत्युके बाद वे ब्रह्म देवलोकमें सामानिक देव हुए। पद्म उन्हें बाण मारकर ज्योंहीं वहाँसे भागने लगा, त्योंही उसे एक सर्पने डस लिया। इससे तुरन्त उसकी मृत्यु हो गयी और वह सातवें नरकमें पड़ कर अपना कर्म-फल भोगने लगा।

उधर सुमित्रकी मृत्युसे चित्रगतिको बहुत ही दुःख हुआ। उसने अपने अशान्त हृदयको शान्त करनेके लिये सिद्धायतनकी वन्दना करना स्थिर किया और वह सदल-बल शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचा। उस समय वहाँ और भी अनेक विद्याधर एकत्र थे। राजा अनङ्गसिंह भी रत्नवतीको साथ लेकर उस महान तीर्थकी वन्दना करने आया था।

चित्रगतिने अत्यन्त भक्तिके साथ विविध प्रकारसे शाश्वत अरिहन्तकी पूजा की। अवधि-ज्ञानसे यह सब वृत्तान्त सुमित्रदेवको भी ज्ञात हुआ। इसलिये उसने अन्य देवताओंके साथ वहाँ आकर चित्रगति पर आकाशसे पुष्प-वृष्टि की। चित्रगतिकी यह महिमा देखकर विद्याधरोंको बहुत आनन्द हुआ और राजा अनंगसिंहको भी मालूम हो गया कि यही रत्नवतीका भावी पति है।

सुमित्रदेवने इस अवसर पर अपने प्रिय मित्रको अपना परिचय दे देना उचित समझा, इसलिये उसने प्रत्यक्ष होकर चित्रगतिसे पूछा :—"हे चित्रगति! क्या तुम मुझे पहचानते हो?"

चित्रगतिने कहा :—"हाँ, मैं आपके विषयमें इतना अवश्य जानता हूँ कि आप एक महान देव हैं।"

चित्रगतिका यह उत्तर सुन कर सुमित्र देवको हँसी आ गयी। उसने अपना वास्तविक परिचय देनेके लिये सुमित्रका रूप धारण किया, उसका यह रूप देखते ही चित्रगति उसे पहचान गया और दौड़ कर उसे हृदय से लगा लिया। साथ ही उसने कहा :—"हे मित्र!

मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ! आपहीके प्रसादसे तो मुझे धर्मकी प्राप्ति हुई है।"

सुमित्रने भी विवेक दिखलाते हुए कहा :—"हे चित्रगति! आपने मुझ पर जो उपकार किया है, उसके सामने यह सब किसी हिसाबमें नहीं। यदि आपने मुझे जीवन-दान न दिया होता, तो मुझे धर्मप्राप्तिका अवसर ही न मिलता। उस अवस्थामें यह देवत्व तो दूर रहा, मैं प्रत्याख्यान और नमस्कार रहित मनुष्यत्वसे भी वञ्चित रह जाता।"

इस प्रकार वे दोनों मुक्त-कण्ठसे एक दूसरेकी प्रशंसा कर रहे थे। उनके इस अपूर्व मिलनका दृश्य वास्तवमें दर्शनीय था। वहाँ चक्रवर्ती सूर आदिक जो विद्याधर राजा उपस्थित थे, वे भी उन दोनोंकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करने लगे। चित्रगतिका अलौकिक रूप और गुण देख कर रत्नवती भी उसपर मुग्ध हो गयी और उसे अनुरागपूर्ण दृष्टिसे देखने लगी।

राजा अनंगसिंह पुत्रीकी यह अवस्था देखकर अपने मनमें कहने लगे :—"उस ज्योतिषीने जो कुछ कहा था,

वह अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुआ, क्योंकि इसी चित्रगति ने मेरा खड्ग छीन लिया था, इसी पर आकाशसे पुष्प-वृष्टि हुई है और इसी पर मेरी पुत्रीको अनुराग उत्पन्न हुआ है। निःसन्देह, यही रत्नवतीका भावी पति है। मुझे अब शीघ्र ही इससे रत्नवतीका व्याह कर देना चाहिये, परन्तु यहाँ पर देवस्थानमें विवाह विषयक बातचीत करना ठीक नहीं। नगरमें पहुँचनेके बाद इसकी चर्चा करना उचित होगा।"

यह सोच कर राजा अनंग सिंह सपरिवार अपने नगरको लौट आये। सुमित्रदेव तथा अन्यान्य विद्याधरोंका सत्कार कर, चित्रगति भी अपने पिताके साथ अपने नगरको वापस चला गया।

शीघ्र ही राजा अनंगसिंहने अपने प्रधान मन्त्रीको चित्रगतिके पिता राजा सूरकी सेवामें प्रेषित किया। उसने राज-सभामें उपस्थित हो, उन्हें प्रणाम करके कहाः—"हे स्वामिन्! आपके पुत्र चित्रगति और हमारी राज-कुमारी रत्नवती—दोनों रत्नके समान हैं। इनका विवाह कर देनेसे मणि-काञ्चन योगकी कहावत चरितार्थ हो

सकती है। हमारे महाराज इस सम्बन्धके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। यदि आप भी अपनी सम्मति प्रदान करेंगे तो हमलोग अपनेको कृत-कृत्य समझेंगे।"

राजा सूरने अनंगसिंहके मन्त्रीकी यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार ली। कुछ दिनोंके बाद शुभ मुहूर्तमें उन दोनों-का विवाह कर दिया गया। रत्नवती चित्रगतिको पति-रूपमें पाकर बहुत ही प्रसन्न हुई। वे दोनों गार्हस्थ्य सुख उपभोग करते हुए आनन्दपूर्वक अपने दिन निर्गमन करने लगे।

उधर धनदेव और धनदत्तके जीव च्युत होकर सूरके यहाँ पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए थे। चित्रगति अपने इन छोटे भाइयोंको बहुत ही प्रेम करता था। उनके नाम मनोगति और चपलगति रक्खे गये थे। बड़े होनेपर उन्हें भी समुचित शिक्षा दी गयी थी। विवाहके कई वर्ष बाद चित्रगति अपनी पत्नी और लघु बन्धुओंके साथ नन्दी-श्वरादि महातीर्थोंकी यात्रा करने गये। वहाँसे वापस लौटने पर उसके पिता सूरने उसे सिंहासन पर बैठा कर स्वयं दीक्षा लेली। चित्रगति योग्य पिताका पुत्र था।

इसलिये उसने अनेक खेचर राजाओंको वशमें कर अपने राज्यका विस्तार किया। साथ ही अपने प्रजा-प्रेम और अपनी न्याय-प्रियताके कारण वह शीघ्र ही प्रजाका प्रिय-पात्र बन गया।

चित्रगतिके एक जागिरदारका नाम मणिचूड़ था। उसकी मृत्यु हो जानेपर उसके शशि और शूर नामके दोनों पुत्र राज्य प्राप्तिके लिये आपसमें युद्ध करने लगे। चित्रगतिने उनके राज्यका बंटवारा कर दिया, ताकि सदाके लिये उनके वैमनस्यका अन्त हो जाय। उन्होंने उन्हें समझा-बुझाकर भी राह पर लानेकी चेष्टा की। उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि इस व्यवस्थासे उन्हें सन्तोष हो गया है और अब वे एक दूसरेसे न लड़ेंगे, परन्तु शीघ्रही उन दोनोंमें फिर घोर युद्ध हो गया, जिससे उन दोनोंको अपने-अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा।

चित्रगतिके हृदय पर इस घटनाका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उनका हृदय वैराग्यसे पूर्ण हो गया। वे अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! यह संसार बहुतही विषम है। इसमें कोई सुखी नहीं।" वे ज्यों-ज्यों विचार

करते गये, त्यों-त्यों उनका वैराग्य प्रबल होता गया। फलतः उन्होंने पुरन्दर नामक अपने बड़े पुत्रको राज्य-भार सौंपकर दमधर नामक आचार्यके निकट दीक्षा ले ली। रत्नवती तथा उनके दोनों लघु बन्धुओंने भी उनका अनुकरण किया। चित्रगतिने दीर्घकाल तक चारित्र पालन कर अन्तमें पादोपगमन अनशन किया, जिसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु होनेपर माहेन्द्र देवलोकमें वे महान देव हुए। उनके दोनों छोटे भाई और रत्नवतीको भी देवत्व प्राप्त हुआ। वे सब वहाँ पर स्वर्गीय सुख उपभोग करने लगे।

तीसरा परिच्छेद

पाँचवाँ और छठा भव

पश्चिम महा विदेहके पद्म नामक विजयमें सिंहपुर नामक एक नगर था। वहाँ हरिनन्दी नामक राजा राज करता था। उसकी रानीका नाम प्रियदर्शना था।

स्वर्गसे च्युत होनेपर चित्रगतिके जीवने उसके उदरसे पुत्र रूपमें जन्म लिया। राजाने बड़े प्रेमसे उसका जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम अपराजित रक्खा। बड़े होने-पर उन्होंने निपुण शिक्षा गुरुओं द्वारा उसे विवध विद्या और कलाओंकी शिक्षा दिलायी। क्रमशः वह किशोरा-वस्था अतिक्रमण कर यौवनकी वसन्त-वाटिकामें विचरण करने लगा।

राजकुमार अपराजितकी मन्त्री-पुत्र विमलबोधसे घनिष्ठ मित्रता थी, अतः एक दिन वे दोनों क्रीड़ा करनेके लिये घोड़ेपर सवार हो नगरके बाहर निकल गये। दुर्भाग्यवश उनके घोड़े अशिक्षित थे, इसलिये वे जंगलकी ओर भाग गये। अन्तमें, जब वे भागते-भागते थक गये, तब एक स्थानमें रुक गये। राजकुमार और मन्त्री-पुत्र भी श्रान्त और क्लान्त हो उठे थे, इसलिये शीघ्रही वे अपने-अपने घोड़े परसे उतर पड़े और एक वृक्षके नीचे बैठ कर विश्राम करने लगे। जब वे कुछ स्वस्थ हुए तब उनका ध्यान आसपासके रमणीय दृश्योंकी ओर आकर्षित हुआ। राजकुमारने उन दृश्योंको देखकर विमलबोधसे कहा :—

"हे मित्र ! यदि यह अश्व हमलोगोंको यहाँ न भगा लाये होते तो यह सुन्दर स्थान हमलोग कैसे देख पाते। यदि हमलोग इस स्थानमें आनेके लिये मातापिताकी आज्ञा लेने जाते, तो मेरा विश्वास है कि वे भी इसके लिये हमें कदापि आज्ञा न देते !"

मन्त्री-पुत्रने कहा :—"हाँ, राजकुमार ! आपका कहना बिलकुल ठीक है ! वास्तवमें यह स्थान बहुतही मनोरम और दर्शनीय है। यहाँ आतेही मानो सारी थकावट दूर हो गयी। मुझे तो इच्छा होती है कि मैं यहीं पड़ा रहूँ और नगर लौटनेका नाम तक न लूँ।"

जिस समय राजकुमार और मन्त्री-पुत्रमें इसी तरहकी बातचीत हो रही थी, उसी समय एक अपरिचित पुरुष राजकुमारके पास आकर खड़ा हो गया। उसका समूचा शरीर भयसे कांप रहा था। राजकुमारको देखते ही वह गिड़गिड़ा कर उनसे अपनी रक्षाकी प्रार्थना करने लगा। राजकुमारने उसे आश्वासन देकर उससे शान्त होनेको कहा। यह देखकर मन्त्री-पुत्रने राजकुमारसे कहा :—"हे मित्र ! इसकी रक्षा करनेके पहले हमें एक बार विचार

कर लेना चाहिये। यदि यह अन्यान्यी होतो इसकी रक्षा करना उचित नहीं।"

अपराजितने कहा :—"यह अन्यायी हो या न्यायी, हमें इसका विचार न करना चाहिये। शरणागतकी रक्षा करना क्षत्रियोंका परम धर्म है।"

राजकुमारकी यह बात अभी पूरी भी न होने पायी थी कि "मारो मारो" पुकारते और उसका पीछा करते हुए कई राज कर्मचारी वहाँ आ पहुँचे। उनके हाथमें नंगी तलवारें थी। उन्होंने राजकुमार और मन्त्री-पुत्रसे कहा :—"आपलोग जरा दूर हट जाइये। हम इस डाकू-सरदारको मारना चाहते हैं। इसने हमारे समूचे नगरको लूटकर तबाह कर डाला है!"

उनके यह वचन सुनकर राजकुमारने हँसते हुए कहा :—"यह हमारी शरणमें आया है। अब इसे इन्द्र भी नहीं मार सकते। आप लोगोंका तो कहना ही क्या है?"

यह सुनकर राजकर्मचारी आग बबूला हो उठे। वे अपनी तलवार खींचकर उस डाकू सरदारकी ओर झपटे

पड़े। परन्तु राजकुमार भी असावधान न थे। वे भी अपनी तलवार खींचकर उन राज-कर्मचारियोंपर टूट पड़े। राज-कर्मचारियोंमें इतना साहस कहाँ कि वे सिंह-शावकके सामने ठहर सकें। दो चार हाथ दिखाते ही सारा मैदान साफ हो गया। वे भागकर अपने स्वामी कोसल-राजके पास पहुँचे और उन्हें सारा हाल कह सुनाया। वे भी डाकूके रक्षकों पर बेहतर नाराज हुए। उन्होंने उन्हें पराजित करनेके लिये अपनी विशाल सेना रवाना की, परन्तु अपराजितने देखते-ही-देखते उसके भी दांत खट्टे कर दिये। अपनी सेनाका यह पराजय-समाचार सुनकर कोसलराज आग बबूला हो उठे। इसबार वे स्वयं बहुत बड़ी सेना लेकर उन युवकोंको दण्ड देनेके लिये उनके सामने आ उपस्थित हुए। राजकुमारने इसबार कठिन मोर्चा देखकर उस चोरको तो मन्त्री-पुत्रके सिपुर्द कर दिया और वह अकेला ही उस समुद्र समान सेनामें घुसकर उसका संहार करने लगा। शीघ्रही उसे कोसलराजकी सेनामें एक ऐसा हाथी दिखायी दिया, जिसपर एक महावतके सिवा और कोई सवार न था। वह सिंहकी

तरह तड़पकर उसी क्षण उस हाथीके दांतों पर चढ़ गया और एकही हाथमें उसके कन्धे पर बैठे हुए महावत का काम तमाम कर डाला। इसके बाद वह उसी हाथी पर बैठकर बड़ी निपुणताके साथ शत्रु-सेनासे युद्ध करने लगा।

इसी समय कोसलराजके एक मन्त्रीकी दृष्टि उस पर जा पड़ी। उसे देखते ही उसने राजासे कहा :—"हे राजन्! इस युवकको तो मैं पहचानता हूँ। यह राजा हरिनन्दी का पुत्र है!"

मन्त्रीके यह वचन सुनकर राजाको बड़ाही आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसी समय संकेत कर अपनी सेनाको युद्ध करनेसे रोक दिया। इसके बाद सैनिकोंसे घिरे हुए राज-कुमारके पास पहुँच कर उन्होंने कहा :—"हे कुमार! तुम तो हमारे मित्र हरिनन्दीके पुत्र हो। तुम्हारा बल और रण-कौशल देखकर मैं बहुत ही सन्तुष्ट हुआ हूँ। सिंह-शावकके सिवा गजराजका मस्तक और कौन विदीर्ण कर सकता है? हे महानुभाव! तुमसे युद्ध करना हमारे लिये शोभाप्रद नहीं है। तुम हमारे घर चलो और

हमारा आतिथ्य ग्रहण करो। मैं अपने पुत्र और अपने मित्रके पुत्रमें कोई अन्तर नहीं समझता !"

इतना कह, राजकुमारको गले लगा, हाथी पर बैठाकर कोसलराज उसे अपने महलमें लिवा ले गये। मन्त्री-पुत्र भी उस शरणागत डाकूको छोड़कर राजकुमारके साथ कोशलराजके महलमें आया। वहाँपर दोनोंने कई दिन-तक राजाका आतिथ्य ग्रहण किया। कोसलराजके कनक-माला नामक एक कन्या भी थी। उसकी अवस्था विवाह योग्य हो चुकी थी, इसलिये कोसलराजने इस अवसरसे लाभ उठाकर राजकुमार अपराजितसे उसका विवाह कर दिया। इससे उन सबोंके आनन्दमें सौगुनी वृद्धि हो गयी। नगरमें भी कई दिनों तक बड़ी धूमधामसे आनन्दोत्सव मनाया गया। राजकुमार अपराजित अपने मित्र मन्त्री-पुत्रके साथ दीर्घकाल तक विविध सुखोंका रसास्वादन करते रहे।

बीच बीचमें उन्होंने कई बार राजासे विदा माँगी, परन्तु स्नेहवश कोसलराजने इन्हें जानेकी आज्ञा न दी। दोनोंने जब देखा कि इस तरह कोसलराजसे विदा ग्रहण

करना सहज नहीं है, तब एक दिन वे चुप-चाप वहाँसे चल पड़े।

जिस समय राजकुमार अपराजित और मन्त्री-पुत्र कोसलराजके नगरसे बाहर निकले, उस समय रातके बारह बज चुके थे। चारों ओर घोर सन्नाटा था। नगर-निवासी निद्रादेवीकी गोदमें पड़े हुए आनन्दपूर्वक विश्राम कर रहे थे, इसलिये उन दोनोंको नगर-त्याग करनेमें किसी प्रकार की कठिनाईका सामना न करना पड़ा। दोनोंने सहर्ष वहाँसे अपने नगरकी राह ली।

रास्तेमें एक स्थानपर कालिदेवीका मन्दिर था। उसके निकट पहुँचने पर राजकुमारने किसीके रोनेकी आवाज सुनी। उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो कोई स्त्री यह कहकर रो रही है कि—"क्या यह भूमि पुरुष रहित हो गयी है? क्या इस पृथ्वीपर अब कोई ऐसा वीर नहीं, जो इस हत्यारेसे मेरी रक्षा कर सके?" वे शीघ्रही लपक कर उस स्थानमें पहुँचे। उन्होंने देखा कि मन्दिरके अन्दर एक अग्निकुण्डके पास एक स्त्री बैठी हुई है और उसीके सामने एक विद्याधर नंगी तलवार लिये खड़ा है।

"हे नराधम ! इस अबलापर हाथ उठाते तुझे लज्जा नहीं आती ?

(पृष्ठ ५७)

सुन्दरी उसके भयसे थरथर काँप रही थी। राजकुमारको देखकर वह पुनः अपनी प्राण-रक्षाके लिये जोरसे चिल्ला उठी। राजकुमारने उसकी ओर आश्वासन भरी दृष्टिसे देखकर उस विद्याधरसे कहा :—"हे नराधम! अबलापर हाथ उठाते तुझे लज्जा नहीं आती? यदि तुझे अपने बलका कुछ भी घमण्ड हो तो मुझसे युद्ध करनेको तैयार हो जा! अब मैं तुझे कदापि जीता न छोड़ूँगा।"

राजकुमारकी यह ललकार सुनकर पहले तो वह विद्याधर कुछ लज्जित हुआ, किन्तु इसके बाद उसने कहा :—"हे युवक! मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो, किन्तु मैं तुम्हारी चुनौती स्वीकार करता हूँ। मैं समझता हूँ कि तुम्हारी मृत्युही तुम्हें यहाँ खींच लायी है और इसीलिये तुमने मेरे कार्यमें बाधा देनेका साहस किया है।"

बस, फिर क्या था? दोनों एक दूसरेसे भिड़ पड़े। दोनों ही युद्ध विद्यामें निपुण थे, इसलिये एक दूसरेपर अस्त्र शस्त्रका प्रयोग करने लगे। यह युद्ध दीर्घकाल तक होता रहा, किन्तु कोई किसीको पराजित न कर सका। अन्तमें वे दोनों अस्त्र शस्त्र छोड़कर भुजा-युद्ध करने लगे।

उसके मुखसे एक भी शब्द न निकल सका। वह तो अपनी रक्षाके लिये कृतज्ञता प्रकट करना चाहती थी, परन्तु विधाताका विधान कुछ और ही था। राजकुमारका अलौकिक रूप देखतेही वह तन मनसे उसपर मुग्ध हो गयी। उसका हृदय उसके हाथसे निकल गया। वह अपनी आँखे सकुचाकर व्याकुलता पूर्वक जमीनकी ओर देखने लगी। उसे भी विद्याधरकी भाँति अपने तन-मनकी खबर न रही। परन्तु विद्याधर और उसमें यह अन्तर था कि विद्याधर चेतना रहित था, और वह चेतना होते हुए भी मूर्च्छित सी हो रही थी।

वीरता और क्रूरता भिन्न भिन्न चीजें हैं। राजकुमार अपराजित वीर होने परभी हृदयहीन न थे। उन्होंने शीघ्रही समुचित उपचार कर उस विद्याधरको स्वस्थ बनाया। उसे भलीभाँति होश आनेपर उन्होंने कहा :—"यदि अब भी तुम्हें युद्ध करनेका हौंसला हो, तो मैं तैयार हूँ?"

विद्याधरने कहा :—"नहीं, अब मैं युद्ध करना नहीं चाहता। सच्चे वीर अपने विजेताका सम्मान करते हैं।

मुझे भी अब अपनी पराजय स्वीकार कर तुम्हारा आदर करना चाहिये। तुमने यहाँ आकर मुझे स्त्री-वधके पापसे बचाया है, इसलिये मैं तुम्हारा चिरऋणी रहूँगा। वास्तवमें तुमने मुझसे युद्ध कर मेरा अपकार नहीं, उपकारही किया है। परन्तु अब मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे वक्षमें एक मणि और कुछ जड़ी-बूटी बँधी हुई हैं, मणिको जलमें डुबोकर उसी जलसे उन जड़ी बूटियोंको घिस कर जख्मोंपर लगानेसे मैं पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो जाऊँगा। दयाकर इतना उपकार और कीजिये, फिर मैं सहर्ष अपना रास्ता लूँगा।"

यह सुनकर राजकुमारने बड़ी खुशीके साथ विद्याधरका इलाज किया। जड़ीको घिसकर लगाते ही उसके सब जख्म अच्छे हो गये और ऐसा मालूम होने लगा मानो कुछ हुआ ही न था। उसे स्वस्थ देखकर राजकुमारने पूछा :—"क्या आप अपना और इस स्त्रीका परिचय देनेकी कृपा करेंगे?"

विद्याधरने कहा :—"मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। यदि आप यह सब बातें सुनना चाहते हैं तो सहर्ष सुनिये।

मैं श्रीषेण नामक विद्याधरका पुत्र हूँ। मेरा नाम सुरकान्त है। यह स्त्री रथनूपुर नगरके राजा अमृतसेन की कन्या है। इसका नाम रत्नमाला है। एकबार एक ज्ञानीने बतलाया था कि हरिनन्दी राजाके अपराजित नामक राजकुमारसे इसका व्याह होगा। तबसे वह मन-ही-मन उसीको प्रेम करती थी। दूसरे की ओर आंख उठाकर देखती तक न थी। संयोगवश एकबार मैंने इसे देख लिया। मुझे इच्छा हुई कि इससे व्याह करना चाहिये, इसलिये मैंने इससे पाणिग्रहण की प्रार्थना की, किन्तु इसने मेरी प्रार्थनाको ठुकराते हुए कहा :—"या तो अपराजित ही मेरा पाणिग्रहण करेंगे या अग्निदेव ही अपनी गोदमें मुझे स्थान देंगे। इन दो के सिवा मेरे शरीरकी तीसरी गति नहीं हो सकती।" इसका यह उत्तर सुनकर मुझे क्रोध आ गया। और मैं यहाँ इस मन्दिरमें आकर दुःसाध्य विद्या की साधना करने लगा। इसके बाद मैंने फिर कई बार इससे प्रार्थना की, किन्तु जब इसने मेरी एक न सुनी, तब मैं इसका हरण कर इसे यहाँ उठा लाया। मैं कामान्ध हो गया था, मेरी विचार शक्ति नष्ट हो गयी.

थी। इसलिये मैं इसके टुकड़े कर अग्निकुण्डमें डाल देनेकी तैयारी कर रहा था। इतनेही में यहाँ आकर आपने इसकी प्राण-रक्षा की, साथ ही मुझे भी नरकमें जानेसे बचाया। सच पूछिये तो आपने हम दोनों पर बड़ाही उपकार किया है। हे महाभाग! यही मेरा और इस सुन्दरीका परिचय है। यदि आपत्ति न हो तो आप भी अब अपना परिचय देनेकी कृपा करें।"

विद्याधर की यह प्रार्थना सुनकर राजकुमारने एक मतलब भरी दृष्टिसे मन्त्री-पुत्रकी ओर देखा। मन्त्री-पुत्रने उनका तात्पर्य समझ कर विद्याधरको उनके नाम और कुलादिकका परिचय दिया। राजकुमारका प्रकृत परिचय पाकर रत्नमाला भी आनन्द से पुलकित हो उठी। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो परमात्माने ही उस-पर दया कर उसके इष्टको यहाँ भेज दिया है। वह इसके लिये उसे अनेकानेक धन्यवाद देने लगी।

इसी समय रत्नमालाको खोजते हुए उसकी माता कीर्तिमती और उसके पिता अमृतसेन भी वहाँ आ पहुँचे। उनके पूछने पर मन्त्री-पुत्रने उन्हें सारा हाल कह सुनाया।

उन्हें जब यह मालूम हुआ कि रत्नमालाके भावी पतिने ही संयोगवश वहाँ पहुँच कर उसकी रक्षा की है, तब उनके आनन्दका वारापार न रहा। उन्होंने उसी समय अपराजितके साथ रत्नमालाका व्याह कर दिया। सूर-कान्त पर राजा अमृतसेनको बड़ाही क्रोध आया, परन्तु अपराजितके कहनेसे उन्होंने उसका अपराध क्षमा कर दिया। इसके बाद राजा अमृतसेनने अपराजितसे अपने नगर चलने की प्रार्थना की, किन्तु अपराजितने इस बात-को अस्वीकार करते हुए कहा :—"इस समय आप मुझे क्षमा करिये। अपने नगर पहुँचने पर मैं आपको सूचना दूँगा, तब आप रत्नमालाको मेरे पास पहुँचा दीजियेगा। भविष्यमें यदि कभी इस तरफ आऊँगा, तो आपका आतिथ्य अवश्य ग्रहण करूँगा।"

इतना कह राजकुमारने राजा अमृतसेन, रत्नमाला और उसकी मातासे विदा ग्रहण की। विद्याधर सूरकान्त ने भी उसे प्रेम पूर्वक विदा किया। उसने चलते समय अपराजितको पूर्वोक्त मणि और जड़ी-बूटी तथा मन्त्री-पुत्र को वेष बदलने की गुटिका अपनी ओरसे भेट दीं।

मालूम होते थे, फिर भी पूर्वजन्मके स्नेहानुभावके कारण प्रीतिमती उन्हें देखते ही उनपर अनुरक्त हो गयी। इसके बाद यथाविधि वाद-विवाद आरम्भ हुआ। प्रीतिमतीने पूर्वपक्ष लिया, परन्तु अपराजित इससे विचलित न हुए। उन्होंने उसके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए इतनी सुन्दरतासे उसकी युक्तियोंका खण्डन किया, कि वह अवाक् बन गयी। उसने उसी क्षण अपनी पराजय स्वीकार कर राजकुमारके गलेमें जयमाल पहना दी।

परन्तु राजकुमारकी यह विजय देखकर समस्त भूचर और खेचर राजा ईर्ष्याग्निसे जल उठे। वे कहने लगे :—"क्या हमारे रहते हुए यह दरिद्री इस राजकन्याको ले जायगा? हम यह कदापि न होने देंगे। इतना कह वे सब शस्त्रास्त्रसे सज्जित हो राजकुमार पर आक्रमण करने लगे। उनकी सेना भी इधर-उधर दौड़धूप करने लगी। राजकुमार इस युद्धके लिये तैयार न थे किन्तु ज्योंही राजाओंने रंग बदला, त्योंही वे एक हाथीके सवारको मारकर उसपर चढ़ बैठे और उसके हौदेमें जो शस्त्रास्त्र रक्खे थे, उन्हींको लेकर वे युद्ध करने लगे। कुछ देर

बाद इसी तरह एक रथके सवारको मारकर उन्होंने उस रथपर कब्जा कर लिया और उसपर बैठकर वे युद्ध करने लगे। इस प्रकार कभी रथपर कभी हाथीपर और कभी जमीनपर रहकर युद्ध करनेसे वे एक होने पर भी ऐसे मालूम होने लगे मानो कई राजकुमार युद्ध कर रहे हैं। उन्होंने अपने विचित्र रण-कौशलसे थोड़ी ही देरमें शत्रु-सेनाको इस तरह छिन्न-भिन्न कर डाला कि उसमें बेतरह भगदड़ मच गयी।

परन्तु भूचर और खेचर राजाओंके लिये यह बड़ी लज्जाकी बात थी। एक तो राजकन्या द्वारा वे वाद-विवादमें पराजित हुए थे, दूसरे अब राजकुमार अपराजित, जिसे वे कोई साधारण व्यक्ति समझ रहे थे, अकेला ही उनका मान-भङ्ग कर रहा था। वे अपनी इस पराजयसे झल्ला उठे और बिखरी हुई सेनाको एकत्र कर फिरसे युद्ध करने लगे। इसबार राजकुमारने राजा सोमप्रभका हाथी छीन लिया और उसपर बैठकर वे शत्रुसेना का संहार करने लगे।

इस युद्धमें भी वे न जाने कितने सैनिकोंका काम

तमाम कर डालते, परन्तु सौभाग्यवश उनके कितनेही लक्षण और तिलक आदि देखकर राजा सोमप्रभने उनका पहचान लिया। उन्होंने राजकुमारको प्रेमपूर्वक गले लगाकर कहा :—"हे कुमार! मैंने तुम्हें पहचान लिया! तुम तो मेरे भानजे हो!"

राजा सोमप्रभके मुखसे राजकुमार अपराजितका परिचय पाकर सब राजाओंने युद्ध करना बन्द कर दिया। अब तक जो शत्रु बनकर युद्ध कर रहे थे, वही अब मित्र बनकर अपराजितके विवाहमें योग-दान करने लगे। राजा जितशत्रुने शुभमुहूर्त्तमें बड़ी धूमधामसे राजकुमार अपराजितके साथ प्रीतिमतीका विवाह कर दिया। विवाहके समय राजकुमारने अपना प्रकृत रूप प्रकट किया, जिसे देखकर राजा जितशत्रु तथा राजकन्या प्रीतिमती विशेषरूपसे आनंदित हुए।

विवाहकार्य सानन्द सम्पन्न हो जानेपर राजा जितशत्रुने समस्त राजाओंको सम्मानपूर्वक बिदा किया। राजकुमार अपराजित अपने मित्र विमलबोधके साथ कुछ दिनोंके लिये वहीं ठहर गये और अपनी नव-विवाहिता

पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। राजा जितशत्रुके मन्त्रीकी भी एक कन्या थी, जिसकी अवस्था विवाह करने योग्य हो चुकी थी। इस बीचमें उसने उसका व्याह विमलबोधके साथ कर दिया जिससे उसके जीवनमें भी आनन्द की बाढ़ आ गयी। दोनों मित्र दीर्घकाल तक अपने श्वसुरका आतिथ्य ग्रहण करते रहे।

राजकुमार अपराजितकी इस विजय और विवाहका समाचार धीरे धीरे राजा हरिनन्दीके कानों तक जा पहुँचा। उन्होंने राजकुमारका पता पाते ही उसके पास एक दूत भेजा। राजकुमारने उसका स्वागत कर अपने माता-पिताका कुशल-समाचार पूछा। उत्तरमें दूतने सजल नेत्रोंसे कहा :—"हे राजकुमार! वे किसी तरह जीते हैं यही कुशल समझिये। वैसे तो वे आपके वियोगसे मृत-प्राय हो रहे हैं। रात दिन वे खिन्न और दुःखित रहते हैं। किसी काममें उनका जी नहीं लगता। आनन्द जैसी वस्तु तो मानो अब उनके जीवनमें है ही नहीं। बीच बीचमें जब कभी आपके सम्बन्धकी कोई उड़ती हुई खबर

उनके कानों तक पहुँच जाती है, तब वे कुछ क्षणोंके लिये आनन्दित हो उठते हैं और उनका हृदय आशासे भर जाता है, परन्तु कुछ देरके बाद फिर उनकी आशा निराशामें परिणत हो जाती है और वे फिर उसी तरह निराश हो जाते हैं। इसबार आपका विश्वसनीय पता पाकर उन्होंने आपको बुला लानेके लिये मुझे भेजा है। आप मेरे साथ शीघ्रही चलिये और अपने माता-पिताकी वियोग व्यथा दूर कर उनके जीवनको सुखी बनाइये।"

दूतके यह वचन सुनकर राजकुमारके नेत्रोंसे आंसू आ गये। उन्होंने कहा :—"मेरे कारण मेरे माता-पिताको जो दुःख हुआ है, उसके लिये मुझे आन्तरिक खेद है। चलो, अब मैं शीघ्रही तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

इतना कह राजकुमार अपराजित राजा जितशत्रुके पास गये और उनसे सारा हाल निवेदन किया। राजा जितशत्रुने उसी समय उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी। वे उनसे बिदा ग्रहण कर अपने नगरकी ओर चल पड़े। इसी समय अपनी दोनों पुत्रियोंके साथ विद्याधर भुवनभानु तथा भिन्न-भिन्न वे राजे भी अपनी-अपनी

कन्याओंके साथ वहाँ आ पहुँचे, जिनके साथ राजकुमारने ब्याह किया था। विद्याधर सूरकान्त भी कहींसे घूमता-घामता वहाँ आ पहुँचा। राजकुमारने अपनी समस्त पत्नियों तथा भूचर और खेचर राजाओंके साथ सिंहपुरकी ओर प्रस्थान किया।

शीघ्रही यह सब दल सिंहपुर जा पहुँचा। वहाँ उसके आगमनका समाचार पहले ही पहुँच गया था, इसलिये नगर-निवासियोंने उनके स्वागतके लिये बड़ी-बड़ी तैयारियां कर रक्खी थीं। जिस समय राजकुमार अपराजित अपनी पत्नियोंके साथ अपने माता-पिताके सामने पहुँचे, उस समयका दृश्य बहुतही हृदयस्पर्शी था। सबकी आँखोंमें आनन्दाश्रु झलक रहे थे। राजा हरिनन्दी पुत्रको गले लगाकर उसके मस्तक पर बारंबार चुम्बन करने लगे। उनके नेत्र उसे देखकर मानो तृप्त ही न होते थे। माताने भी पुत्रकी पीठ पर हाथ फेरकर उसे आशीर्वाद दिया और उसे चुम्बनकर अपना प्रेम व्यक्त किया। इसके बाद प्रीतिमती आदिक पुत्रवधुओंने भी अपने सास-श्वसुरको प्रणाम किया और विमलबोधने उनसे उन

सबोंका परिचय कराया। राजकुमारके साथ जो भूचर और खेचर राजे आये थे, वे कई दिन तक राजा हरिनन्दी का आतिथ्य ग्रहण करते रहे। इसके बाद उन सबोंको सम्मानपूर्वक बिदा कर राजकुमार अपराजित अपने माता-पिताको आनन्दित करते हुए वहीं अपने दिन निर्गमन करने लगे।

उधर मनोगति और चपलगति दोनों महेन्द्र देव-लोकसे च्युत होकर अपराजितके सूर और सोम नामक लघु बन्धु हुए। कुछ दिनोंके बाद राजा हरिनन्दीने समस्त राज्य-भार अपराजितको सौंपकर स्वयं दीक्षा लेली और दीर्घकाल तक तपस्या कर अन्तमें उन्होंने परमपद प्राप्त किया। इधर राजा अपराजितने प्रीतिमतीको पटरानी, विमलबोधको मन्त्री और अपने दोनों लघु बधुओंको माण्डलिक राजा बना दिया। वह राज्य-शासनमें सदा न्याय और नीतिसे काम लेता था, इसलिये प्रजाका प्रेम सम्पादन करनेमें भी उसे देरी न लगी। इस प्रकार प्रजापालन करते हुए राजा अपराजितके दिन आनन्दमें कटने लगे। उन्होंने दीर्घकाल तक शासन किया और

अपने शासनकालमें अनेक जिन-चैत्योंकी रचना करायी तथा अनेक वार तीर्थाटन कर अपना जीवन और धन सार्थक किया।

एकदिन राजा अपराजित उद्यानकी सैर करने गये। वहाँ उन्होंने एक धनीमानी सार्थवाहको देखा, जो अपने इष्ट-मित्र और स्त्रियोंके साथ वहाँ क्रीड़ा करने गया था। वह उस समय याचकोंको दान दे रहा था और वन्दीजन उसकी विरदावली गा रहे थे। उसका ठाट-बाट देखकर राजा अपराजित चकित हो गये। उन्होंने अपने एक सेवकसे उसका परिचय पूछा। उसने बतलाया—"महाराज! यह हमारे नगरके समुद्रपाल नामक सार्थवाहका पुत्र है। इसका नाम अनंगदेव है।"

राजा यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"धन्य है मुझे, कि मेरे राज्यमें ऐसे उदार और धनीमानी व्यापारी निवास करते हैं।"

अस्तु। उस दिन तो राजा अपने वासस्थानको लौट गये। किन्तु दूसरे दिन वे जब फिर नगरमें घूमने निकले तो उन्होंने देखा कि नगरके किसी प्रतिष्ठित पुरुष

की मृत्यु हो गयी है और उसके शवको हजारों आदमी श्मशान लिये जा रहे हैं। शवके पीछे कई स्त्रियाँ बाल बिखेरे हृदय भेदक ध्वनिसे करुण क्रन्दन कर रही थीं। राजाने सेवकसे पूछा :—"यह कौन है?—किसकी मृत्यु हो गयी है?" सेवकने बतलाया—"महाराज! यह वही अनङ्गदेव सार्थवाह है, जिसे कल आपने बगीचे में देखा था। आज विशूचिका—हैजेकी बीमारीसे इसकी मृत्यु हो गयी है!"

यह सुनकर राजाको बड़ाही दुःख हुआ। साथही मनुष्य जीवन की यह क्षणभंगुरता देखकर उनका हृदय वैराग्यसे भर गया। वे खिन्नतापूर्वक अपने वासस्थानको लौट आये और यथानियम अपने राजकाज देखने लगे, परन्तु इस दिनसे किसी भी काममें उनका जी न लग सका। उनकी आन्तरिक शान्ति नष्ट हो गयी और उसका स्थान सदाके लिये अशान्तिने अधिकृत कर लिया।

पाठकोंको स्मरण होगा, कि देशाटनके समय कुण्डलपुरमें अपराजितको एक केवलीके दर्शन हुए थे। कुछ दिनोंके बाद वही केवली भगवान एक दिन सिंहपुर आ

पहुँचे। राजा अपराजितने बड़ी श्रद्धाके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हो उनका धर्मोपदेश सुना। इसके बाद उन्होंने प्रीतिमतीके उदरसे उत्पन्न पद्म नामक अपने पुत्रको राज्यभार सौंप, उन्हींके निकट दीक्षा ले ली। रानी प्रीतिमती, लघु बन्धु सूर और सोम तथा मन्त्री विमलबोधने भी उनका अनुकरण कर उसी समय दीक्षा लेली। इन सब लोगोंने अपने जीवनका शेष समय तपस्या करनेमें बिताया, मृत्यु होने पर आरण देवलोकमें इन्हें इन्द्रके समान देवत्व प्राप्त हुआ और वे सब परस्पर प्रेम करते हुए स्वर्गीय सुख उपभोग करने लगे।

चौथा परिच्छेद

सातवाँ और आठवाँ भव

इस जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें कुरु नामक एक देश था। उसके हस्तिनापुर नामक नगरमें श्रीषेण नामक एक राजा राज्य करते थे, उनकी रानीका नाम श्रीमती था।

उसने एक दिन पिछली रातमें स्वप्न देखा कि मानो उसके मुखमें पूर्णचन्द्र प्रवेश कर रहा है। सुबह राजाकी निन्द्रा भङ्ग होने पर उसने वह स्वप्न उन्हें कह सुनाया। उन्होंने उसी समय स्वप्न पाठकोंको बुलाकर इस स्वप्नका फल पूछा। स्वप्न पाठकोंने कहा :—"महाराज! यह स्वप्न बहुत ही उत्तम है। इसके प्रभावसे रानीको एक परम प्रतापी पुत्र होगा, जो शत्रुरूपी समस्त अन्धकार का नाश करेगा।"

यह स्वप्न फल सुनकर राजा और रानी अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ दिनके बाद अपराजितका जीव देव-लोकसे च्युत होकर उस रानीके उदरमें आया और गर्भ-काल पूर्ण होने पर उसने यथासमय एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। राजाने इस पुत्रका नाम शंख रक्खा। जब उसकी अवस्था कुछ बड़ी हुई, तब राजाने उसकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया और उसने थोड़े ही दिनोंमें अनेक विद्या तथा कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली। धीरे धीरे किशोरावस्था अतिक्रमण कर वह यौवनके कुसुमित वनमें विचरण करने लगा।

उधर विमलबोधका जीव देवलोकसे च्युत होकर श्रीषेण राजाके मन्त्रीके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम मतिप्रभ रक्खा गया। पूर्व सम्बन्धके कारण शंखकुमार और उसमें बाल्यावस्थासे ही मित्रता हो गयी। यह मैत्री-बन्धन दिन प्रतिदिन दृढ़ होता गया और बाल्यावस्थाकी भांति युवावस्थामें भी वे दोनों एक दूसरेके घनिष्ठ मित्र बने रहे।

एक दिन प्रजाके एक दलने श्रीषेण राजाकी सेवामें उपस्थित होकर प्रार्थना की कि :—"हे राजन्! आपके राज्यकी सीमा पर विशाल शृंग नामक एक बहुत ही विषम पर्वत है। उसमें शिशिरा नामक एक नदी भी बहती है। उसी पर्वतके कीलेमें समरकेतु नामक एक पल्लीपति रहता है। वह हमलोगों पर बड़ा ही अत्याचार करता है और हमलोगोंको दिन दहाड़े लूट लेता है। हे राजन्! यदि आप उसके अत्याचारसे हमारी रक्षा न करेंगे, तो हमलोग आपका राज्य छोड़ कर कहीं अन्यत्र जा बसेंगे।"

प्रजाके यह वचन सुनकर राजाने उसे आश्वासन दे

विदा किया और पल्लीपति पर आक्रमण करनेके लिये उसी समय सैन्यको तैयार होनेकी आज्ञा दी। रणभेरीका आवाज सुनकर नगरमें खलबली मच गयी। शंखकुमार उसका कारण जानकर पिताके पास दौड़ आये और उन्हें प्रणाम कर कहने लगे :—"हे पिताजी! एक साधारण पल्लीपति पर आप इतना क्रोध क्यों करते हैं? शृगाल पर सिंहको हाथ डालनेकी जरूरत नहीं। उसके लिये तो हमीं लोग काफी हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं शीघ्र ही उसे गिरफ्तार कर आपकी सेवामें हाजिर कर सकता हूँ।"

पुत्रके यह वचन सुनकर राजाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने पल्लीपतिको दण्ड देनेके लिये शंखकुमारकी अधिनायकतामें एक बड़ी सेना रवाना की। परन्तु पल्लीपति बड़ा ही धूर्त था। उसने ज्यों ही सुना कि शंखकुमार इस ओर आ रहे हैं, त्यों ही वह अपने किलेको खाली कर एक गुफामें जा छिपा। कुशाग्रबुद्धि शंखकुमार उसकी यह चाल पहले ही समझ गये, इसलिये उन्होंने कुछ सेनाके साथ एक सामन्तको उस किलेमें भेज

दिया और वे स्वयं एक गुफामें छिप रहे। पल्लीपतिने समझा कि शंखकुमार समस्त सेनाके साथ दुर्गमें चले गये हैं; इसलिये अब उन्हें घेर लेना चाहिये। यह सोच कर उसने दुर्गको चारों ओरसे घेर लिया। शंखकुमारने यही समय उपयुक्त समझ कर बाहरसे उस पर आक्रमण कर दिया। अब उस पर दोनों ओरसे मार पड़ने लगी। एक ओरसे उस पर दुर्गकी सेना टूट पड़ी और दूसरी ओरसे शंखकुमारकी सेनाने धावा बोल दिया। दोनों सेनाओंके बीचमें वह बुरी तरह फँस गया। जब उसने देखा कि बचनेका कोई उपाय नहीं है, तब अत्यन्त दीनता पूर्वक कंठमें कुठार डाल कर, वह शंखकुमारकी शरणमें आया। उसने कहा :—"हे स्वामिन्! मैं अपनी पराजय स्वीकार कर आपकी शरणमें आया हूँ। अब मैं आपका दास होकर रहूँगा। आप मुझसे जो चाहें सो दण्ड ले लीजिये और मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये!"

पल्लीपतिकी यह प्रार्थना सुनकर शंखकुमारने उससे वह सब माल ले आनेको कहा, जो उसने आसपासके

दिन राजा सुमुख और उनकी उस रानीकी दृष्टि उसपर जा पड़ी। इससे वे दोनों संवेगको प्राप्त हुए। इतनेहीमें अचानक बिजली गिरनेसे उन दोनोंकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके बाद वे दोनों हरिवर्ष क्षेत्रमें जोड़ बच्चोंके रूपमें उत्पन्न हुए और एक दूसरेके भाई बहन कहलाये।

उधर वीर भी अज्ञानतापूर्वक कष्ट सहन कर सौधर्म देवलोकमें किल्विष देव हुआ। पूर्व जन्मके वैरसे वह उन दोनोंका हरणकर चम्पा नगरीमें ले गया। वहाँपर राजा चन्द्रकीर्तिकी मृत्यु हो गयी थी। उसके कोई उत्तराधिकारी न था, इसलिये उसने उन दोनोंको उसका राज्य दे दिया। साथ ही उसने अपनी देवशक्तिसे उनकी आयु घटा दी, उनके शरीर पाँच सौ धनुष परिमाण बना दिये, उनके नाम हरि और हरिणी रख दिये और उन्हें मद्यमांसादिक भक्षण करना सिखा दिया। इतना करनेके बाद वह किल्विष देव अपने वासस्थानको चला गया। कालान्तरमें उन्हीं दोनोंसे हरिवंशकी उत्पत्ति हुई।

सौवीर देशमें यमुना नदीके तटपर मथुरा नामक एक नगरी थी। वहाँपर किसी समय हरिवंश कुलोद्भव

वसुराजाके पुत्र राजा बृहद्ध्वज राज्य करते थे। बृहद्ध्वज के बहुत दिन बाद उसी कुलमें यदु नामक एक राजा हुआ। उसके शूर नामक एक पुत्र था। शूरके शौरि और सुवीर नामक दो पुत्र हुए। यथा समय शौरिको अपना राज्यासन और सुवीरको युवराज पद देकर शूर राजाने दीक्षा ले ली। कुछ दिनोंके बाद मथुराका राज्य सुवीरको देकर शौरि कुशार्त्त देशको चला गया और वहाँपर उसने शौर्यपुर नामक एक नगर बसाया।

शौरी राजाके अन्धकवृष्णी और सुवीरके भोजवृष्णी आदि कई भाग्यशाली पुत्र हुए, जिन्होंने संसारमें बड़ी नामना प्राप्त की। कुछ दिनोंके बाद मथुराका राज्य भोजवृष्णीको देकर सुवीर सिन्धु देशको चला गया और वहाँ शौवीरपुर नामक नगर बसाकर वहीं उसने निवास किया। शौरी राजाने अन्धकवृष्णीको अपना राज्य देकर सुप्रतिष्ठ मुनिके पास दीक्षा ले ली और बहुत दिनों-तक जपतप कर वह मोक्षका अधिकारी हुआ।

यथासमय भोजवृष्णीके उग्रसेन नामक पुत्र हुआ और अन्धकवृष्णीके सुभद्रादेवीसे दस पुत्र हुए जो समुद्र-

विजय, अक्षोभ्य, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव आदि नामसे प्रसिद्ध हुए। यह दस भाई संसारमें दशार्ह नामसे भी सम्बोधित किये जाते थे। उनके कुन्ती और माद्री नामक दो छोटी बहनें थीं। कुन्तीका विवाह राजा पाण्डु और माद्रीका विवाह राजा दमघोषके साथ हुआ।

एक दिन राजा अन्धकवृष्णीने सुप्रतिष्ठ नामक अवधि ज्ञानी मुनिसे पूछा :—"हे स्वामिन्! मेरा दसवाँ पुत्र वसुदेव इतना रूपवान, गुणवान और भाग्यशाली क्यों है? यही सब बातें उसके दूसरे भाइयोंमें क्यों नहीं पायी जातीं?

सुप्रतिष्ठ मुनिने कहा :—"हे राजन्! इसका एक कारण है जो मैं तुझे बतलाता हूँ। सुनो, एक समय मगध देशके नन्दी ग्राममें एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमिला और उसके पुत्रका नाम नन्दिषेण था। नन्दिषेणका भाग्य बहुत ही मन्द था, इसलिये बाल्यावस्थामें ही उसके माता-पिताका देहान्त हो गया। नन्दिषेण कुरूप था, और उसके राशी-ग्रह

भी खराब थे ; इसलिये अन्यान्य रिश्तेदारोंने भी उसका त्याग कर दिया। लाचार, नन्दिषेण, मेहनत मजदूरी कर किसी तरह अपना पेट भरने लगा। उसकी यह दुरावस्था देखकर एक दिन उसके मामाको उस पर दया आ गयी और वह उसे अपने घर लिवा ले गया। उसके सात कन्याएँ थी, जिनकी अवस्था विवाह करने योग्य हो चुकी थी। उसने नन्दीषेणसे कहा :—"इनमेंसे सबसे बड़ी कन्याका विवाह मैं तुम्हारे साथ कर दूँगा। तुम आनन्दसे घरमें रहो और घरका काम-धन्धा देखो!"

विवाहके इस प्रलोभनसे नन्दिषेण प्रसन्न हो उठा और घरके छोटे-बड़े सभी काम बड़े चावसे करने लगा। परन्तु उसके मामाकी बड़ी कन्याको जब यह बात मालूम हुई, तो वह कहने लगी कि यदि पिताजी मेरा विवाह नन्दिषेणसे करेंगे, तो मैं आत्महत्या कर अपना प्राण दे दूँगी। उसकी इस प्रतिज्ञासे नन्दिषेण की आशा पर पानी फिर गया। फलतः वह बहुत उदास रहने लगा। उसकी यह अवस्था देखकर उसके मामाने कहा :—"हे नन्दिषेण! तुझे उदास होनेकी जरूरत नहीं। यदि मेरी

कंसके मित्रोंने यह सब बातें कंसको बतला कर उग्रसेनको बन्धन-मुक्त कर देनेके लिये उसपर बहुत जोर डाला ; परन्तु पूर्वजन्मके संकल्पके कारण उसका कोई फल न हुआ। कंसके निकट जो कोई राजा उग्रसेनका नाम लेता, उससे भी कंस असन्तुष्ट हो जाता, इसलिये धीरे-धीरे लोगोंने उस विषयकी चर्चा भी करनी बन्द कर दी।

उधर सिंहरथको बन्दी बनानेमें यथेष्ट सहायता करनेके कारण जरासन्धने समुद्रविजयको भी खूब सम्मानित किया। वह जरासन्धका आतिथ्य ग्रहण कर अपने नगरको लौट गया। इस विजयसे वसुदेवकी अच्छी ख्याति हो गयी। अब वह शौर्यपुरमें जब-जब घूमने निकलता, तब-तब नगरकी ललनाएँ सब काम छोड़कर उसे देखनेके लिये दौड़ पड़तीं और उसका अलौकिक रूप देखकर उसपर मुग्ध हो जातीं—मन-ही-मन अपना तनमन उसपर न्यौछावर कर देतीं। कुछ दिनोंके बाद चारों ओर इसके लिये कानाफूसी होने लगी। एक दिन नगरके महाजनोंने आकर राजासे

एकान्तमें कहा :—"हे स्वामिन्! वसुदेवका रूप देखकर नगरकी बहु बेटियोंने मान-मर्यादा छोड़ दी है। जो स्त्री उसे एकबार देख लेती है, वह मानों उसके वश हो जाती है। फिर किसी काममें उसका जी नहीं लगता और वह उसीके पीछे पागल हो जाती है।"

महाजनोंके यह वचन सुनकर राजाने कहा :—"हे महाजनों! आपलोग धैर्य धारण करें। मैं शीघ्रही इसका कोई उपाय करूँगा।"

इस प्रकार महाजनोंको सान्त्वना देकर राजाने उन्हें विदा कर दिया और वसुदेवसे इस बातका जिक्र तक न किया। कुछ दिनोंके बाद, एकदिन जब वसुदेव उन्हें प्रणाम करने आया तो उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे अपने पास बैठाकर कहा :—"प्रिय भाई! आजकल तुम्हारा शरीर बहुत ही दुर्बल हो गया है। मैं समझता हूँ कि तुम सारा दिन नगरमें घूमा करते हो, इसीलिये ऐसा हुआ है। तुम अपना सारा समय राजमहल और राजसभामें ही बिताया करो तो अच्छा हो। मैं कुछ ऐसे कलाविद् मनुष्योंका प्रबन्ध कर दूँगा, जो तुम्हें

कलाकी शिक्षा भी देंगे और अवकाशके समय तुम्हारा मनोरंजन भी करेंगे।"

वसुदेव बहुत ही नम्र और विवेकी था। उसने तुरन्त यह बात मान ली और दूसरे दिनसे सङ्गीत, नृत्य और विद्या-कलाकी चर्चामें अपना समय बिताने लगा। अपनी सरलताके कारण वह बिलकुल न समझ सका, कि उसपर यह प्रतिबन्ध क्यों लगाया गया है।

परन्तु यह रहस्य अधिक दिनोंतक छिपा न रह सका। महलके कई दास-दासियोंको महाजनोंकी शिकायतका हाल मालूम था। और उन्हींसे इस गुप्त भेदका भंडाफोड़ हो गया। बात यह हुई कि एक दिन कुब्जा नामक एक दासी कुछ गन्ध-द्रव्य लिये आ रही थी। उस समय वसुदेवने उसे रोक कर पूछा, कि—"यह गन्ध-द्रव्य किसके लिये लायी हो? कुब्जाने उत्तर दिया:—"हे कुमार! यह गन्ध शिवादेवीने समुद्र-विजयके लिये भेजा है।"

"तब तो यह मेरे भी काम आयगा।" यह कहते हुए दिल्लगीके साथ वसुदेवने उसे छीन लिया। छीनते

ही वह दासी नाराज हो गयी। उसने घुड़क कर कहा—"तुममें यह कुलक्षण है, इसीलिये तो तुम बन्धनमें पड़े हो!"

वसुदेवने चौंककर पूछा:—"बन्धन कैसा? क्या मैं किसी बन्धनमें पड़ा हूँ?"

दासी पहले तो कुछ भयभीत हुई, किन्तु बादको वसुदेवकी बातोंमें आकर उसने महाजनोंकी शिकायतका सारा हाल उसे कह सुनाया। स्त्रियोंके हृदयमें छिपी बात अधिक समय तक रह ही कैसे सकती है?

वसुदेवने उसे तो गन्ध-द्रव्य देकर विदा कर दिया; किन्तु वह स्वयं गहरी चिन्तामें पड़ गया। वह अपने मनमें कहने लगा,—"मेरे बड़े भाईको शायद यह सन्देह हो गया है कि मैं स्त्रियोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये ही नगरमें घुमा करता हूँ। और इसीलिये उन्होंने मुझे बाहर न जानेकी सलाह दी है। यह बहुत ही बुरी बात है। ऐसी अवस्थामें यहाँ रहना भी मेरे लिये अपमान जनक है!"

इस प्रकार विचार कर शामके समय गुटिका द्वारा

वेश बदल कर वसुदेव नगरके बाहर निकल गया। नगरके बाहर एक श्मशान था। वहाँ चिता तैयार कर उसने किसी अनाथकी लाश उसमें जला दी। इसके बाद स्वजनोंको शान्त करनेके उद्देशसे एक कागजमें दो श्लोक लिखकर उसे पासके खंभेमें लटका दिया। वे श्लोक यह थे :—

"दोषत्वेनाभ्यधीयन्त, गुरूणां यद्गुणा जनैः।
इति जीवन् मृतं मन्यो, वसुदेवोऽनलेऽविशत्॥ १॥
ततः सन्तमसन्तं वा, दोषं मे स्वचितर्कितम्।
सर्वे सहध्वं गुरवः, पौरलोकाश्च मूलतः॥ २॥

अर्थात् :—"गुरुजनोंके समक्ष महाजनोंने गुणोंको दोष रूपमें प्रकट किये इसलिये मैंने अपनेको जीवन्मृत मानकर अग्निमें प्रवेश कर लिया है। अपनी धारणानुसार, मेरा दोष हो या न हो, किन्तु गुरुजन और नगर-वासियोंसे मेरी यही प्रार्थना है, कि वे मेरा अपराध क्षमा करें और मुझे भूल जायें।"

इतनी कारवाई करनेके बाद वसुदेव ब्राह्मणका वेश धारणकर वहाँसे एक ओर चल पड़े। मार्गमें उन्हें एक

रथ मिला। उसमें कोई स्त्री बैठकर अपने मायके जा रही थी। उसने वसुदेवको देखकर अपने आदमियोंसे कहा:—"मालूम होता है कि यह प्रवासी ब्राह्मण थक गया है। इसे अपने रथमें बैठा लो!" उसके यह वचन सुनकर उसके आदमियोंने वसुदेवको रथपर बैठा लिया। इससे वसुदेव अनायास एक नगरमें पहुँच गये। वहाँ भोजन और स्नानादिसे निवृत्त हो, वे एक यक्षके मन्दिरमें चले गये और वहीं उन्होंने सुखपूर्वक वह रात्रि व्यतीत की।

इधर शौर्यपुरमें चारों ओर यह बात फैल गयी कि, वसुदेवने अग्निप्रवेश कर अपना प्राण दे दिया है। यादवों को इस घटनासे बहुतही दुःख हुआ किन्तु इसे दैवेच्छा मानकर उन्होंने वसुदेवकी उत्तरक्रिया कर दी। वसुदेव यह समाचार सुनकर निश्चिन्त हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि अब कोई उनकी खोज न करेगा। दो एक दिनके बाद वे उस नगरसे विजयखेट नामक नगरको चले गये।

विजयखेटके राजाका नाम सुग्रीव था। उसके श्यामा और विजयसेना नामक दो कन्याएँ थी। वसु-

देवने कलाकौशलमें उन्हें पराजित कर उनसे विवाह कर लिया। विवाहके बाद वे बहुत दिन तक ससुरालमें मौज करते रहे। इसी समय विजयसेनाके उदरसे उन्हें अक्रूर नामक एक पुत्र भी हुआ। वह बहुत ही रूपवान् बालक था। कुछदिन उसकी भी बालक्रीड़ा देखनेके बाद वसुदेवने वहाँसे दूसरे नगरके लिये प्रस्थान किया।

मार्गमें वसुदेवको एक बड़ा भारी जंगल मिला। वहाँ उन्हें प्यास लगी। इसलिये वे जलकी तलाश करते हुए जलावर्त्त नामक एक सोरव के तटपर जा पहुँचे। उस समय एक जंगली हाथीने उनपर आक्रमण कर दिया, किन्तु वसुदेवने विचलित न होकर मृगेन्द्रकी भाँति उससे युद्ध कर उसपर विजय प्राप्त की। इसके बाद मौका मिलते ही वे उसपर सवार हो गये। इसी समय कहींसे अर्चिमालि और पवनजय नामक विद्याधर उधर आ निकले। वे वसुदेवको हाथी पर बैठे देखकर उन्हें कुञ्जरावर्त्त उद्यानमें उठा ले गये। वहाँ विद्याधरोंके राजा अशनिवेगने अपनी श्यामा नामक कन्यासे उनका विवाह

कर दिया। वसुदेव अब वहींपर आनन्दपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे।

वसुदेवकी यह पत्नी वीणा बजानेमें बहुतही निपुण थी। एक दिन उसकी इस कलासे प्रसन्न हो वसुदेवने उसे वर मांगनेको कहा। इसपर श्यामाने कहा :—"यदि आप वास्तवमें प्रसन्न हैं और मुझे मनवाँछित वर देना चाहते हैं, तो मुझे ऐसा वर दीजिये कि आपका और मेरा कभी वियोग न हो।"

वसुदेवने कहा :—"तथास्तु—ऐसा ही होगा, किन्तु हे सुन्दरी! यह तो बताओ कि तुमने क्या सोचकर यह वर माँगा है? तुम इससे अच्छा कोई और वर भी मांग सकती थी।"

श्यामाने कहा :—"नाथ! अवश्य ही यह वर मांगनेका एक खास कारण है। वह मैं आपको बतलाती हूँ, सुनिये। अर्चिमाली नामक एक राजा था। उसके ज्वलनवेग और अशनिवेग नामक दो पुत्र थे। ज्वलनवेगको अपना राज्यभार सौंपकर अर्चिमालीने दीक्षा ले ली। कुछ दिनोंके बाद ज्वलनवेगकी विमला नामक

रानीने एक पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम अंगारक रक्खा गया। मैं अशनिवेगकी पुत्री हूँ। मेरी माताका नाम सुप्रभा था। कुछ दिनोंके बाद ज्वलनवेग अपने भाई अशनिवेगको अपना राज्य देकर स्वर्ग चले गये। अंगारकको यह अच्छा न लगा और उसने अपनी विद्याके बलसे अशनिवेगको बाहर निकाल कर राज्यपर अधिकार जमा लिया।

इस घटनासे खिन्न हो मेरे पिता अष्टापद पर्वत पर चले गये। वहाँपर अंगिरस नामक एक चारण मुनिसे उनकी भेट हो गयी। उन्होंने उससे पूछा :—"हे मुनिराज! मेरा राज्य मुझे कभी वापस मिलेगा या नहीं?"

मुनिराजने कहा :—"तुम्हारा राज्य तुम्हें अवश्य वापस मिलेगा, किन्तु वह तुम्हारे दामाद की सहायतासे मिलेगा।"

इसपर मेरे पिताने पुनः पूछा :—"हे मुनिराज! क्या आप दया कर यह भी बतला सकते हैं कि मेरा दामाद कौन होगा?"

मुनिराजने कहा:—"जो जलावर्त्तके हाथीको जीतेगा, वही तुम्हारा दामाद होगा। यही उसकी पहचान है।"

मुनिराजके इन वचनों पर विश्वास कर मेरे पिता यहाँपर चले आये। उसी समयसे यह नगर बसाकर वे यहाँपर निवास करते हैं। आपकी खोजमें वे प्रतिदिन जलावर्त्त पर दो विद्याधरोंको भेजा करते थे। जिस दिन आपने उसे पराजित कर उस पर सवारी की, उसीदिन वे आपको पहचान कर यहाँपर ले आये और इसीलिये मेरे पिताने आपके साथ मेरा विवाह कर दिया। मैं जानती हूँ कि अँगारक आपको यहाँ चैनसे न बैठने देगा। साथ ही मुझे यह भी मालूम है कि धरणेन्द्र और विद्याधरोंने मिलकर यह निर्णय किया है कि आर्हत चैत्यके निकट और साधुके समीप अवस्थित स्त्री सहित इन्हें जो मारेगा, वह विद्या रहित हो जायगा। हे स्वामिन्! इन्हीं सब कारणोंसे मैंने यह वर माँगा है। मेरी धारणा है कि इससे अँगारक अब आपको अकेला न मार सकेगा।"

श्यामाके यह वचन सुनकर वसुदेवको बड़ाही आनन्द हुआ। अब वे सुखपूर्वक वहीं रहते हुए अपने

दिन निर्गमन करने लगे। एक दिन रात्रिके समय जब वे अपनी पत्नीके साथ सो रहे थे, तब अचानक वहाँ अँगारक आया और उन्हें उठाकर वहाँसे चल पड़ा। इससे तुरन्त वसुदेवकी निद्रा भङ्ग हो गयी। वे अपने मनमें सोचने लगे कि मुझे यह कौन उठाये लिये जा रहा है? इतनेही में उन्हें हाथमें खड्ग लिये श्यामा दिखायी दी। अँगारकने उसे देखते ही अपनी तलवारसे उसके दो टुकड़े कर डाले। यह हृदय विदारक दृश्य देखकर वसुदेव काँप उठे और उनके मुखसे एक चीख निकल पड़ी। किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा कि दो श्यामाएँ दोनों ओर से अँगारकके साथ युद्ध कर रही हैं। यह देखकर वसुदेवने समझा कि यह सब झूठी माया है। उन्होंने उसी समय अँगारकके शिर पर एक ऐसा घूँसा जमाया कि वह पीड़ासे तिल-मिला उठा। उसने तुरन्त वसुदेवको छोड़ दिया। वसुदेव चम्पानगरीके बाहर एक सरोवरमें जा गिरे, किन्तु सौभाग्यवश उन्हें कोई चोट न आयी। वे तैरकर उसके बाहर निकल आये। समीपमें ही एक उपवन था। उसमें श्री वासुपूज्य भगवंतका चैत्य था। उसीमें प्रवेश कर

वसुदेवने भगवंतकी वन्दना की और वहीं पर वह रात बितायी।

सुबह एक ब्राह्मणसे वसुदेव की भेंट हो गयी। वे उसके साथ चम्पानगरीमें गये। वहाँपर बाजारमें वे जहाँ देखते वहीं उन्हें युवकगण वीणा बजाते हुए दिखाई देते थे। इसलिये उन्होंने ब्राह्मणसे इसका कारण पूछा। उसने बतलाया कि यहाँ चारुदत्त नामक एक सेठ है। उसके गन्धर्वसेना नामक एक कन्या है जो रूप और गुण में अपना सानी नहीं रखती। उसने प्रतिज्ञा की है कि जो सङ्गीत-कलामें और खासकर वीणा-वादनमें मुझे पराजित करेगा, उसीसे मैं व्याह करूँगी। इसीलिये यह सब युवक वीणा बजाने का अभ्यास कर रहे हैं। सुग्रीव और यशोग्रीव नामक दो प्रसिद्ध संगीताचार्य नियमित रूपसे इन युवकोंको संगीत की शिक्षा देते हैं और प्रतिमास परीक्षा लेकर योग्यताकी जाँच भी करते हैं।"

ब्राह्मणके यह वचन सुनकर वसुदेव ब्राह्मणका वेश धारण कर सुग्रीवके पास गये। उन्होंने उससे कहा :—
"हे गुरुदेव! मैं बहुत दूरसे आपका नाम सुनकर आपके

पास आया हूँ। मेरा नाम स्कन्दिल, जाति ब्राह्मण और गोत्र गौतम है। गन्धर्वसेनाको जीतने के लिये मैं आपके निकट संगीत सीखना चाहता हूँ। दयाकर मुझे भी आप अपनी शिष्य-मण्डलीमें स्थान दीजिये!"

ब्राह्मण वेशधारी वसुदेवके यह वचन सुनकर संगीताचार्य सुग्रीवने एकवार नीचेसे ऊपरतक उसे देखा। उसका वेश देख कर उन्होंने मोटी बुद्धिसे उसे मूर्ख समझ लिया और बड़े अनादरसे उसे अपने पास रक्खा। परन्तु वसुदेवने इन सब बातोंकी कोई परवाह न की। वे ग्राम्य भाषा बोल-बोल कर सारा दिन लोगोंको हँसाते। अपना प्रकृत परिचय तो उन्होंने किसीको दिया ही नहीं। सब लोग उन्हें ग्रामीण और गँवार समझ कर सदा उनकी दिल्लगी करते और उन्हें उपेक्षा की दृष्टिसे देखते।

कुछ दिनोंके बाद वाद-विवादका दिन आ पहुँचा। समस्त युवकोंने उत्तमोत्तम गहने-कपड़े पहन कर सभास्थान की ओर जानेकी तैयारी की। वसुदेवके पास श्यामाका दिया हुआ केवल एकही वस्त्र था। सुग्रीवकी पत्नीको यह बात मालूम थी, इसलिये उसने वसुदेवको अपने पास

बुलाकर बड़े प्रेमसे उसे दो वस्त्र प्रदान किये। वसुदेव भी इन वस्त्रोंको पहनकर सभामें जानेको तैयार हुए। उनका विचित्र वेश देखकर उनके सहपाठियोंने कहा :—"आप हमारे साथ जरूर चलिये! गन्धर्वसेना बहुत करके तो आपके रूप पर ही मुग्ध हो जायगी और यदि वैसा न हो तो आप उसे अपनी संगीत-कलासे जीत लीजियेगा!"

वसुदेव सहपाठियोंकी दिल्लगी पर ध्यान न दे, वे उन्हें हँसाते हुए उनके साथ सभास्थानमें पहुँचे। वहाँ भी उनके सहपाठियोंने उनकी दिल्लगी कर उन्हें एक ऊँचे स्थानमें बैठा दिया। यथासमय गन्धर्वसेना सभामें उपस्थित हुई। वाद-विवाद आरम्भ हुआ। सभामें देश-विदेशके धुरन्धर संगीत शास्त्री उपस्थित थे। परन्तु गन्धर्वसेनाने सबको मात कर दिया। गाने, बजाने या संगीत विषयक वाद-विवाद करनेमें कोई भी उसके सामने न ठहर सका।

अन्तमें वसुदेवकी बारी आयी। गन्धर्वसेना ज्योंहीं उनके सामने पहुँची, त्योंहीं उन्होंने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। उनका यह रूप देखते ही गन्धर्वसेना उनपर मुग्ध हो गयी। यह देख उनके सहपाठियों पर

तो मानों घड़ों पानी पड़ गया। जिसने वसुदेवका वह अलौकिक रूप देखा, उसीने दाँतोंतले उँगली दबाली। गन्धर्वसेनाने उनसे वीणा बजानेको कहा, किन्तु वसुदेवके पास वीणा न थी, इसलिये सभाके अनेक लोगोंने उन्हें अपनी वीणा दी, परन्तु वसुदेवने उन वीणाओंमें दोष दिखा-दिखा कर उन्हें वापस दे दी। अन्तमें गन्धर्वसेनाने स्वयं अपनी वीणा दी। वसुदेवने उसे निर्दोष बतलाकर गन्धर्वसेनासे पूछा—"हे सुन्दरि! अब कहो, तुम किस विषयका संगीत सुनना चाहती हो?"

गन्धर्वसेनाने कहा :—"हे संगीतज्ञ! इस समय महापद्म चक्रवर्तीके ज्येष्ठबन्धु विष्णुकुमारके त्रिविक्रम विषयक संगीत सुननेकी मेरी इच्छा है।"

बस, उसके कहनेकी ही देर थी। उसीक्षण वीणाकी मधुर झंकार और संगीतकी सुन्दर-ध्वनिसे सभास्थान गूँज उठा। लोग मन्त्र-मुग्ध की भाँति शिर हिला-हिला कर वसुदेवका गायन, वादन, सुनते रहे। किसी भी छिद्रान्वेषीको उसमें कोई दोष न दिखायी दिया। परीक्षकोंने उसे निर्दोष और अद्वितीय बतलाया। गन्धर्वसेनाकी

कौन कहे, बड़े-बड़े संगीताचार्यों ने भी उनके सामने हार मान ली।

जब वसुदेवकी विजयमें कोई सन्देह न रहा, तब चारुदत्त सभा विसर्जन कर उन्हें सम्मानपूर्वक अपने मकान पर लिवा ले गया। वहाँ पर गन्धर्वसेना और उनके विवाहका आयोजन किया गया। व्याहके समय चारुदत्तने पूछा—"हे वत्स! तुम्हारा कौन गोत्र है?" वसुदेवने हँसकर कहा:—"आप जो समझ लें वही गोत्र है!" चारुदत्तने इसे उपहास समझ कर कहा:—"गन्धर्वसेनाको वणिक पुत्री मानकर आप उपहास कर रहे हैं, किन्तु इसके कुलादिकका वास्तविक वृत्तान्त मैं फिर किसी समय आपको सुनाऊँगा।"

खैर, किसी तरह उन दोनोंका विवाह निपट गया। चारुदत्तने इस समय बड़ा उत्सव मनाया और दानादिक में प्रचुर धन व्यय किया। सुग्रीव और यशोग्रीवने भी वसुदेवके गुणोंपर मुग्ध हो, अपनी श्यामा और विजया नामक दो कन्याओंका उनसे विवाह कर दिया। वसुदेव अपनी इन नव-विवाहित पत्नियोंके साथ अपने दिन सुखपूर्वक व्यतीत करने लगे।

एक दिन अवकाशके समय चारुदत्तने वसुदेवसे कहा,—"हे वत्स! मैंने तुमसे व्याहके समय कहा था कि गन्धर्वसेनाके प्रकृत कुलका परिचय मैं तुम्हें फिर किसी समय दूँगा।" आज तुम्हें वह वृत्तान्त सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो :—

एक समय इसी नगरीमें भानु नामक एक बड़ाही धनवान व्यापारी रहता था। उसके सुभद्रा नामक एक स्त्री भी थी, किन्तु सन्तान न होनेके कारण वे दोनों बहुत दुःखित रहते थे। एकबार उन्होंने एक चारण मुनिसे पूछा कि हे महाराज! क्या हम भी कभी पुत्रका मुख देखकर अपनेको धन्य समझेंगे? मुनिराजने कहा,—"हाँ, तुम्हारे पुत्र अवश्य होगा, किन्तु अभी कुछ समय की देरी है।" मुनिराजके इन वचनोंसे उन्हें आशा बँध गयी। कुछ दिनोंके बाद वास्तवमें उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे उन दोनोंके जीवनमें एक नयाही आनन्द आगया।

एकदिन मैं सिन्धु नदीके तटपर घूमने गया था। वहाँपर किसी आकाशगामी पुरुषके सुन्दर चरण-चिन्ह

मुझे दिखायी दिये। ध्यानपूर्वक देखने पर मुझे मालूम हुआ कि उन चरण-चिन्होंमें किसी स्त्रीके भी चरण-चिन्ह सम्मिलित हैं। इससे मैं समझ गया कि उस पुरुषके साथ कोई स्त्री भी होगी। वहाँसे आगे बढ़ने पर एक स्थानमें मुझे एक कदली-गृह, पुष्पशय्या, ढाल और तलवार आदि चीजें दिखायी दीं। उसके पास ही एक वृक्षमें कोई विद्याधर जकड़ा हुआ था। मैंने देखा कि उसके हाथ पैरोंमें लोहे की कांटियाँ जड़ दी गयी हैं, इसलिये मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया। इधर-उधर खोज करने पर उसकी तलवारके म्यानमें मुझे तीन औषधियाँ दिखायी दीं। उनमेंसे एक औषधिका प्रयोग कर मैंने उसे बन्धन मुक्त किया। दूसरी औषधि लगानेसे उसके जख्म अच्छे हो गये और तीसरी औषधि देने पर वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसे स्वस्थ देखकर मैंने पूछा,—"हे युवक! तुम कौन हो और तुम्हारी यह अवस्था किसने की?"

युवकने अपना परिचय देते हुए कहा,—"हे भद्र! वैताढ्य पर्वत पर शिवमन्दिर नामक एक नगर है। उसमें महेन्द्र विक्रम नामक राजा राज करते हैं। उन्हींका मैं

पुत्र हूँ। मेरा नाम अमितगति है। एकदिन धूमशिख और गौरमुण्ड नामक दो मित्रोंकेसाथ क्रीड़ा करता हुआ मैं हिमन्त पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ पर मैंने अपने मामा हिरण्यरोम तपस्वीकी सुकुमालिका नामक रमणीय कुमारी को देखा। उसे देखकर मैं उस पर मोहित हो गया और चुपचाप अपने वासस्थानको लौट आया। परन्तु मेरी हालत उसी दिनसे खराब होने लगी। न मुझे भोजन अच्छा लगता था, न रातमें नींद ही आती थी। मेरे एक मित्र द्वारा मेरे पिताको यह हाल मालूम होने पर उन्होंने उस कुमारिकाको बुलाकर उससे मेरा व्याह कर दिया। फलतः मैं उसके साथ आनन्दपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगा।"

कुछ दिनोंके बाद मुझे मालूम हुआ कि मेरा मित्र धूमशिख मेरी स्त्रीको कुदृष्टिसे देखता है। और भी कई बातोंसे मुझे विश्वास हो गया कि वह उस पर आसक्त है। किन्तु इसके लिये मैंने न तो उसे उलाहना ही दिया, न मैंने उसका अपने यहाँ आना-जाना ही बन्द किया। मेरी इस सज्जनताका फल आज मुझे यह मिला, कि वह

हमारे साथ यहाँ घूमने आया और मुझे इस वृक्षसे जकड़ कर मेरी प्रियतमाको उठा ले गया। खैर, अब जो कुछ होगा, देखा जायगा। इस समय तो आपने मुझ पर उपकार कर मेरा प्राण बचाया है, इसलिये बतलाइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आपके इस उपकारका क्या बदला दूँ?"

मैंने कहा :—"हे अमितगति! मैंने किसी बदलेकी आशासे यह उपकार नहीं किया। तुम्हें ऐसी अवस्थामें सहायता करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। मैं तुम्हारे दर्शनसे ही अपने को कृतकृत्य मानता हूँ।"

मेरे यह वचन सुनकर वह विद्याधर अपने वासस्थान को चला गया और मैं इस घटना पर विचार करता हुआ अपने घर लौट आया।

यह उस समयकी बात है, जिस समय मैं किशोरावस्था अतिक्रमण कर रहा था। धीरे-धीरे जब मैंने यौवन की सीमामें पदार्पण किया, तब मेरे पिताने मेरे सर्वार्थ नामक मामाकी मित्रवती नामक कन्यासे मेरा विवाह कर दिया। परन्तु उन दिनों मैं कलाओंके पीछे

पागल हो रहा था, इसलिये मैंने अपनी उस पत्नीकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। मेरी यह अवस्था देखकर मेरे पिताने मेरे लिये ललित गोष्ठीका प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने सोचा होगा कि इससे मेरी कामुकता बढ़ेगी और मेरा ध्यान अपनी स्त्रीकी ओर आकर्षित होगा।

परन्तु उनके इस कार्यका फल उनकी इच्छानुसार न हुआ। मैं अपने प्यारे मित्रोंके साथ बगीचों की सैर करने लगा और अन्तमें कलिङ्गसेना नामक वेश्याकी पुत्री वसन्त सेनाके प्रेम-जालमें उलझ गया। मैं उसके पीछे बारह वर्ष तक पागल रहा। मैं रात दिन वहीं रहता और वहीं खाता-पीता। मैंने सब मिलाकर उसे सोलह करोड़ रुपये खिलाये। इसके बाद जब मैं उसे अधिक धन देनेमें असमर्थ हो गया, तब उसने मुझे अपने घरसे निकाल दिया। लाचार, मुझे फिर अपने घर आना पड़ा।

घर आने पर मुझे मालूम हुआ कि मेरे माता-पिता का देहान्त हो गया है। घरकी सारी सम्पदा तो मैंने

पहले ही नष्ट कर दी थी। केवल मेरी स्त्रीके पास कुछ आभूषण थे। उन्हें लेकर मैं व्यापार निमित्त अपने मामाके साथ उशीरवर्ति नगरकी ओर चल पड़ा। वहाँ मैंने उन आभूषणोंसे कपास खरीद ली, क्योंकि उसमें मुझे अच्छा मुनाफा होनेकी उम्मीद थी।

यह कपास लेकर मैंने अपने मामाके साथ ताम्रलिप्ति नगरकी ओर प्रस्थान किया। परन्तु मार्गमें मेरी कपासमें आग लग जानेसे वह देखते ही देखते खाक हो गयी। अब मेरे पास कोई ऐसा धन भी न था, जिससे मैं कोई व्यापार कर सकूँ। मेरे मामाने भी मुझे अभागा समझ कर मेरा साथ छोड़ दिया। मैं इससे निराश न हुआ और अकेला ही घोड़े पर बैठ पश्चिम की ओर आगे बढ़ा। दुर्भाग्यवश रास्तेमें मेरा वह घोड़ा भी मर गया। अब पैदल चलनेके सिवा कोई दूसरा उपाय न था। इस-लिये कुछ दिनोंके बाद मैं धीरे-धीरे चलकर प्रियंगुपुर नामक एक नगरमें जा पहुँचा।

प्रियंगुपुरमें वणिकोंकी अच्छी बस्ती थी, वे तरह-तरहका व्यवसाय करते थे। वहाँ सुरेन्द्रदत्त नामक मेरे पिताका

एक मित्र भी रहता था। मैंने उसीके यहाँ जाकर आश्रय ग्रहण किया। वह मेरी दुरावस्था देखकर बहुतही दुःखी हुआ। समुचित स्वागत-सत्कार करनेके बाद उसने मुझे वहीं व्यवसाय करने की सलाह दी। मैंने उसकी आर्थिक सहायतासे उसकी इच्छानुसार कार्य शुरू किया और थोड़े ही दिनमें सब खर्च बाद देकर मुझे लाख रुपयेका मुनाफा हुआ।

यह रुपये हाथमें आने पर मुझे किराना लेकर समुद्र यात्रा करने की सूझी। सुरेन्द्रको यह बात पसन्द न आयी और उसने मुझे बहुत मना किया, किन्तु मैंने उसकी एक न सुनी। शीघ्रही मैंने किरानेसे एक जहाज भरकर समुद्रमार्ग द्वारा विदेशके लिये प्रस्थान करदिया। कुछ दिनोंके बाद मैं यमुना नामक द्वीपमें जा पहुँचा। उस द्वीपके कई नगरोंमें घूम-घूम कर मैंने वह किराना बेच दिया। इसमें मुझे बहुत अधिक लाभ हुआ। थोड़े दिन इसी तरह उलट फेर करने पर मेरे पास आठ करोड़ रुपये इकट्ठे हो गये। यह कोई साधारण रकम न थी। मैंने सोचा कि अब अपने देशको चलना चाहिये और

वहीं कोई व्यवसाय कर जीवनके शेष दिन शान्तिपूर्वक व्यतीत करने चाहिये।

यह विचार कर मैंने स्वदेशके लिये प्रस्थान किया, परन्तु दैवदुर्विपाकसे मेरा जहाज टूट गया। इससे न केवल मेरा वह धन ही नष्ट हो गया, बल्कि मेरी जानके भी लाले पड़ गये। खैर, अभी जिन्दगी बाकी थी, इसलिये लकड़ीका एक तख्ता मेरे हाथ लग गया और मैं उसीके सहारे तैरता हुआ सात दिनमें उदम्बरावतीवेल नामक स्थानमें किनारे आ लगा।

उदम्बरावतीवेलसे मैं किसी तरह राजपुर नगरमें गया। वहाँ नगरके बाहर एक आश्रममें मुझे दिनकर-प्रभ नामक एक त्रिदण्डी स्वामीके दर्शन हुए। उसे मैंने अपना सारा हाल कह सुनाया। उसने मुझ पर दया कर मुझे खानेके लिये अन्न और सोनेके लिये स्थान दिया। मैं उसीके यहाँ रहकर अपना सारा समय उसीकी सेवामें बिताने लगा।

एक दिन उस त्रिदण्डीने कहा :—"हे वत्स! मालूम होता है कि तुम धनार्थी हो—तुम्हें धनकी

अत्यन्त आवश्यकता है। यदि यह बात ठीक हो, तो तुम मेरे साथ एक पर्वत पर चलो। मैं वहाँपर तुम्हें एक ऐसा रस दूँगा, जिससे तुम जितना चाहो, उतना सोना बना सकोगे।"

धनकी आवश्यकता तो मुझे थी ही, इसलिये मैं उसी समय उसके साथ चल पड़ा। एक भयंकर जंगलके रास्ते हमलोग उस पर्वत पर पहुँचे। इसके मध्य भागमें दुर्गपाताल नामक एक भयानक गुफा थी। इस गुफाका द्वार एक बड़े भारी पत्थरसे बन्द था। त्रिदण्डीने मन्त्र-बलसे उसे खोलकर उसमें प्रवेश किया। मैं भी उसके साथ ही था। इधर-उधर भटकनेके बाद हमलोग उस कूपके पास जा पहुँचे, जिसमें वह सोना बनानेवाला रस भरा था। वह कूप चार हाथ चौड़ा काफी गहरा और देखनेमें बहुत ही भयङ्कर था। वहाँ पहुँचने पर त्रिदण्डीने मुझसे कहा :—"तुम इस कूपमें उतर कर इस कमण्डलमें रस भर लाओ! नीचेसे ज्योंही तुम रस्सी हिलाओगे, त्योंही मैं तुम्हें ऊपर खींच लूँगा।"

त्रिदण्डीके आदेशानुसार मैं एक मचिया पर बैठ,

उस कूएँमें उतरने लगा। त्रिदण्डीने ऊपरसे उसकी रस्सी पकड़ रक्खी थी। बीस पचीस हाथ नीचे जाने पर मुझे चमकता हुआ रस दिखायी दिया। मैं ज्योंही वह रस कमण्डलमें भरनेको तैयार हुआ, त्योंही किसीने मुझे वैसा करनेसे मना किया। मैंने कहा :—"भाई! तुम मना क्यों करते हो? मैं चारुदत्त नामक वणिक हूँ और त्रिदण्डी स्वामीके आदेशसे यह रस लेने यहाँ आया हूँ।"

उस आदमीने कहा :—"भाई! मैं भी तुम्हारी ही तरह धनका लोभी एक वणिक हूँ और वह त्रिदण्डी ही मुझे यहाँ लाया था। इस कूएँमें उतारनेके बाद वह पापी मुझे यहीं छोड़ कर चला गया। यह रस बड़ा तेज है। यदि तुम इसमें उतरोगे तो तुम्हारी भी यही अवस्था होगी। यदि तुम रस लिये बिना वापस नहीं जाना चाहते तो, अपना कमण्डल मुझे दो, मैं उसमें रस भर दूँगा।"

उसकी यह बात सुनकर मैंने वह कमण्डल उसे दे दिया और उसने उसमें रस भरकर उसे मेरी मचियाके

नीचे लटका दिया। रस मिलतेही मैंने रस्सी हिला दी और उस त्रिदण्डीने मुझे ऊपर खींचना आरम्भ कर दिया। अब मैं उस कूपके मुखके पास आ पहुँचा, तब त्रिदण्डीने खींचना बन्द कर, मुझसे पहले वह रस दे देनेको कहा। मैंने कहा :—"भगवन्! पहले मुझे बाहर निकालिये, रस मचियाके नीचे बँधा हुआ है।"

त्रिदण्डीने मेरी इस बात पर ध्यान न दिया। वह बारंबार रस दे देनेका आग्रह करता था। इससे मैं समझ गया कि वह केवल रसका भूखा है। रस मिल जाने पर वह मुझे धोखा देकर इसी कुएँमें छोड़ देगा और आप यहाँसे चलता बनेगा। निदान जब मैंने उसे रसका कमण्डल न दिया, तो उसने वह रस्सी छोड़ दी और मैं उस मचिया तथा रस्सीके साथ उस कुएँमें जा गिरा।

परन्तु आनन्दकी बात इतनी ही थी कि, मैं उस रसमें न गिरकर उसके चारोंओर बँधी हुई कुएँकी वेदिका पर गिरा था। कूप स्थित मेरे उस अकारण बन्धुने मेरी यह अवस्था देख, मुझे सान्त्वना देते हुए कहा :—

"हे मित्र! तुम्हें खेद करनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि सौभाग्यवश तुम रसमें न गिरकर कूएँकी वेदिका पर गिरे हो। खैर, इस रसको पीनेके लिए एक गोह इस कूएँमें आया करती है। तुम उसकी प्रतीक्षा करो। जब वह यहाँ आये तब तुम उसकी पूछ पकड़ लेना। इस प्रकार तुम अनायास इस कूएँसे बाहर निकल जाओगे। यदि मेरे पैर गल न गये होते तो मैंने भी अपने उद्धारके लिये इसी उपायसे काम लिया होता।"

उसकी यह बात सुनकर मुझे बहुत ही सन्तोष हुआ और मैं कई दिन तक उस कूएँमें पड़ा रहा। एक दिन मेरे सामने ही मेरे उस मित्रकी मृत्यु हो गयी। अब मुझे कोई सान्त्वना देनेवाला भी न रहा। इतनेमें एक दिन मुझे एक प्रकारका भयंकर शब्द सुनायी दिया। उसे सुनकर मैं बहुत डर गया, किन्तु फिर मुझे खयाल आया कि शायद वही गोह आ रही होगी। मेरा यह अनुमान सत्य निकला। शीघ्रही वहाँ एक गोहने आकर उस रसका पान किया। इसके बाद ज्योंहीं वह बाहर निकलने लगी, त्योंही मैं उसकी पूछ दोनों हाथसे

पकड़कर उसमें लटक गया। इस प्रकार मैं बाहर तो आया, परन्तु बाहर निकलते ही मैं मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा।

कुछ देरके बाद जब मुझे होश आया, तो मैंने कालके समान एक जंगली भैंसेको अपनी ओर आते देखा। उसकी लाल-लाल आँखें, बड़े-बड़े सींग और विकराल रूप देखकर मैं बेतरह डर गया और एक शिला पर चढ़ बैठा। वह भैंसा मुझे देखकर उस शिलाके पास दौड़ आया और बड़े वेगसे उसे ठोकरें मारने लगा। यदि मैं शिला पर न चढ़ गया होता और उसकी एक भी ठोकर मेरे लग जाती, तो मैं निःसन्देह वहीं ढेर हो जाता।

इसी समय एक और आश्चर्यजनक घटना इसप्रकार घटित हुई कि, उस शिलापर ठोकरें मारते हुए उस भैंसेका पैर पीछेसे एक अजगरने पकड़ लिया। इससे भैंसेका ध्यान मेरी ओरसे हटकर उसकी ओर चला गया। इसके बाद ज्योंही उन दोनोंमें खींचातानी होने लगी, त्योंहीं मैं उस शिलासे कूदकर एक तरफ भागा।

भागते-भागते मैं जंगलके उस पार एक गाँवमें जा पहुँचा। वहाँपर मेरे मामाका रुद्रदत्त नामक एक मित्र रहता था। उसने मुझे आश्रय देकर मेरी सेवा-सुश्रूषा की। जब मैं पूर्ण रूपसे स्वस्थ हुआ, तब रुद्रदत्तके साथ व्यापार करना स्थिर हुआ। हमलोगोंने करीब एक लाख रुपये अपने साथ लेकर सुवर्णभूमिके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें हमें इषुवेगवती नामक एक नदी मिली। उसे पारकर हमलोग गिरिकूट (पर्वतके शिखर) पर पहुँचे। वहाँ से वेत्रवनमें होकर हमलोगोंने टङ्कणप्रदेशमें पदार्पण किया। यहाँ का मार्ग ऐसा था कि जिस पर केवल बकरे ही चल सकते थे, इसलिये हमलोगोंको दो बकरे खरीद कर उन्हीं पर सवारी करनी पड़ी। यह बकरोंका रास्ता पारकर हमलोग और भी विकट स्थानमें जा पहुँचे। वहाँपर रुद्रदत्तने कहा :—"यहाँसे आगे बढ़नेके लिये कोई रास्ता नहीं है। चारों ओर विकट पहाड़ियाँ और नदी नालोंकी भरमार है। अब हमें इन बकरोंको मारकर इनकी खाल अपने शरीर पर लपेट लेनी होगी। ऐसा करने पर भारण्ड पक्षी हमलोगोंको

मांसके धोखे सुवर्णभूमिमें उठा ले जायेंगे। वहाँ पहुँचनेका यही तरीका है और इसी तरीकेसे सब लोग काम लेते हैं।"

बकरोंको मारनेकी बात सुनकर मेरा तो कलेजा ही काँप उठा। मैंने कहा :—"इन बेचारोंने हमलोगोंको कठिन मार्ग पार करनेमें अमूल्य सहायता दी है। मुझे तो यह बन्धु समान प्रिय मालूम देते हैं। क्या इन्हें मारना उचित होगा?"

मेरी यह बात सुनकर रुद्रदत्तको क्रोध आ गया। उसने मुझे झिड़क कर कहा :—"इन्हें मारे बिना हमलोग आगे नहीं बढ़ सकते। उस हालतमें हमें यहीं प्राण दे देना होगा। मैं इसके लिये तैयार नहीं हूँ। अपना प्राण बचानेके लिये इनका प्राण लेना ही होगा।"

इतना कह उसने अपने बकरेको उसी क्षण मार डाला। उसकी यह अवस्था देखकर मेरा बकरा दीन और कातर दृष्टिसे मेरी ओर ताकने लगा। मैंने उससे कहा :—"मैं तेरी रक्षा करनेमें असमर्थ हूँ, इसलिये

"संकटके समय धर्म ही बन्धु, धर्म ही माता और धर्म ही पिता होता है।"

(पृष्ट १५७)

मुझे बड़ा दुःख है, लेकिन जैन धर्म तेरा सहायक हो सकता है। तू उसीकी शरण स्वीकार कर। संकटके समय धर्म ही बन्धु, धर्म ही माता और धर्म ही पिता होता है।"

मेरी यह बात सुन, उस बकरेने शिर झुकाकर जैन धर्म स्वीकार किया। मैंने उसे नवकार मन्त्र सुनाया और वह उसने बड़ी शान्तिसे सुना। इतनेमें रुद्रदत्तने उसे भी मार डाला। मर कर वह तो देवलोक गया और हमलोग एक-एक छुरी हाथमें लेकर उनकी खालोंमें छिप रहे। उसी समय वहाँ दो भारण्डपक्षी आ पहुँचे और हमें चंगुलमें पकड़ कर एक ओरको ले उड़े।

मार्गमें, जो भारण्ड पक्षी मुझे लिये जा रहा था, उस पर एक दूसरे भारण्डने आक्रमण कर दिया। शायद वह भूखा था इसलिये उस भारण्डसे वह मुझे छीन लेना चाहता था। दोनोंकी छीना झपटीमें मैं उसके चंगुलसे छुटकर एक सरोवरमें जा गिरा। मैं तुरन्त अपनी छुरीसे उस खालको चीर कर बन्धन मुक्त हुआ और सरोवरसे बाहर निकल कर एक तरफ चल पड़ा।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर मुझे एक जंगल मिला। उस जंगलमें एक पर्वत था। कौतूहल वश मैं उसके ऊपर चढ़ गया। वहाँ पर कायोत्सर्ग करते हुए एक मुनिराज मुझे दिखायी दिये। मैं उन्हें वन्दन कर उनके पास बैठ गया। उन्होंने मुझे धर्मोपदेश देनेके बाद पूछा :—"हे चारुदत्त! आप इस विषम भूमिमें किस प्रकार आ पहुँचे? यहाँ देवता और विद्याधरोंके सिवा दूसरोंके लिये आना बहुत ही कठिन है।"

मुनिराजके यह वचन सुनकर मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया; क्योंकि मैं तो उन्हें पहचानता न था और वे एक परिचित की भाँति मुझसे बातें करते थे। यह देख, मैं उनकी ओर बार-बार देखने लगा। मेरी यह उलझन शीघ्र ही मुनिराजकी समझमें आ गयी। उन्होंने कहा :—"मेरा नाम अमितगति है। आपने एकबार मुझे बन्धन-मुक्त किया था। आपके पाससे रवाना हो, अष्टापद पर्वतके पास मैंने अपने उस शत्रुको पकड़ लिया। मुझे देखते ही वह मेरी स्त्रीको छोड़कर पर्वतके किसी अगम्य स्थानमें भाग गया।

उसके भाग जाने पर मैं अपनी स्त्रीको लेकर अपने वासस्थानको चला गया। इस घटनाके कुछ दिन बाद मेरे पिताने मुझे अपना राज्य-भार सौंप, हिरण्यकुंभ और सुवर्णकुम्भ नामक मुनियोंके निकट दीक्षा ले ली। अब मेरे दिन आनन्दमें कटने लगे। मैंने दीर्घकाल तक राज्य-शासन किया। इस बीचमें मेरी मनोरमा नामक स्त्रीने सिंहयशा और वराहग्रीव नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया, जो मेरे ही समान पराक्रमी और गुणवान हैं। दूसरी स्त्री विजयसेनाने गन्धर्वसेना नामक एक पुत्रीको जन्म दिया, जो गायन-वादन और सङ्गीतकी कलामें परम निपुण है। पुत्र-पुत्रियोंका सब सुख देखनेके बाद अन्तमें मैंने अपना राज्य अपने दोनों पुत्रोंको सौंपकर पिताजीके निकट दीक्षा ले ली। तबसे मैं यहीं रहता हूँ और धर्माराधनमें अपना समय व्यतीत करता हूँ। यह द्वीप कुम्भकंठके नामसे प्रसिद्ध है और लवण समुद्रमें अवस्थित है। इस पर्वतको कर्कोटक कहते हैं। आशा है कि मेरे इस परिचयसे आपकी उलझन दूर हो गयी होगी। अब आपका यहाँ आना किस प्रकार हुआ सो बतलाइये।"

मुनिराजका यह प्रश्न सुनकर मैंने अपना सब हाल उन्हें कह सुनाया। इतनेहीमें उन्हींके समान दो विद्याधर वहाँ आ पहुँचे और मुनिराजको प्रणाम कर उनके पास बैठ गये। उनकी मुखाकृति और आकार-प्रकार देखकर मैं तुरन्त समझ गया कि यह दोनों मुनिराजके पुत्र होंगे। मेरा यह अनुमान ठीक भी निकला। मुनिराजके परिचय कराने पर उन दोनोंने मुझे भी बड़े प्रेमसे प्रणाम किया। इसी समय वहाँ पर आकाशसे एक विमान उतरा। उसमें से एक देवने उतर कर सबसे पहले तीन बार प्रदक्षिणा कर मुझे प्रणाम किया, और मेरे बाद मुनिराजकी वन्दना की। यह वन्दन-विपर्यय देखकर उन दोनों विद्याधरोंने उस देवसे इसका कारण पूछा। उत्तरमें उसने कहा कि यह चारुदत्त मेरे धर्माचार्य हैं। विद्याधरोंने चकित होकर पूछा :—"क्या? यह आपके धर्माचार्य हैं? यह कैसे हुआ?"

उस देवने कहा :—"काशी नगरीमें वेदको जाननेवाली सुभद्रा और सुलसा नामक दो बहिनें रहती थीं। वे परिव्राजिकाएँ थीं और उन्होंने शास्त्रार्थमें अनेक

विद्वानोंपर विजय प्राप्त की थी। एक दिन याज्ञवल्क्य नामक एक परम विद्वान तपस्वी उनके वासस्थानमें आ पहुँचे। सुभद्रा और सुलसाने उनसे भी शास्त्रार्थ किया, किन्तु उसमें उन दोनोंकी पराजय हुई, इसलिये अपनी प्रतिज्ञानुसार वे दोनों उनकी दासी बन गयीं। इनमेंसे सुलसा अभी युवती थी। उधर याज्ञवल्क्य भी युवक थे। इसलिये नित्यके समागमसे उन दोनोंके हृदयमें विकार उत्पन्न हो गया और वे पति-पत्नीकी भाँति दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने लगे। इससे सुलसा शीघ्रही गर्भवती हो गयी। गर्भकाल पूर्ण होनेपर उसने एक पुत्रको जन्म दिया।"

संसारमें पाप करना जितना सहज होता है, उतना उसे छिपाना सहज नहीं होता। बच्चा हो जानेपर सुलसा और याज्ञवल्क्य लोकनिन्दाके भयसे काँप उठे। उन्हें जल्दीमें कुछ भी सूझ न पड़ा, इसलिये वे उस बालकको एक पीपलके नीचे छोड़कर कहीं भाग गये। इधर कुछही समयके बाद सुलसाकी बड़ी बहिन सुभद्राने उस बालकको पीपलके नीचे देखा। देखतेही

वह उसे अपने वासस्थानमें उठा लायी और पुत्रवत् उसका लालन-पालन कर उसे वेदादिक पढ़ाने लगी। जिस समय सुभद्रा उस बालकको उठा रही थी, उस समय वह बालक अपने मुँहमें गिरा हुआ पीपलका एक फल खा रहा था। इसीलिये सुभद्राने उसका नाम पिप्पलाद रक्खा।

पिप्पलाद जब बड़ा हुआ, तो वह परम बुद्धिमान और बड़ाही विद्वान निकला। उसकी कीर्ति सुनकर सुलसा और याज्ञवल्क्य उसे देखने आये। पिप्पलादने उनसे शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित कर दिया। पश्चात् सुभद्रा द्वारा जब उसे मालूम हुआ, कि यही मेरे असली मातापिता हैं और इन्होंने जन्मतेही मुझे त्याग दिया था, तब उसे उनपर बड़ाही क्रोध आया। उसने मातृमेध और पितृमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठानकर उन दोनोंको मार डाला। मैं उस जन्ममें पिप्पलादका शिष्य था और मेरा नाम वाग्बली था। मैंने भी यत्रतत्र पशु-मेधादि यज्ञोंका अनुष्ठान कराया था, इसलिये मृत्युके बाद मैं घोर नरकका अधिकारी हुआ।

नरकसे उद्धार पानेपर मैं पाँचवार पशु हुआ और क्रूर ब्राह्मणों द्वारा प्रत्येक वार यज्ञमें मेरा वध किया गया। अन्तिम वार टङ्कण प्रदेशमें मैंने बकरेके रूपमें जन्म लिया और वहाँपर रुद्रद्वारा मेरा वध हुआ। वधके समय चारुदत्तने मुझे धर्मोपदेश दिया, इसलिये मुझे सौधर्म देवलोककी प्राप्ति हुई। इसीलिये चारुदत्तको मैं अपना धर्माचार्य मानता हूँ और यही कारण है, कि मैंने इन्हें सबसे पहले प्रणाम किया है। ऐसा करना मेरे लिये उचित भी था।"

उस देवकी यह बातें सुनकर दोनों विद्याधरोंको परम सन्तोष और आनन्द हुआ। उन्होंने कहा :—"चारुदत्तने जिसप्रकार आप पर यह उपकार किया है, उसीप्रकार एक समय इन्होंने हमारे पिताजीको भी जीवन-दान दिया था। वास्तवमें यह बड़े सज्जन और परोपकारी जीव हैं।"

इसके बाद उस देवने मुझसे कहा :—"हे गुरुदेव! कहिये, अब मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप जो आज्ञा दें, वह मैं शिरोधार्य करनेको तैयार हूँ।"

मैंने कहा :—"इस समय मुझे कुछ भी नहीं कहना है। जब मुझे आवश्यकता होगी, मैं तुम्हें याद करूँगा। उस समय तुम मुझे यथेष्ट सहायता कर सकते हो।"

मेरी यह बात सुनकर वह देव तो अपने वास-स्थानको चला गया। इधर वे दोनों विद्याधर मुझे अपने नगर (शिवमन्दिर) में ले गये। वहाँपर उन विद्याधरोंने, उनकी माताने, उनके बन्धुओंने तथा अन्यान्य विद्याधरोंने मेरा बड़ाही सम्मान किया। मैं जितने दिन वहाँ रहा, उतने दिन एक समान मेरा स्वागत-सत्कार होता रहा। अन्तमें जब मैं वहाँसे चलनेको तैयार हुआ, तब उन्होंने मुझे गन्धर्वसेनाको दिखाकर कहा :—"हमारे पिताजीने दीक्षा लेते समय हमसे कहा था, कि एक ज्ञानीके कथनानुसार गन्धर्वसेनाको वसुदेव कुमार संगीत कलामें पराजित करेंगे, और उन्हींके साथ इसका विवाह होगा। वसुदेव कुमार भूमिचर हैं, इसलिये मेरे परम बन्धु चारुदत्तके यहाँ तुम इस कन्याको भेज देना। ऐसा करनेसे इसका विवाह आसानीसे हो जायगा और

तुम्हें किसी कठिनाईका सामना न करना पड़ेगा।" इस-लिये अब आप इसे अपने साथ लेते जाइये। यथा समय इसे अपनीही कन्या समझकर आप इसके व्याहका प्रबन्ध कर दीजियेगा।"

विद्याधरोंकी यह प्रार्थना सुन, मैं उस कन्याके साथ अपने नगर आनेको तैयार हुआ। इसी समय वह देव भी वहाँ आ पहुँचा। उसने हम दोनोंको एक विमानमें बैठाकर, हमारे नगरमें पहुँचा दिया। उसने मुझे बहुतसा सुवर्ण और मणिमुक्तादिक अनेक रत्न भी भेट दिये। इस धनराशिसे मेरा दरिद्र सदाके लिये दूर हो गया और मेरी गणना नगरके धनीमानी व्यापा-रियोंमें होने लगी। सुबह मैं अपने मामा सर्वार्थ और उनकी स्त्री रत्नवतीसे मिला। वे मेरी सम्पन्नावस्था देख-कर परम प्रसन्न हुए। तबसे मैं आनन्दपूर्वक यहीं अपने दिन व्यतीत करता हूँ। इस प्रकार हे वसुदेव! यह गन्धर्वसेना मेरी नहीं, किन्तु एक विद्याधरकी कन्या है। इसे वणिक पुत्री समझकर आप इसकी अवज्ञा न कीजियेगा।"

चारुदत्तके मुखसे गन्धर्वसेनाका यह वृत्तान्त सुनकर वसुदेवको बड़ाही आनन्द हुआ और वे पहले की अपेक्षा अब उससे अधिक प्रेम करने लगे।

एक दिन चैत मासमें वसुदेव और गन्धर्वसेना रथमें बैठकर उद्यानकी सैर करने जा रहे थे। उस समय मार्गमें उन्हें मातंग लोगोंका एक दल मिला। उनके साथ परम रूपवती एक मातंग कन्या भी थी। उसकी और वसुदेवकी चार आँख होतेही दोनोंके मनमें कुछ विकार उत्पन्न हो गया। चतुर गन्धर्वसेनासे यह बात छिपी न रह सकी। उसने सारथीको शीघ्रतापूर्वक रथ हाँकनेकी आज्ञा दी, फलतः रथ आगे बढ़ गया और वह मामला जहाँका तहाँ रह गया। वसुदेव और गन्धर्वसेना उपवनमें पहुँचे और वहाँ जलक्रीड़ादिक कर वे दोनों चम्पापुरी लौट आये।

घर आने पर एक वृद्धा मातङ्गिनी वसुदेवके पास आयी और उन्हें आशीष दे, उनके पास बैठ गयी। उसने कहा—"वसुदेव कुमार! मैं तुम्हें एक लम्बी और बहुत पुरानी कहानी सुनाने आयी हूँ, वह सुनिये। पूर्वकालमें

जिस समय श्रीऋषभदेवने अपना राज्य अपने पुत्रोंमें बाँटा, उस समय दैवयोगसे उनके नमि और विनमि नामक दो पुत्र वहाँ उपस्थित न थे। फलतः वे दोनों राज्यसे वञ्चित रह गये। बादको वे राज्य प्राप्त करने के लिये संयमी प्रभुकी सेवा करने लगे। उनकी सेवासे सन्तुष्ट हो धरणेन्द्रने वैताढ्य पर्वतकी दो श्रेणियोंका राज्य उन्हें प्रदान किया। दीर्घ कालतक इस राज्यका सुख उपभोगकर, उन दोनोंने अपने-अपने पुत्रोंको राज्य दे, प्रभुके निकट दीक्षा ले ली और कालान्तरमें मोक्षके अधिकारी हुए।

उनके बाद नमि सुतने मातङ्ग दीक्षा ग्रहण की और इस प्रकार वे भी स्वर्गके अधिकारी हुए। उसका वंशधर इस समय ग्रहसित नामक एक विद्याधरपति है। मैं उसीकी स्त्री हूँ। और मेरा नाम हिरण्यवती है। मेरे पुत्रका नाम सिंहदंष्ट्र है। सिंहदंष्ट्रके एक पुत्री है, जिसका नाम नीलयशा है। उसीको आपने उसदिन उद्यान जाते समय देखा था। वह तन-मनसे आप पर अनुरक्त है और मन-ही-मन अपना हृदय आपको अर्पण कर चुकी है।

आज विवाहका मुहूर्त्त बहुत ही अच्छा है। आप इसी समय मेरे साथ चलिये, और उसका पाणिग्रहण कर उसकी मनोकामना पूरी कीजिये।"

बुढ़ियाका यह प्रस्ताव सुनकर वसुदेव चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने कुछ अनिच्छापूर्वक कहा :—"इस समय तो मैं तुम्हारी बातका कोई उत्तर नहीं दे सकता। सुबह तुम मेरे पास आना, उस समय मैं तुम्हें अपना निश्चय सूचित करूँगा।"

वसुदेवके इस उत्तरसे वह बुढ़िया तुरन्त समझ गयी, कि वे इस प्रसंगको टालना चाहते हैं। परन्तु वह आसानीसे उनका पीछा छोड़ना न चाहती थी। उसने कुछ रोषपूर्वक कहा :—"अच्छी बात है, मैं जाती हूँ। अब या तो मैं ही आपके पास आऊँगी या आपही मेरे पास आयेंगे।"

इतना कह वह बुढ़िया वहाँसे चली गयी। वसुदेवने भी बुढ़ियाकी उपेक्षा कर उसकी बातको अपने मस्तिष्कसे निकाल दिया। किन्तु कुछ दिनोंके बाद ग्रीष्म ऋतुमें, जब एक दिन वसुदेव जल-क्रीड़ा कर गन्धर्वसेनाके साथ

एक लताकुञ्जमें सो रहे थे, तब एक भूत उन्हें एक चिता के पास उठा ले गया। वहाँपर आँख खोलते ही वसुदेवने देखा कि एक भयंकर चिता धधक रही है और वह बुढ़िया भयानक रूप बनाये सामने खड़ी है। वह भूत वसुदेवको उसके हाथोंमें सौंपकर अन्तर्धान हो गया। इसके बाद बुढ़ियाने विलक्षण हँसी करते हुए कहा :—"हे कुमार! तुमने फिर क्या विचार किया? अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। मैं चाहती हूँ कि तुम सहर्ष मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो, जिससे मुझे किसी दूसरे उपाय से काम न लेना पड़े।"

इसी समय अपनी सखियोंके साथ वहाँ नीलयशा भी आ पहुँची। उसे देखकर बुढ़ियाने कहा :—"हे नीलयशा! यही तेरा भावी पति वसुदेव कुमार है!" यह सुनते ही नीलयशा वसुदेवको लेकर आकाश मार्गमें चली गयी।

दूसरे दिन सुबह बुढ़ियाने वसुदेवके पास पहुँच कर कहा :—"हे कुमार! मेघप्रभ वनसे घीरा हुआ यह हीमान पर्वत है। इस पर्वत पर ज्वलनका पुत्र अंगारक,

जो चारणमुनिओंका आश्रम रूप है, वह अपनी विद्याओं को फिरसे सिद्ध कर रहा है। उसे अभी इस कार्यमें बहुत समय लगेगा, किन्तु यदि आप उसे दर्शन दे दें, तो उसका यह कार्य शीघ्र सिद्ध हो जानेकी सम्भावना है। क्या आप उस पर इतना उपकार न करेंगे?"

वसुदेवने कहा :—"नहीं, उसके पास जानेकी मेरी इच्छा नहीं है।"

इसके बाद वह बुढ़िया उन्हें वैताढ्य पर्वत पर शिव-मन्दिर नामक नगरमें ले गयी। वहाँपर सिंहदंष्ट्र राजाने सन्मानपूर्वक उन्हें अपने महलमें ले जाकर उनके साथ अपनी कन्या नीलयशाका विवाह कर दिया।

इसी समय नगरमें घोर कोलाहल मचा। यह देख वसुदेवने दरवानसे पूछा, क्या मामला है? द्वारपालने कहा :—"महाराज! शकटमुख नामक एक नगर है, वहाँके राजाका नाम नीलवान और रानीका नाम नील-वती था। उनके नीलाञ्जना नामक एक कन्या और नील नामक एक पुत्र था। उन दोनोंने बाल्यावस्थामें स्थिर किया था, कि यदि हममेंसे किसी एकके पुत्री और

दूसरेके पुत्र होगा, तो उन दोनोंका व्याह आपसमें ही कर देंगे।

इसके बाद नीलाञ्जनाका व्याह हमारे राजाके साथ हुआ और उसके उदरसे नीलयशा नामक पुत्री हुई, जिसका विवाह आपके साथ किया गया है। ऐसा करनेका कारण यह था कि हमारे महाराजको एकबार बृहस्पति नामक मुनिने बतलाया था कि नीलयशाका विवाह अर्ध भरतके स्वामी, विष्णुके पिता, यदुकुलोत्पन्न परम रूपवान वसुदेव कुमारके साथ होगा। इसीलिये महाराजने विद्याके बल आपको यहाँ बुलाकर आपके साथ उसका विवाह कर दिया है। उधर नीलकुमारके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम उसने नीलकण्ठ रक्खा। नीलने उसके लिये नीलयशाकी मंगनी की, किन्तु उसका विवाह आपके साथ हो जानेके कारण उसे निराश होना पड़ा। आज उसीने नीलकण्ठके साथ यहाँ आकर बड़ा उत्पात मचाया है, किन्तु महाराजकी आज्ञासे वह बाहर निकाल दिया गया है। यह कोलाहल इसीलिये मचा हुआ है, किन्तु अब डरकी कोई बात नहीं है।"

वसुदेव यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी नव विवाहिता पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक अपने दिन बिताने लगे। एक दिन शरद ऋतुमें अनेक विद्याधर औषधियाँ लेने और विद्याकी साधना करनेके लिये हीमान पर्वतकी ओर जा रहे थे। उन्हें देखकर वसुदेवने नीलयशासे कहा :—"मैं भी विद्याधरोंकी सी कुछ विद्याएँ सीखना चाहता हूँ। क्या तुम इस विषयमें मुझे अपना शिष्य मानकर कुछ सिखा सकती हो?"

नीलयशाने कहा :—"क्यों नहीं? चलो, हमलोग इसी समय हीमान पर्वत पर चलें। मैं वहाँ तुम्हें बहुतसी बातें बतलाऊँगी।"

इतना कह वह वसुदेवको अपने साथ हीमान पर्वत पर ले गयी। किन्तु वहाँका रमणीय दृश्य देख कर वसुदेवका चित्त चञ्चल हो उठा। उनकी यह अवस्था देखकर नीलयशाने एक कदली-वृक्ष उत्पन्न किया और उसीकी शीतल छायामें वे दोनों क्रीड़ा करने लगे। इसी समय वहाँ एक माया-मयूर आ पहुँचा। उसका सुन्दर रूप देखकर नीलयशा उस पर मुग्ध हो गयी और उसको

पकड़नेकी चेष्टा करने लगी। माया-मयूर कभी नजदीक आता और कभी दूर भाग जाता, कभी झाडियोंमें छिप जाता और कभी मैदानमें निकल जाता। नीलयशा उसको पकड़नेकी इच्छासे कुछ दूर निकल गयी और अन्तमें जब वह उसके पास पहुँची, तब उस मयूरने अपने कन्धे पर नीलयशाको बैठालिया। इसके बाद वह मयूर आकाशमार्ग द्वारा न जाने कहाँ चला गया।

वसुदेव उस मयूरकी यह लीला देख कर पहले तो दंग रह गये, किन्तु बादको वे भी उसके पीछे दौड़े। उन्होंने बहुत दूर तक उसका पीछा किया और बड़ा हो-हल्ला मचाया, किन्तु जब वह आँखोंसे ओझल हो गया, तब वे लाचार होकर वहीं खड़े हो गये। उस समय शाम हो चली थी इस लिये अब कहीं ठहरनेका प्रबन्ध करना आवश्यक था। इसलिये वसुदेवने इधर-उधर देखा, तो उन्हें मालूम हुआ कि वे एक व्रज (गायोंके रहनेका स्थान) के निकट आ पहुँचे हैं। वहाँ जाने पर गोपियोंने उनका बड़ाही सत्कार किया और उनके सोनेके लिये शैय्यादिकका प्रबन्ध कर दिया। वसुदेवने

वह रात वहीं व्यतीत की। सुबह सूर्योदयके पहले ही वे उठ बैठे और हाथ-मुँह धो, दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर उन्हें गिरितट नामक एक गाँव मिला। उसमें जोरोंके साथ वेदध्वनि हो रही थी। एक ब्राह्मणसे इसका कारण पूछने पर उसने कहा :—"हे कुमार! राजा रावणके समयमें दिवाकर नामक एक विद्याधरने अपनी पुत्रीका विवाह नारद ऋषिके साथ किया था। उन्हींके वंशका सुरदेव नामक एक ब्राह्मण इस समय इस गाँवका स्वामी है। उसकी क्षत्रिया नामक पत्नीसे उसे सोमश्री नामक एक कन्या उत्पन्न हुई है, जो वेदोंकी अच्छी जानकार मानी जाती है। इसके व्याहके सम्बन्धमें कराल नामक एक ज्ञानीसे प्रश्न करने पर उसने बतलाया, कि जो वेदपाठमें इसे जीतेगा, उसीसे इसका विवाह होगा। उनका यह वचन सुनकर सुरदेवने इसी आशयकी घोषणा कर दी है। इसीलिये अनेक युवक, जो उससे व्याह करने के लिये लालायित हैं, रात दिन वेदका अभ्यास करते रहते हैं। और ब्रह्मदत्त नामक

एक उपाध्याय उन्हें नियमित रूपसे वेदोंकी शिक्षा देरहे हैं।"

वसुदेव कुमार कौतूहल प्रेमी तो थे ही, इसलिये ब्राह्मणके यह वचन सुनकर पहलेकी भाँति यहाँ भी उन्हें दिल्लगी सूझी। वे तुरन्त एक ब्राह्मणका वेश धारण कर ब्रह्मदत्तके पास पहुँचे और उससे कहने लगे, कि मैं गौतम गोत्रीय स्कन्दिल नामक ब्राह्मण हूँ और आपके निकट वेद पढ़ने आया हूँ। ब्रह्मदत्तने इसके लिये सहर्ष अनुमति दे दी। बस, फिर क्या था, बातकी-बातमें उन्होंने उसके समस्त शिष्योंसे बाजी मार ली और अन्तमें सोमश्रीको पराजितकर उससे व्याह कर लिया।

वसुदेव कुमार अपनी इस ससुरालमें भी बहुत दिनों तक आनन्द करते रहे। अन्तमें एकदिन एक उद्यानमें इन्द्रशर्मा नामक ऐन्द्रजालिकसे उनकी भेट हो गयी। उसने उनको इन्द्रजालके अनेक अद्भुत चमत्कार कर दिखलाये। देखकर वसुदेवको भी वह विद्या सीखनेकी इच्छा हुई। इसलिये उन्होंने इन्द्रशर्मासे कहा :—"यदि यह विद्या मुझे भी सिखायेंगे तो बड़ी कृपा होगी।"

इन्द्रशर्माने कहा :—"बेशक, यह विद्या सीखने योग्य है। इसे सीखनेमें अधिक परिश्रम भी नहीं पड़ता। शामसे इसकी साधना आरम्भ की जाय, तो सुबह सूर्योदय के पहले-ही-पहले यह विद्या सिद्ध हो जाती है। परन्तु साधनाके समय इसमें अनेक प्रकारके विघ्न और बाधाएँ आ पड़ती हैं। कभी कोई डराता है, कभी मारता है, कभी हँसता है और कभी ऐसा मालूम होता है, मानो हम किसी सवारीमें बैठे हुए कहीं चले जा रहे हैं। इसी-लिये इसकी साधनाके समय एक सहायककी जरूरत रहती है।"

वसुदेवने निराश होकर कहा :—"यहाँ पर विदेशमें मेरे पास सहायक कहाँ? क्या मैं अकेला इसे सिद्ध न कर सकूँगा?"

इन्द्रशर्माने कहा :—"कोई चिन्ताकी बात नहीं, आप अकेले ही सिद्ध करिये। मैं आपकी सहायताके लिये हरवक्त यहाँपर मौजूद रहूँगा। काम पड़ने पर मेरी यह स्त्री—वनमाला भी हमें सहायता कर सकती है।"

इन्द्रशर्माके यह वचन सुनकर वसुदेव यथाविधि उस

विद्याकी साधना करने लगे। रातके समय जब वे उस कपटीके आदेशानुसार जप तपमें लीन हो गये, तब वह उन्हें एक पालकीमें बैठाकर वहाँसे भाग चला। उसने वसुदेवको पहले ही समझा दिया था, कि साधनाके समय इस तरहका भ्रम हुआ करता है, इसलिये वे समझे कि वास्तवमें मुझे भ्रम हो रहा है। इस प्रकार इन्द्रशर्मा रात भरमें उन्हें गिरितटसे बहुत दूर उड़ा ले गया। सुबह सूर्योदय होने पर वसुदेव विशेषरूपसे सजग हुए तब यह बात उनकी समझमें आ गयी कि उन्हें वह कपटी विद्याधर पालकीमें बैठाकर कहीं उड़ाये लिये जा रहा है।

अब और अधिक समय उस पालकीमें बैठना वसुदेवके लिये कठिन हो गया। वे तुरन्त उस पालकीसे कूदकर एक ओरको भगे। यह देख, इन्द्रशर्माने उनका पीछा किया। वे जहाँ जाते, वहीं पर वह जा पहुँचता। दिन भर यह दौड़ होती रही। न तो वसुदेवने ही हिंमत छोड़ी, न इन्द्रशर्माने ही उनका पीछा छोड़ा। अन्तमें शामके समय न जाने किस तरह उसे धोखा देकर

वसुदेव तृणशोषक नामक एक गाँवमें घुस गये और वहाँके देवकुलमें जाकर चुपचाप सो रहे।

परन्तु बुरे समयमें दीन दुःखीको कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। उस देवकुलमें भी रातके समय एक राक्षसने आकर वसुदेव पर आक्रमण कर दिया। लाचार, वसुदेवको उससे भी युद्ध करना पड़ा। राक्षस बड़ाही बलवान था इसलिये उसने वसुदेवको कई बार धर पटका, किन्तु अन्तमें वसुदेवने मोका पाकर उसके हाथ पैर बाँध दिये और जिस तरह धोबी शिला पर कपड़े पटकता है, उसी तरह उसे जमीन पर पटक कर मार डाला।

सुबह जब गाँवके लोगोंने देखा कि वह राक्षस, जो नित्य उन्हें सताया करता था, देवकुलके पास मरा पड़ा है, तब उनके आनन्दका वारापार न रहा। उन्होंने वसुदेवको एक रथमें बैठाकर सारे गाँवमें घुमाया और इस उपकारके बदले उनसे अपनी पाँच सौ कन्याओंका विवाह कर देनेकी इच्छा प्रकट की। इसपर वसुदेवने कहा :—"पहले मुझसे इस राक्षसका हाल कह सुनाइये, फिर मैं तुम्हारे इस प्रस्तावर पर विचार करूँगा।"

वसुदेवका यह प्रश्न सुनकर एक बुढ़े आदमीने कहा :—"हे कुमार! कलिङ्गदेशमें काँचनपुर नामक एक नगर है। वहाँपर जितशत्रु नामक राजा राज्य करता है। उसीका यह सोदास नामक पुत्र है। यह बचपनसे ही माँसका लोलुप है, किन्तु राजाने समस्त जीवोंको अभय-दान दे रक्खा है। इसलिये एकदिन इसने अपने पितासे कहा :—"मुझे प्रतिदिन एक मयूरका माँस अवश्य मिलना चाहिये।" पिताको यह बात बिलकुल पसन्द न थी, फिर भी पुत्रस्नेहके कारण उसने उसकी बात मान ली। उसी दिनसे उसका रसोइया मंशगिरिसे प्रतिदिन एक मयूर ले आने लगा। एकदिन मारे हुए मयूरको बिल्ली उठा ले गयी, इससे रसोइयेने एक मरे हुए बालकका माँस पकाकर उसे खानेको दे दिया। उस माँसको खाते समय सोदासने पूछा :—"आज यह माँस अधिक स्वादिष्ट क्यों है?"

यह सुनतेही रसोइया पहले तो डर गया, किन्तु बादको उसने सारा हाल उससे कह सुनाया। सुनकर सोदासने आज्ञा दी कि आजसे मनुष्यका ही माँस

पकाया जाय। परन्तु रसोइयेके लिये प्रतिदिन मनुष्यका मॉस लाना संभव न था, इसलिये सोदासने स्वयं इसका भार उठा लिया। वह रोज नगरसे एक बालक मारकर उठा लाता था और रसोइया उसीका मांस उसे पका देता था। परन्तु इससे शीघ्रही नगरमें हाहाकार मच गया। जब यह बात उसके पिताको मालूम हुई तो उन्होंने उसकी बड़ी फजीहत की और उसे सदाके लिये अपने देशसे निकाल दिया। उसी दिनसे यह सोदास यहॉपर चला आया था। और हमेशा किसी न किसीको मारकर खा जाता था। आज इसके मर जानेसे हमलोग सदाके लिये निश्चिन्त हो गये। इस कार्यके लिये हमलोग आपको जितना धन्यवाद दें उतना ही कम है।"

वसुदेव यह वृत्तान्त सुनकर परम आनन्दित हुए और उन समस्त कन्याओंसे उन्होंने सहर्ष व्याह कर लिया। पश्चात् एक रात्रि वहाँपर रहनेके बाद वे दूसरे दिन सुबह अचल नामक गाँवमें चले गये। वहॉपर एक सार्थवाहकी मित्रश्री नामक पुत्रीसे उन्होंने व्याह किया। किसी ज्ञानीने पहलेसे ही उस सार्थवाहको बतलाया था

कि मित्रश्रीका विवाह वसुदेवके साथ होगा। उसका वह वचन आज सत्य प्रमाणित हुआ।

वहाँसे वेदसाम नगरकी ओर जाने पर इन्द्रशर्माकी पत्नी वनमालासे उनकी भेंट हो गयी। वसुदेव उसे देखते ही चौकन्ने हो गये, किन्तु उसने उन्हें 'देवर' शब्दसे सम्बोधित कर उन्हें मीठी-मीठी बातोंसे बड़ी सान्त्वना दी और उन्हें समझा बुझाकर अपने घर लिवा ले गयी। वहाँपर उसने अपने पितासे उनका परिचय कराया। उसने वसुदेवसे कहा :-"हे कुमार! इस नगरके राजाका नाम कपिल है। उनके कपिला नामक एक कन्या है। कुछ दिन पहले उसके विवाहके सम्बन्धमें पूछताछ करने पर एक ज्ञानीने बतलाया था कि 'इसका विवाह वसुदेव कुमारके साथ होगा; जो इस समय गिरितट नामक नगरमें रहते हैं। वे यहाँ आने पर स्फुलिङ्ग वदन नामक अश्वका दमन करेंगे। यही उनकी पहचान होगी।' तबसे हे कुमार! राजा तुम्हारी खोजमें रहते हैं। बीचमें उन्होंने मेरे जामाता इन्द्रशर्माको तुम्हें ले आनेके लिये भेजा था, किन्तु तुम कहीं बीचहीसे गायब हो गये।

अब संयोगवश यदि तुम यहाँ आ गये हो, तो उस अश्वको दमनकर कपिलासे विवाह कर लो। यह तुम्हारे ही हितकी बात है।"

वनमालाके पिताकी यह सलाह वसुदेवने सहर्ष मान ली। उन्होंने उस अश्वका दमन कर कपिलासे विवाह कर लिया। इसके बाद वे अपने श्वसुर और अपने साले अंशुमानके आग्रहसे कुछ दिन वहाँ ठहर गये और उनका आतिथ्य ग्रहण करते रहे। इस बीच कपिलासे उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने कपिल रक्खा।

एकदिन वसुदेवकुमार अपने श्वसुरकी गजशालामें गये। वहाँपर कौतूहल वश वे एक हाथीकी पीठ पर चढ़ बैठे। किन्तु वह हाथी जमीन पर चलनेके बदले उन्हें आकाशमार्गमें ले उड़ा। उसकी यह कपट-लीला देख वसुदेवने उसे एक मुक्का जमाया। मुक्का लगते ही वह एक सरोवरके तट पर जा गिरा और नीलकंठ नामक विद्याधर बन गया। यह वही विद्याधर था जो नीलयशाके विवाहके समय युद्ध करने आया था।

यहाँसे वसुदेवकुमार सालगुह नामक नगरमें गये।

वहाँपर उन्होंने राजा भाग्यसेनको धनुर्वेद की शिक्षा दी। एकदिन भाग्यसेनके साथ युद्ध करनेके लिये उसका बड़ा भाई मेघसेन नगर पर चढ़ आया, किन्तु वसुदेवकुमारने उसे बुरी तरह मार भगाया। इस युद्धमें वसुदेवका पराक्रम देखकर दोनों राजा प्रसन्न हो उठे, भाग्यसेनने प्रसन्न हो, अपनी पुत्री पद्मावतीसे और मेघसेनने अपनी पुत्री अश्व-सेनासे वसुदेवका विवाह कर दिया। कुछ दिनों तक उन दोनोंके साथ दाम्पत्य-जीवन व्यतीत कर कुमारने वहाँसे भी बिदा ग्रहण की।

आगे बढ़ने पर वसुदेवको भद्दिलपुर नामक नगर मिला। वहाँके राजा पुंड्रराजकी मृत्यु हो गयी थी। पुंड्रराजके एक कन्या थी, किन्तु पुत्र एक भी न था। उस कन्याका नाम पुंड्रा था। वह औषधियोंके प्रयोगसे पुरुषका रूप धारण कर पिताका राज्य चलाती थी। वसुदेवने बुद्धिबलसे तुरन्त जान लिया कि यह पुरुष नहीं, बल्कि स्त्री है। वसुदेवको देखकर पुंड्राके हृदयमें भी अनु-राग उत्पन्न हो गया था, इसलिये उसने वसुदेवके साथ ब्याह कर लिया। पश्चात् उसके उदरसे पुंड्र नामक पुत्र

उत्पन्न हुआ जो आगे चल कर उसी राज्यका अधिकारी हुआ।

एक दिन रात्रिके समय हँसका रूप धारण कर अंगारक विद्याधरने कपटपूर्वक वसुदेवको गंगा नदीमें फेंक दिया, किन्तु वसुदेव किसी तरह तैरकर उससे बाहर निकल आये। वहाँसे वे इलावर्धन नामक नगरमें गये। वहाँ पर वे एक सार्थवाहकी दूकानपर बैठकर विश्राम करने लगे। इतनेमें कुमारके प्रभावसे उस दिन दुकानदारको लाख रूपयेका मुनाफा हुआ। इससे वह दुकानदार उन्हें सोनेके रथमें बैठाकर अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने घर लिवा ले गया। वहाँपर उसने अपनी रत्नवती नामक कन्यासे उनका विवाह कर दिया। तदनन्तर वसुदेव अपने इस श्वसुरके आग्रहसे कुछ दिनोंके लिये वहीं ठहर गये।

एक दिन महापुर नामक नगरमें इन्द्र-महोत्सव था, इसलिये वसुदेव अपने श्वसुरके साथ एक दिव्य रथपर बैठ कर उसे देखने गये। वहाँपर नगरके बाहर एक समान नये मकानोंको देखकर वसुदेवने पूछा :—"यहाँपर यह सब नये-ही-नये मकान क्यों दिखायी देते हैं?"

सार्थवाहने कहा:—"यहाँके राजा सोमदत्तके सोमश्री नामक एक कन्या है। उसके स्वयंवरके लिये यह सब मकान बनाये गये थे। स्वयंवरमें अनेक राजा आये थे, परन्तु उनमें कोई विशेष चतुर न होनेके कारण वे सब ज्योंके त्यों लौटा दिये गये। सोमश्री अब तक अविवाहिता ही है।"

इस तरहकी बातचीत करते हुए वे दोनोंजन शक्रस्तम्भके पास पहुँचे और उसे वन्दनकर एक ओर खड़े हो गये। उसी समय राजपरिवारकी महिलाएँ भी रथमें बैठकर वहाँ आयीं और शक्रस्तम्भको वन्दनकर महलकी ओर लौट पड़ीं। इतनेहीमें एक मदोन्मत्त हाथी जंजीर को तोड़कर वहाँ आ पहुँचा और भीड़में इधर-उधर चक्कर काटने लगा। यह देखते ही चारों ओर भगदड़ मच गयी। किसीको सूँडमें लपेटकर इधर-उधर फेंक देता और किसीको पैरके नीचे कुचल डालता। अचानक एक बार वह राजकुमारीके रथके पास जा पहुँचा और उसे उसने रथसे गिरा दिया। सब लोगोंको तो उस समय अपने-अपने प्राणोंकी पड़ी थी, इसलिये किसीका भी

ध्यान उसकी ओर आकर्षित न हुआ। बेचारी राज-कुमारीको असहाय और संकटावस्थामें देखकर वसुदेव वहाँ दौड़ आये और उस हाथीको वहाँसे खदेड़ने लगे। वह इससे और भी उत्तेजित हो उठा और राजकुमारीको छोड़कर वसुदेवकी ओर झपट पड़ा। वसुदेवने युक्तिसे काम लेकर उस हाथीको तुरन्त अपने वशमें कर लिया। पश्चात् हाथीसे अलग होनेपर वसुदेवकुमारने राजकुमारीको उठा लिया और उपचार करनेके लिये उसे पासके एक मकानमें रख दिया। उस समय वह भय और आघात से मूर्च्छित हो गयी थी। पर जब उसे होश आया और वह स्वस्थ हुई तब उसकी दासियाँ उसे वासस्थान को लिवा ले गयीं।

इसी नगरमें रत्नवतीकी एक बहिन कुबेर सार्थवाहको ब्याही गयी थी। उससे भेट हो जाने पर वह अपने श्वसुर तथा वसुदेवको बड़े सम्मान-पूर्वक अपने मकान पर लिवा ले गया। वहाँ पर उसने भोजनादिक द्वारा उनका बड़ा ही सत्कार किया। पश्चात् भोजनादिकसे निवृत्त हो वे ज्योंहीं एक कमरेमें बैठे, त्योंही सोमदत्त राजाका मन्त्री

वहाँ आ पहुँचा। उसने वसुदेवको प्रणाम कर नम्रता-पूर्वक कहा:—"हे कुमार! यह तो आप जानते ही होंगे, कि हमारे राजाके सोमश्री नामक एक कन्या है। पहले उसने स्वयंवर द्वारा अपना विवाह स्थिर किया था। परन्तु बीचमें सर्वाण साधुके केवल ज्ञान महोत्सवमें पधारे हुए देवताओंको देखकर जातिस्मरण-ज्ञान उत्पन्न हो गया और तबसे अपना वह विचार छोड़कर उसने मौनाव-लम्बन कर लिया है।

उसकी यह अवस्था देखकर हमारे महाराज बहुत चिंतित हो उठे, किन्तु मैं उन्हें सान्त्वना दे, एक दिन राजकुमारीसे एकान्तमें मिला। राजकुमारी मुझे पिताके समान ही आदरकी दृष्टिसे देखती है। उसने मुझसे बतलाया कि:—"पूर्वजन्ममें मेरा पति एक देव था। और देवलोकमें हम दोनोंके दिन बड़े आनन्दमें कटते थे। एक दिन हमलोग अहिरन्तका जन्म-महोत्सव देखनेके लिये नन्दीश्वरादिककी यात्रा करने गये। वहाँसे वापस आने पर मेरा वह पति देवलोकसे च्युत हो गया। इससे मैं शोकविह्वल हो, उसे खोजती हुई भरतक्षेत्रके

कुरुदेशमें जा पहुँची। वहाँपर दो केवलियोंसे मेरी भेट हो गयी। मैंने उनसे पूछा :—"हे भगवन्! क्या आप बतला सकते हैं कि मेरा पति स्वर्गसे च्युत होकर कहाँ उत्पन्न हुआ है?"

केवलीने कहा :—"तुम्हारे पतिने हरिवंशके राजा के यहाँ जन्म लिया है। तुम भी देवलोकसे च्युत होकर एक राजपुत्रीके रूपमें जन्म लोगी। तुम्हारे नगरमें एक बार इन्द्र-महोत्सव होगा, उसमें हाथीके आक्रमणसे तुम्हें बचाकर फिर वही तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा।"

केवलीके यह वचन सुनकर मैं आनन्दपूर्वक उन्हें वन्दनकर अपने वासस्थानको चली गयी। इसके बाद स्वर्गसे च्युत होकर मैं सोमदत्त राजाके यहाँ पुत्री रूपमें उत्पन्न हुई हूँ। पहले यह सब बातें मुझे मालूम न थीं, किन्तु सर्वाण साधुके केवल महोत्सवमें देवताओंको देखकर मुझे जातिस्मरण-ज्ञान उत्पन्न हुआ और यह सब बातें मुझे ज्ञात हो गयीं। यही कारण है कि मैंने अब स्वयं-वरका विचार छोड़कर विवाहके सम्बन्धमें मौनावलम्बन कर लिया है।"

यह सब वृत्तान्त वसुदेवको सुनाकर सोमदत्तके मन्त्रीने उनसे कहा :—"हे वसुदेव कुमार! यह सब बातें मैंने महाराजसे बतला दी थीं और उस दिनसे वे भी शान्त हो गये थे। आज राजकुमारीको आपने हाथी से बचाया है, इसलिये राजकुमारी और महाराज आदि आपको पहचान गये हैं। उन्हींके आदेशसे मैं आपको बुलाने आया हूँ। कृपा कर आप मेरे साथ चलिये और राजकन्याका पाणिग्रहण कर उसका जीवन सार्थक कीजिये।" मन्त्रीकी यह प्रार्थना सुनकर, वसुदेवकुमार उसके साथ राजा सोमदत्तके पास गये और वहाँपर राज-कुमारीका पाणिग्रहण कर वे उसका आतिथ्य ग्रहण करने लगे।

एकदिन रात्रिके समय वसुदेवने देखा कि शैय्या पर उनकी पत्नीका पता नहीं है। इससे वे बहुतही दुःखित हो गये और उसकी खोज करने लगे। तीसरे दिन एक उपवनमें उसे देखा तो उन्होंने कहा :—"प्रिये! मुझसे ऐसा कौनसा अपराध हुआ है, जिसके कारण तुम इस तरह रुष्ट होकर मुझे परेशान कर रही हो।"

कुमारीने कहा :—"हे प्राणेश ! आपके कल्याणार्थ मैंने एक व्रत लिया था। जिसमें तीन दिन तक मौन रहकर वह व्रत पूर्ण किया है। अब उसकी पूर्णाहुतिमें केवल एक ही बातकी कसर है। वह यह कि, आपको देवीका पूजन कर मुझसे पुनः पाणिग्रहण करना पड़ेगा। ऐसा करनेसे हमलोगोंका जीवन और भी प्रेममय बन जायगा।"

उसकी यह बात सुनकर वसुदेव बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसके कथनानुसार फिरसे उसका पाणिग्रहण भी किया। यह सब काम निपटनेके बाद उसने देवीका प्रसाद कह कर वसुदेवको मदिरा भी पिला दी। इससे वसुदेवने उन्मत्त हो वह रात आनन्दपूर्वक व्यतीत की। सुबह नींद खुलनेपर वसुदेवने देखा, कि सोमश्रीके बदले उनकी शैय्यापर कोई दूसरी ही सुन्दरी लेटी हुई है। यह देख, उन्होंने उससे पूछा :—"हे सुन्दरि ! तुम कौन हो ? मेरी सोमश्री कहाँ है ?"

उस सुन्दरीने मुस्कुरा कर कहा :—"प्राणनाथ ! दक्षिण श्रेणीमें सुवर्णाभ नामक एक नगर है। वहाँके

राजाका नाम चित्राङ्ग और रानीका नाम अंगारवती है। उन्हींकी मैं कन्या हूँ। मेरा नाम वेगवती है। मेरे एक भाई भी है, जिसका नाम मानसवेग है। मानसवेगको राज्यभार सौंपकर मेरे पिताने दीक्षा लेली है। मेरा भाई दुराचारी है और उसीने आपकी स्त्रीका हरण किया है। उसने मेरे द्वारा उसे फुसलानेकी बड़ी चेष्टा की, किन्तु उसने एक न सुनी। उलटे उसीने मुझको अपनी सखी बनाकर आपको लिवा लानेके लिये यहाँपर भेजा। तदनुसार मैं यहाँ आयी, किन्तु आपको देखकर मैं आपपर मुग्ध हो गयी, इसलिये मैंने सोमश्रीका सन्देश आपसे न कहकर, उसका रूप धारणकर छलपूर्वक आपसे व्याह कर लिया है। हे नाथ! यही सच्चा वृत्तान्त है। मुझे आशा है कि आप मेरी यह धृष्टता क्षमा करेंगे।"

वसुदेवने अब और कोई उपाय न देख, उसका अपराध क्षमा कर दिया। सुवह वेगवतीको देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वसुदेवकी आज्ञासे उसने सोमश्रीके हरणका समाचार लोगोंको कह सुनाया।

एकदिन वसुदेव जब अपनी इस पत्नीके साथ सो रहे

थे, तब उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो मानसवेग खेचर उन्हें उठाये लिया जा रहा है। शीघ्र ही उन्होंने सावधान होकर उसके एक ऐसा मुक्का जमाया, कि वह उसकी चोटसे तिलमिला उठा और वसुदेवको उसने गंगाकी धारामें फेंक दिया। संयोग वश वसुदेव चण्डवेग नामक एक विद्याधरके कन्धेपर जा गिरे। उस समय वह विद्याधर गंगामें खड़ा-खड़ा कोई विद्या सिद्ध कर रहा था। वसुदेव ज्यों हीं उसके कन्धेपर गिरे त्यों हीं वह विद्या सिद्ध हो गयी। यह देख कर उस विद्याधरने कहा :—"हे महात्मन्! आप मेरी विद्यासिद्धिमें कारणरूप हुए हैं, इसलिये कहिये, मैं अब आपकी क्या सेवा करूँ? आपको क्या दूँ?"

कुमारने कहा :—हे विद्याधर! यदि तुम वास्तवमें प्रसन्न हो और मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो, मुझे आकाश-गामिनी विद्या दो। उसकी मुझे बड़ी जरूरत है।

विद्याधर "तथास्तु" कह, अपने वासस्थानको चला गया। पश्चात् वसुदेव कनखल पुरके द्वारके निकट साधना कर उस विद्याको सिद्ध करने लगे। उसी समय कहींसे राजा

विद्युद्वेगकी मदनवेगा नामक पुत्री वहाँपर आ पहुँची। वह वसुदेवको देखतेही उनपर अनुरक्त हो गयी और उन्हें वैताढ्य पर्वत पर उठा ले गयी। वहाँपर वह उन्हें पुष्पशयन नामक उद्यानमें छोड़कर स्वयं अमृतधारा नामक नगरमें चली गयी। दूसरे दिन, सुवह दधिवेग, दण्डवेग और चण्डवेग (जिसने वसुदेवको आकाश-गामिनी विद्या दी थी) नामक उसके तीनों भाई वसु-देवके पास आये और उन्हें सम्मान पूर्वक अपने नगरमें ले जाकर मदनवेगाके साथ उनका विवाह कर दिया। इसके बाद वसुदेव बहुत दिनोंतक उसके साथ मौज करते रहे। इसी बीचमें वसुदेवको प्रसन्न कर मदनवेगाने एक वर मांगा जो उन्होंने उसे देना स्वीकार कर लिया।

एकदिन दधिमुखने वसुदेवके पास आकर कहा :—"दिवस्तिलक नामक नगरमें त्रिशिखर नामक राजा राज्य करता है। उसके सूर्पक नामक एक पुत्र है। उसके साथ व्याह करनेके लिये उसने हमारे पिताके निकट मदनवेगाकी मँगनी की, परन्तु हमारे पिताजीने इसके लिये इन्कार कर दिया। ऐसा करनेका कारण यह

था कि मदनवेगाके व्याहके सम्बन्धमें एक चारण मुनिने पिताजी को बतलाया था कि मदनवेगा का विवाह हरिवंशोत्पन्न वसुदेव कुमारके साथ होगा। वे विद्याकी साधना करते हुए चण्डवेगके कन्धेपर रात्रिके समय गिरेंगे और उनके गिरते ही चण्डवेगकी विद्या सिद्ध हो जायगी। इसलिये पिताजीने उसकी बातपर ध्यान न दिया। किन्तु इससे त्रिशिखर राजा रुष्ट हो गया और हमारे नगरपर आक्रमण कर हमारे पिताजीको कैद कर ले गया है। अतएव निवेदन है, कि आपने हमारी बहिन मदनवेगाको जो वर देना स्वीकार किया है। उसके अनुसार आप हमारे पिताजीको छुड़ानेमें सहायता कीजिये। इससे हमलोग सदाके लिये आपके ऋणी बने रहेंगे।"

इतना कह, दधिमुखने कई दिव्य शस्त्र वसुदेवके सामने रखते हुए कहा :—"हमारे वंशके मूल पुरुष नमि थे। उनके पुत्र पुलस्त्य और पुलस्त्यके वंशमें मेघनाद उत्पन्न हुए। मेघनादपर प्रसन्न हो सुभुम चक्रवर्तीने उन्हें दो श्रेणियाँ और ब्राह्म तथा आग्नेयादिक शस्त्र प्रदान किये

थे। इसी वंशमें रावण और विभीषण भी उत्पन्न हुए। मेरे पिता विद्युद्वेग विभीषणके ही वंशज हैं। इसलिये ये सब शस्त्र उसी समयसे हमलोग अपने काममें लाते चले आ रहे हैं। अब मैं इन्हें आपको अर्पण करता हूँ। आशा है, यह आपको बड़ा काम देंगे। हमारे जैसे मन्द भाग्योंके लिये ये बेकार हैं।"

वसुदेवने वे सब शस्त्र सहर्ष स्वीकार कर लिये। किन्तु सिद्ध किये बिना वे सब व्यर्थ थे, इसलिये वसुदेवने साधना कर शीघ्र ही उन्हें सिद्ध कर लिया।

उधर त्रिशिखरको ज्योंही यह मलूम हुआ, कि मदनवेगाका विवाह एक भूचर (मनुष्य) से कर दिया गया है, त्योंही वह आग बबूला हो अमृतधारा नगर पर आक्रमण करनेके लिये आ धमका। इधर वसुदेव तो उससे युद्ध करनेके लिये पहलेसे ही तैयार थे, इसलिये तुण्ड विद्याधरके दिये हुए मायामय सुवर्ण रथ पर बैठ, दधिमुखादिकको साथ ले, वे उसके सामने जा डटे और वीरतापूर्वक उससे युद्ध करने लगे। थोड़ी ही देरमें उन्होंने इन्द्रास्त्र द्वारा उसका शिर धड़से अलग कर

दिया। इसके बाद दिवतिलक नगरमें जाकर उन्होंने अपने श्वसुरको बन्धन मुक्त किया। वहाँसे विजयका डंका बजाते हुए वे अमृतधारा लौट आये। वहाँपर और भी कई दिनोंतक उन्होंने निवास किया। इस बीच मदनवेगाने एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम अनाधृष्टि रक्खा गया।

वसुदेवके रूप और गुणोंपर समस्त विद्याधर और विद्याधरियाँ मुग्ध रहा करती थीं। वे जिधर निकलते, उधर ही लोगोंकी आँखें उनपर गड़ जाया करती थीं। एकबार उन्होंने सिद्धायतनकी यात्रा की, वहाँसे वापस आने पर उन्होंने एकदिन मदनवेगाको अपने पास बुलाया, किन्तु भूलसे मदनवेगाके बदले उनके मुखसे कहीं वेगवतीका नाम निकल गया। इससे मदनवेगा रुष्ट होकर अपने शयनागारमें चली गयी, क्योंकि स्त्रियाँ स्वभावसे ही सौतका नाम सुनना पसन्द नहीं करतीं। खैर, वसुदेवने इसपर कोई ध्यान भी न दिया।

परन्तु त्रिशिखरकी पत्नी सूर्पणखा वसुदेवसे अपने पतिका बदला चुकानेके लिये व्याकुल हो रही थी। इस-

लिये वह इसी समय मदनवेगाका रूप धारण कर वहाँ आ पहुँची और मन्त्रबलसे मकानमें आग लगा कर वसुदेवको हरण कर ले गयी। उसने उन्हें मार डालनेकी इच्छासे आकाशमें खूब ऊँचे ले जाकर वहाँसे उन्हें छोड़ दिया, किन्तु जिसपर भगवानकी दया होती है, उसे कौन मार सकता है? वसुदेव राजगृहके निकट घासकी एक ढेरीपर आ गिरे, जिससे उनका बाल भी बाँका न हुआ।

आसपासके लोगोंके मुँहसे जरासन्धका नाम सुनकर वसुदेव समझ गये कि यह राजगृह है। वे वहाँसे उठकर जुवारियोंके एक अड्डे में गये और वहाँ बातकी बातमें एक करोड़ रुपये जीतकर, उन्होंने वह धन याचकोंको दान दे दिया। उनका यह कार्य देखकर राज-कर्मचारियोंने उन्हें बन्दी बनाकर, राजाके पास ले जानेकी तैयारी की। यह देख, वसुदेवने कहा:-"भाई! मैंने तो कोई अपराध किया ही नहीं है, फिर तुम लोग मुझे क्यों कैद कर रहे हो?"

राज-कर्मचारियोंने कहा:—"एक ज्ञानीने हमारे राजा जरासन्ध को बतलाया है, कि प्रातःकालमें करोड़ रुपये जीतकर जो याचकोंको दान देगा, उसीके पुत्र द्वारा

तुम्हारी मृत्यु होगी। इसीसे हम लोगोंने आपको क़ैद किया है। अब राजाके आदेशानुसार आपको प्राणदण्ड दिया जायगा।"

इतना कह वे लोग वसुदेवको चमड़ेके थैलेमें बन्द-कर एक पर्वत पर ले गये और वहाँसे उन्होंने उन्हें नीचे ढकेल दिया। किन्तु वेगवतीकी धात्रीने उन्हें बीच ही में गोंच कर उनके प्राण बचा लिये। इसके बाद वह उन्हें वेगवतीके पास ले जाने लगी। किन्तु वसुदेव तो चमड़ेके थैलेमें बन्द थे, इसलिये उन्हें यह न मालूम हो सका कि मुझे कौन लिये जा रहा है। वे अपने मनमें कहने लगे कि शायद चारुदत्तकी तरह मुझे भी भारण्डने पकड़ लिया है और वही मुझे कहीं लिये जा रहा है।

थोड़ीही देरमें वह धात्री पर्वत पर जा पहुँची और वहाँपर उसने वसुदेवको जमीन पर रख दिया। इतने ही में वसुदेवने थैलेके एक छिद्रसे देखा तो उन्हें वेगवतीके पैर दिखायी दिये। वह छुरीसे थैलेको काट रही थी। थैला कटते ही वसुदेव उसमेंसे बाहर निकल आये और वेग-वती :—"हे नाथ! हे नाथ!" कहती हुई लताकी

भाँति उनके कंठमें लिपट आयी। वसुदेव भी उसे आलिङ्गन कर नाना प्रकारके, मधुर वचनों द्वारा उसे सान्त्वना देने लगे। जब वह शान्त हुई तब उन्होंने उससे पूछा :—"प्रिये! तुम्हें मेरा पता किस प्रकार मिला?" तुमने मुझे कैसे खोज निकाला?"

वेगवतीने कहा :—"हे नाथ! शैय्यासे उठने पर जब मैंने आपको न देखा तब मैं व्याकुल हो उठी और आपके वियोगसे दुःखित हो, करुण-क्रन्दन करने लगी। इतनेमें प्रज्ञप्ति विद्याने मुझसे आपके हरण और पतनका हाल बतलाया। इसके बाद आपका क्या हुआ, या आप कहाँ गये—यह मुझे किसी तरह मालूम न हो सका। मैंने सोचा कि शायद आप किसी ऋषिके पास गये होंगे और उसीके प्रभावसे प्रज्ञप्ति विद्या आपका हाल बतलानेमें असमर्थ है।

इसके बाद मैं बहुत दिनों तक आपकी राह देखती रही किन्तु जब आप वापस न आये, तब मैं राजाकी आज्ञा लेकर आपको खोजनेके लिये निकल पड़ी। थोड़े ही दिनोंके अन्दर मैंने न जाने कहाँ कहाँकी खाक छान

डाली। अन्तमें मदनवेगाके साथ सिद्धायतनकी यात्रा करते हुए मैंने आपको देखा। और उसी समयसे अदृश्य रहकर मैंने आपका पीछा किया। सिद्धायतनसे लौटने पर जिस समय आपके मुखसे मेरा नाम निकला, उस समय भी मैं वहीं उपस्थित थी। उस समय आपका प्रेम देखकर आपके मुखसे अपना नाम सुनकर मेरा कलेजा बल्लियों उछलने लगा। मैं उस समय अपने आपको भूल गयी। मैं उसी समय अपनेको प्रकट भी कर देती, किन्तु इसी समय सूर्पणखाने मकानमें आग लगाकर आपका हरण कर लिया।

अब उसका पीछा करनेके सिवा मेरे लिये और कोई चारा न था। मैंने मानसवेगका रूप धारणकर उसका पीछा किया, किन्तु वह विद्या और औषधियोंमें मुझसे चढ़ी बढ़ी थी, इसलिये मुझे देख, उसने अपने पीछे न आनेका संकेत किया। अपनी निर्बलताके कारण उसके मुकाबलेमें मुझे दब जाना पड़ा। मैं घबड़ा कर वहाँसे एक चैत्यकी ओर भगी और असावधानीके कारण एक साधुको लांघ गयी। इस पातकसे मेरी विद्याएँ भी नष्ट

हो गयीं और मैं बहुत निराश हो गयी। इतनेहीमें मुझे मेरी धाय माता मिल गयी। मैंने उसे आपकी खोज करनेका काम सौंपा और वही आपको पर्वतसे गिरते समय सोंचकर मेरे पास ले आयी है। हे नाथ! इस समय जहाँ हम लोग खड़े हैं। और जहाँ हमलोगोंका यह पुनर्मिलन हुआ है, वह स्थान पञ्चनद हीमन्त तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इसका नाम तो आपने पहले भी सुना होगा।"

वेगवतीकी यह बातें सुनकर वसुदेवको परम सन्तोष हुआ। उन्होंने वेगवतीको बारंबार गले लगाकर अपने आन्तरिक प्रेमका परिचय दिया। इसके बाद वे दोनों जन एक तापसके आश्रममें गये। और उसकी आज्ञा प्राप्त कर वहीं पर निवास करने लगे।

एकदिन वसुदेव और वेगवती नदीके तटपर बैठे हुए प्रकृतिके अपूर्व दृश्योंका रसास्वादन कर रहे थे। उसी समय उन्हें नदीमें एक कन्या दिखायी दी, जो नागपाससे बँधी हुई थी और उन्हीं की ओर बहती हुई चली आ रही थी। यह देख, वेगवतीने वसुदेवसे उसे

बचानेकी प्रार्थना की, अतः वे उसे बाहर निकाल लाये और बन्धनमुक्त कर उसकी मूर्च्छा दूर की। स्वस्थ होने-पर कन्याने तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वसुदेवसे कहा :—"हे महापुरुष! आपके प्रभावसे मेरी विद्याएँ सिद्ध हुई हैं, इसलिये मैं आपको अनेकानेक धन्यवाद देती हूँ। शायद आप मेरा परिचय जाननेके लिये उत्सुक होंगे, इसलिये मैं आपको अपना वृत्तान्त सुनाती हूँ, सुनिये—

वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें गगनवल्लभपुर नामक एक नगर था। उसमें नमिवंशोत्पन्न विद्युद्दंष्ट्र नामक एक राजा राज्य करता था। एकबार वह पश्चिम महा विदेहमें गया। वहाँपर एक प्रतिमाधारी मुनिको देखकर उसने अपने विद्याधरोंसे कहा:—"यह मुनि तो बड़ा ही उपद्रवी मालूम होता है, इसलिये इसे वरुण पर्वतपर ले जाकर मार डालो। उसकी यह बात सुनकर विद्याधरोंने उसे बहुत मारा, किन्तु शुक्लध्यानके योगसे उस मुनिको केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। फलतः केवल ज्ञानकी महिमा करनेके लिये धरणेन्द्र वहाँपर उपस्थित हुए। उन्होंने मुनि के विरोधियों पर क्रोध कर उन्हें विद्याभ्रष्ट बना दिया।

अपनी यह अवस्था देखकर सब विद्याधर गिड़-गिड़ाने लगे। उन्होंने दीनतापूर्वक कहा :—"हे स्वामिन्! हम नहीं जानते कि यह कौन हैं? हमने इनपर जो कुछ अत्याचार किया है, वह विद्युदंष्ट्रके आदेशसे ही किया है। आप हमारा यह अपराध क्षमा कीजिये।"

धरणेन्द्रने कहा :—"मैं इन मुनिराजके केवलज्ञानका महोत्सव करने आया हूँ। तुम लोगोंने बड़ा ही बुरा काम किया है। वास्तवमें तुम बड़े पापी हो—बड़े अज्ञानी हो। मैंने तुम्हें जो दण्ड दिया है, वह सर्वथा उचित ही है, किन्तु तुम्हारी विनय-अनुनय सुनकर मुझे फिर तुम पर दया आती है। खैर, तुम्हारी विद्याएँ फिर सिद्ध हो सकेंगी, किन्तु इसके लिये तुम्हें बड़ी चेष्टा करनी पड़ेगी। साथही यदि तुमलोग भूलकर भी कभी तीर्थंकर, साधु और श्रावकोंसे द्वेष करोगे, तो क्षणमात्रमें तुम्हारी विद्याएँ नष्ट हो जायँगी। पापी विद्युदंष्ट्रका अपराध तो बड़ा ही भयंकर और अक्षम्य है। उसे रोहिणी आदि विद्याएँ किसी भी अवस्थामें सिद्ध न होंगी।

उसके वंशवालोंको भी इन विद्याओंसे वंचित रहना पड़ेगा। हाँ, यदि उन्हें किसी साधु या महापुरुषके दर्शन हो जायँगे, तो उसके प्रभावसे यह अभिशाप नष्ट हो जायगा और उस अवस्थामें वे इन विद्याओंको प्राप्त कर सकेंगे।"

इतना कह धरणेन्द्र अपने वासस्थानको चले गये। विद्युदंष्ट्रके वंशमें आगे चलकर केतुमती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका व्याह पुंडरीक वासुदेवके साथ हुआ। उसने विद्याएँ सिद्ध करनेके लिये बड़ी चेष्टा की, किन्तु धरणेन्द्रके अभिशापसे कोई फल न हुआ। उसी वंशमें मेरा जन्म हुआ और मैंने भी विद्याएँ सिद्ध करने के लिये बड़ा उद्योग किया। किन्तु यदि सौभाग्य वश आपके दर्शन न मिलते, तो मेरा भी वह उद्योग कदापि सफल न होता। मेरा नाम बालचन्द्रा है। आपकी ही कृपासे मेरी विद्या सिद्ध हुई है, इसलिये मैं आपसे व्याह-कर सदाके लिये आपकी दासी बनना चाहती हूँ। इसके अलावा आप मुझसे जो माँगें, वह भी मैं देनेके लिये तैयार हूँ।"

यह सुनकर वसुदेवने कहा :—"हे सुन्दरि ! क्या तुम मुझे वेगवती विद्या दे सकती हो ? मुझे उसकी आवश्यकता है।"

बालचन्द्राने सहर्ष वह विद्या वसुदेवको दे दी। इसके बाद वह गगनवल्लभपुरको चली गयी और वसुदेव अपने वासस्थान-तापस आश्रमको लौट आये। वहाँ आनेपर वसुदेवने दो राजाओंको देखा, जिन्होंने उसी समय व्रत ग्रहण किया था और जो अपने पौरुषकी निन्दा कर रहे थे। उनसे उद्वेगका कारण पूछनेपर उन्होंने वसुदेवसे कहा :—

श्रावस्ती नगरीमें एणीपुत्र नामक एक राजा है, जो बहुत ही पवित्रात्मा है। उसने अपनी पुत्री प्रियंगुमञ्जरी के स्वयंवरके लिये अनेक राजाओंको निमन्त्रित किया था, परन्तु उसकी पुत्रीने उनमेंसे किसीको भी पसन्द न किया। इससे उन राजाओंने रुष्ट होकर युद्ध करना आरम्भ किया परन्तु प्रियंगुमंजरीके पिता एणीपुत्रने अकेले ही सबको पराजित कर दिया। उनके भयसे न जाने कितने राजा भाग गये, न जाने कितने पर्वतोंमें जा

छिपे और न जाने कितने जलमें समा गये। हम दोनों भी वहाँसे भागकर यहाँ चले आये और अपना प्राण बचानेके लिये हमने यह तापस वेश धारण कर लिया है। "हे महापुरुष! हमें अपनी इस कायरताके लिये बड़ा ही अफसोस हो रहा है।"

यह सुनकर वसुदेवने पहले तो उन्हें सान्त्वना दी और बाद को जब वे शान्त हुए तब उन्हें जैन धर्मका उपदेश दिया। इससे उन्होंने जैनधर्मकी दीक्षा ले ली। इसके बाद वसुदेव श्रावस्ती नगरमें गये। वहाँपर एक उद्यानमें उन्होंने एक ऐसा देवमन्दिर देखा, जिसके तीन दरवाजे थे, मुख्य द्वारमें बत्तीस ताले जड़े हुए थे, इसलिये वे दूसरे द्वारसे प्रवेश कर उसके अन्दर पहुँचे। वहाँपर देवगृहमें उन्होंने तीन मूर्तियाँ देखीं। जिनमें से एक किसी ऋषिकी, एक किसी गृहस्थकी और एक तीन पैरके भैंसे की थी। इन मूर्तियोंको देखकर उन्होंने एक ब्राह्मणसे इसके सम्बन्धमें पूछताछ की। उसने कहा :—

यहाँ पर जितशत्रु नामक एक राजा थे, जिनके मृगध्वज नामक एक पुत्र था। उन्हींके जमानेमें यहाँ

पर कामदेव नामक एक वणिक भी रहता था। वह एक बार अपनी पशुशालामें गया। वहाँपर दण्डक नामक गोपालने एक भैंसको दिखलाते हुए उससे कहा :—"अब तक इस भैंसके पाँच बच्चोंको मैं मार चुका हूँ। यह इसका छठां बच्चा है। यह देखनेमें बहुत ही मनोहर है। यह जन्मते ही भयसे काँपने लगा और दीनतापूर्वक मेरे पैरों पर गिर पड़ा। इससे मुझे इस पर दया आ गयी और मैंने इसे जीता छोड़ दिया। अब आप भी इसे अभयदान दीजिये। मालूम होता है कि यह कोई जातिस्मरण ज्ञान वाला जीव है।"

यह सुनकर कामदेव उस महिषको श्रावस्तीमें ले गया और वहाँपर राजासे भी प्रार्थना कर उसने उसे अभयदान दिलाया। तबसे वह महिष निर्भय होकर नगरमें विचरण करने लगा। एकदिन राजकुमार मृगध्वजने उसका एक पैर काट डाला। राजाको यह हाल मालूम होनेपर वे सख्त नाराज हुए और उन्होंने कुमार को बहुत कुछ भला-बुरा कहा। इससे कुमारको वैराग्य सा आ गया और उसने उसीदिन दीक्षा ले ली। इसके

अठारहवें दिन उस महिषकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात बाइसवें दिन मृगध्वजको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस अवसर पर अनेक सुर, असुर, विद्याधर और राजाओंने उनकी सेवामें उपस्थित हो उन्हें वन्दन किया और उन्होंने सबको धर्मोपदेश दिया। उपदेश समाप्त होनेपर राजा जितशत्रुने पूछा :—"हे प्रभो! उस महिषके साथ आपका कौन ऐसा वैर था, जिससे आपने उसका पैर काट डाला था?"

केवलीने इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा :—"एक समय इस देशमें अश्वग्रीव नामक एक अर्ध चक्रवर्ती राजा था। उसके मन्त्रीका नाम हरिश्मश्रु था। वह नास्तिक था, इसलिये सदा धर्मकी निन्दा किया करता था और राजा आस्तिक था, इसलिये वह सदा धार्मिक कार्यों का आयोजन किया करता था। इस प्रकारके विरोधी कार्यों से उन दोनोंका विरोध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। अन्तमें वे दोनों त्रिपृष्ठ और अचल द्वारा मारे गये और सातवें नरकके अधिकारी हुए। वहाँसे निकलकर वे दोनों न जाने कितनी योनियोंमें भटकते रहे।

इसे एक परिव्राजकने वश कर लिया था, इसलिये राजाने उसे मरवा डाला। किन्तु उसके वशीकरणका प्रभाव इसपर इतना अधिक पड़ा कि यह अबतक उसकी हड्डियाँ धारण किये रहती है।"

यह सुनकर वसुदेवने अपने मन्त्रबलसे उसके वशीकरणका प्रभाव नष्ट कर दिया। इससे वह फिर अपने पति राजा जितशत्रुके पास चली गयी। राजा जितशत्रुने इस उपकारके बदलेमें वसुदेवके साथ अपनी केतुमती नामक बहिनका विवाह कर दिया। वसुदेव वहीं ठहर गये और उसका आतिथ्य ग्रहण करने लगे।

धीरे-धीरे यह समाचार राजा जरासन्धके कानों तक जा पहुँचा। उसने डिम्भ नामक द्वारपालको राजा जितशत्रुके पास भेजकर वसुदेवको बुला भेजा। डिम्भ सवारीके लिये एक रथ भी लाया था। वसुदेव उसीमें बैठ उसके साथ राजगृह नगरमें गये। परन्तु वहाँ पहुँचते ही राजकर्मचारियोंने उन्हें कैद कर लिया। इस अकारण दण्डका कारण पूछने पर उन्होंने बतलाया कि एक ज्ञानीने जरासन्धसे कहा है कि जो नन्दिषेणाको वशीकरणके

प्रभावसे मुक्त करेगा, उसीके पुत्र द्वारा जरासन्धकी मृत्यु होगी। इसलिये हमलोगोंने आपको कैद किया है।"

इतना कह वे लोग वसुदेवको वध-स्थानमें ले गये। वहाँपर वधिक पहलेसे ही तैयार बैठे थे। ज्यों ही वे उन्हें मारनेको उठे त्योंही भगीरथी नामक एक धात्री वहाँ आयी और वसुदेवको उनके हाथोंसे छीनकर आकाशमार्ग द्वारा उन्हें गन्धसमृद्धपुर नामक नगरमें उठा ले गयी। बात यह हुई कि वहाँके राजा गन्धार-पिङ्गलके प्रभावती नामक एक कन्या थी। किसी ज्ञानीसे पूछने पर उसे मालूम हुआ कि उसका विवाह वसुदेवके साथ होगा। इसलिये उन्होंने भगीरथीको उन्हें ले आने के लिये भेजा था। वह ठीक उसी समय राजगृहमें पहुँची, जिस समय वधिकगण वसुदेवको मारनेकी तैयारी कर रहे थे। वसुदेवको उनके हाथोंसे छीन लेने पर वे सब अवाक् बन गये और अपनासा मुँह लेकर अपने-अपने घर चले गये। उधर गन्धपिङ्गलने वसुदेवके साथ प्रभावतीका विवाह कर दिया, इसलिये वे वहीं सुखपूर्वक दिन बिताने लगे।

इस प्रकार सुकोशला तथा अनेक विद्याधर और भूचर राजाओंकी कन्याओंसे विवाह कर वसुदेव अब सुकोशलाके घरमें रहने लगे और वहींपर आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

सातवाँ परिच्छेद

कनकवतीसे वसुदेवका ब्याह

इसी भरत-क्षेत्रमें विद्याधरोंके भी नगरोंको लज्जित करनेवाला पेढालपुर नामक एक नगर था। वहाँपर महा-ऋद्धिवान और ऐश्वर्यमें इन्द्रके समान हरिश्चन्द्र नामक राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानीका नाम लक्ष्मी-वती था। वह जैसी गुणवती थी, वैसी ही रूपवती और पति-परायणा भी थी। राजा हरिश्चन्द्रको वह प्राणके समान प्रिय थी।

कुछ दिनके बाद रानीने एक सुन्दर पुत्रीको जन्म दिया। वह रूपमें साक्षात् लक्ष्मीके समान थी, इसलिये उसके माता-पिता उसे देखकर बहुत ही आनन्दित हुए। उसके पूर्वजन्मके पति कुबेरने उस समय प्रसन्नतापूर्वक सुवर्ण-की वृष्टि की, इसलिये उसका नाम कनकवती रक्खा गया। उसके लालन-पालनके लिये कई धात्रियाँ नियुक्त कर दी गयीं। जब कनकवती धीरे-धीरे बड़ी हुई तब राजाने शीघ्र ही उसकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया। उसकी बुद्धि बहुत ही तीव्र थी, इसलिये उसने थोड़े ही दिनोंमें अनेक विद्या-कला तथा व्याकरण, न्याय, छन्द, अलंकार और काव्यादिक शास्त्रोंमें निपुणता प्राप्त कर ली। वाणीमें तो वह मानो साक्षात् सरस्वती ही थी। गायन-वादन तथा अन्यान्य कलाओंमें भी वह अपना सानी न रखती थी।

कनकवतीने क्रमशः किशोरावस्था अतिक्रमण कर युवावस्थामें पदार्पण किया। राजा हरिश्चन्द्रको अब उसके ब्याहकीफिक्र हुई। इसलिये उन्होंने उसके अनुरूप वरकी बहुत खोज कर ली। किन्तु वे जैसा चाहते थे, वैसा वर

कहीं भी दिखायी न दिया। अन्तमें उन्होंने स्वयंवर करना स्थिर किया। उनके आदेशसे शीघ्र ही एक सुशोभित और विशाल सभामण्डप तैयार किया गया और स्वयंवरमें भाग लेनेके लिये भिन्न-भिन्न देशके राजाओंको निमन्त्रण-पत्र भी दे दिये गये।

एक दिन कनकवती अपने कमरेमें आरामसे बैठी हुई थी। इतने ही में कहींसे एक राजहँस आकर उसकी खिड़कीमें बैठ गया। उसका वर्ण कपूरके समान उज्ज्वल और चंचु, चरण तथा लोचन अशोक वृक्षके नूतन पत्रोंकी भाँति अरुण थे। विधाताने मानो श्वेत परमाणुओंका सार संग्रह कर उसके पंखोंकी रचना की थी। उसके कंठमें सोनेके घुंघरू बंधे हुए थे और उसका स्वर बहुत ही मधुर था। वह जिस समय ठुमक-ठुमक कर चलता था, उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो वह नृत्य कर रहा है।

राजकुमारी कनकवती इस मनोहर हँसको देखकर अपने मनमें कहने लगी:—"मालूम होता है कि यह किसीका पलाऊ हँस है। यदि ऐसा न होता तो इसके

कंठमें यह घुँघरू क्यों बंधे होते ? ओह ! कितना सुन्दर पक्षी है ! मुझे तो यह बहुत ही प्यारा मालूम होता है। मैं इसे पकड़े बिना न रहूँगी। यह चाहे जिसका हो, किन्तु मैं अब इसे अपने ही पास रक्खूँगी।"

इस प्रकार विचार कर उस हँस-गामिनी कन्याने गवाक्षमें बैठे हुए उस हँसको पकड़ लिया। इसके बाद वह अपना कमल समान कोमल हाथ उसके बदन पर फिरा-फिरा कर उसे बड़े प्रेमसे दुलारने लगी। इतनेही में उसकी एक सखी आ पहुँची। उसने उससे कहा :—"देखो सखी ! मैंने यह कैसा बढ़िया हँस पकड़ा है ! तुम शीघ्र ही इसके लिये सोनेका एक पींजड़ा ले आओ। मैं उसमें इसे बन्द कर दूँगी, वर्ना यह जैसे दूसरे स्थानसे उड़कर यहाँ आया है, वैसेही यहाँसे किसी दूसरे स्थानको उड़ जायगा।"

कनकवतीकी यह बात सुनकर उसकी सखी पींजड़ा लेने चली गयी। इधर उस हँसने मनुष्यकी भाषामें बोलते हुए राजकुमारीसे कहा :—"हे राजपुत्री ! तुम बड़ी समझदार हो, इसलिये मैं तुमसे तुम्हारे हितकी एक

बात कहने आया हूँ। मुझे पींजड़ेमें बन्द करनेकी जरूरत नहीं। तुम भी मुझे छोड़ दो। मैं तुमसे बातचीत किये बिना यहाँसे कदापि न जाऊँगा।"

हँसकी यह बातें सुनकर कनकवती चकित हो गयी। उसने कभी भी किसी पक्षीको इस तरह मनुष्यकी बोलीमें बातें करते देखा सुना न था। इसलिये उसने उसे छोड़ते हुए कहा :—"हे हँस! तुम वास्तवमें एक रत्न हो। लो, मैं छोड़े देती हूँ। तुम्हें जो कहना हो, वह सहप कहो।"

हँसने कहा :—"हे राजकुमारी! सुनो, वैताढ्य पर्वतपर कोशला नामक एक नगरी है। उसमें कोशल नामक एक विद्याधर राज करता है। उसके देवी समान सुकोशला नामक एक पुत्री है। उसका पति परम गुणवान और युवा है। रूपमें तो मानो उसके जोड़ेका दूसरा पुरुष विधाताने बनाया ही नहीं। पुरुषोंमें जिस प्रकार वह सुन्दर है, उसी प्रकार तुम स्त्रियोंमें सुन्दरी हो। तुम दोनोंको देखकर मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो एक सूत्रमें बान्धने के लिये ही विधाताने इस

जोड़ीकी सृष्टि की है। मैंने यह सोचकर कि तुम दोनों का विवाह मणिकाञ्चनका योग हो सकता है इसीलिये यह चेष्टा आरम्भ की है। आशा है कि इससे तुम अप्रसन्न न होगी।

तुम्हें देखनेके बाद कुमारके सामने मैंने तुम्हारे रूप का वर्णन किया था। इससे उनके हृदयमें भी तुम्हारे प्रति प्रेमभाव उत्पन्न हो गया है। वे तुम्हारे स्वयंवरमें अवश्यही पधारेंगे। आकाशमें अगणित नक्षत्र होनेपर भी जिस प्रकार चन्द्रको पहचाननेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती, उसी प्रकार उनको पहचाननेमें भी तुम्हें कोई कठिनाई न पड़ेगी। अपने रूप, यौवन और अपनी तेजस्विताके कारण, हजार राजकुमारोंके बीचमें होनेपर भी वे सबसे पहले तुम्हारा ध्यान आकर्षित कर लेंगे। हे राजकुमारी! यदि तुम उनसे विवाह करोगी, अपनी जयमाल उनके गलेमें डालोगी, तो अवश्य ही तुम्हारा जीवन सुखमय बन जायगा। तुम अपनेको धन्य समझने लगोगी।"

इतना कह उस हँसने राजकुमारीसे विदा माँगी।

किन्तु राजकुमारी उसकी बातें सुनकर मन्त्र-मुग्धकी भाँति एक दृष्टिसे उसकी ओर देख रही थी। उसे मानो अपने तन-मनकी भी सुधि न थी। जब हँस वहाँसे उड़ने लगा, तब उसे होश आया। वह अपने दोनों हाथ फैलाकर उसकी ओर इस प्रकार देखने लगी, मानो उसे बुला रही हो। हँसने आकाशसे उसके उन फैलाये हुए हाथोंमें एक चित्र डालते हुए कहा :—"हे भद्रे! यह उसी युवकका चित्र है, जिसके रूपका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने किया है। चित्र चित्र ही है। यह मेरी कृति है। इसमें दोष हो सकता है, किन्तु कुमारमें कोई दोष नहीं है। इस चित्रको तुम अपने पास रखना। इससे स्वयंवरके समय कुमारको पहचानमें तुम्हें कठिनाई न होगी।"

राजकुमारी उस चित्रको देखकर प्रसन्न हो उठी। उसने हँसकी ओर पुकार कर कहा :—"हे भद्र! क्या तुम यह न बतलाओगे कि वास्तवमें तुम कौन हो? मुझे तो तुम्हारा यह रूप कृत्रिम मालूम पड़ता है!"

कुमारीकी यह बात सुनकर हँस रूपधारी उस विद्याधरने अपना असली रूप प्रकट करते हुए कहा :—"हे

कुमारी !, मैं चन्द्रातप नामक विद्याधर हूँ। तुम्हारी और तुम्हारे भावी पतिकी सेवा करने के लिये ही मैंने यह रूप धारण किया था। हाँ, तुमसे मैं एक बात और बतला देना चाहता हूँ कि स्वयंवरके दिन तुम्हारे पति-देव शायद दूसरे के दूत बनकर यहाँ आयेंगे। इसलिये तुम उन्हें पहचाननेमें भूल न करना।"

इतना कह, कनकवतीको आशीर्वाद दे, वह विद्याधर वहाँसे चला गया। उसके चले जाने पर कनकवती उस चित्रको बारंबार देखने लगी। वह अपने मनमें कहने लगी :—"जिसका चित्र इतना सुन्दर है तो वह पुरुष न जाने कितना सुन्दर होगा।" वह तनमनसे उस पर अनुरक्त हो उसे कभी कंठ, कभी शिर और कभी हृदयसे लगाने लगी। उसके नेत्र मानो उसके दर्शन से तृप्त ही न होते थे। वह मन-ही-मन उसीको पतिरूपमें पानेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी।

उधर चन्द्रातप विद्याधरको यह धुन लगी थी, कि कनकवतीका विवाह वसुदेवके ही साथ होना चाहिये। इसलिये वह कनकवतीके हृदयमें वसुदेवका अनुराग उत्पन्न

ओरसे उनपर चमर ढाल रही थीं, दूसरी ओर बन्दीजनों का दल उनका गुणकीर्तन करता हुआ उनके आगे-आगे चल रहा था। कुबेर हँस पर सवार थे और उनके पीछे-पीछे अन्यान्य देवताओंका दल चलता था।

जिस समय कुबेर अपने दलबलके साथ सभा-मण्डपमें पहुँचे, उस समय सारा मण्डप जग मगा उठा। देव और देवाङ्गनाओंसे घिरे हुए कुबेरकी उपस्थितिके कारण वहाँपर साक्षात् स्वर्गका दृश्य उपस्थित हो गया।

कुबेर और वसुदेवके आसन ग्रहण करने पर अन्यान्य राजा तथा विद्याधरोंने भी अपना-अपना आसन ग्रहण किया। इसी समय कुबेरने वसुदेवको कुबेर-कान्ता नामक एक अंगूठी पहननेको दी। वह अंगूठी अर्जुन सुवर्णकी बनी हुई थी और उसपर कुबेरका नाम लिखा हुआ था। उसे कनिष्ठिका उंगलीमें पहनते ही वसुदेव भी कुबेरके समान दिखायी देने लगे। यह एक बड़े ही आश्चर्यका विषय बन गया। सब लोग कहने लगे—"अहो! कुबेर यहाँपर दो रूप धारण कर पधारे हैं।" चारों ओर बड़ी देर तक इसीकी चर्चा होती रही।

यथासमय दिव्य वस्त्रालङ्कारोंसे सज्जित, हाथमें पुष्पोंकी जयमाल लिये हुए, सखियोंसे घिरी हुई कनकवतीने राज हँसिनीकी भाँति मन्दगतिसे स्वयंवरके मण्डपमें पदार्पण किया। पदार्पण करते ही चारों ओरसे सौ—सौ दृष्टियाँ एक साथ ही उस पर जा पड़ी। एकबार कनकवतीने भी आँख उठाकर चारों ओर देखा। उसकी दृष्टि उन राजा महाराजा और राजकुमारोंके समूहमें वसुदेव कुमारको खोज रही थी। उसने उन्हें चित्र और दूतके वेशमें देखा था, इसलिये वह उन्हें भली भाँति पहचानती थी, किन्तु आज स्वयंवर मण्डपमें वे उसे दिखायी न देते थे। अतः उसने चञ्चल नेत्रों द्वारा वह स्थान दो तीन बार देख डाला, किन्तु कहीं भी उनका पता न चला। इससे उसका मुख-कमल मुरझा गया और उसके चेहरे पर विषादकी श्याम छाया स्पष्ट रूपसे दिखायी देने लगी। वह इस प्रकार उदास हो गयी, मानो किसीने उसका सर्वस्व छीन लिया हो। मण्डपमें अन्यान्य राजे महाराजे पर्याप्त संख्यामें उपस्थित थे, किन्तु उसने उनकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। इससे चिन्ता उत्पन्न हो

गयी, कि उनके वेशविन्यासमें कहीं कोई त्रुटि तो नहीं है, फलतः वे बारंबार अपने वस्त्राभूषणोंकी ओर देखने लगे, किन्तु कनकवती टससे मस न हुई। उसकी यह अवस्था देखकर एक सखीने कहा :—"हे सुन्दरि! यही उपयुक्त समय है। इन राजाओंमें से जिसे तुम पसन्द करती हो, उसे अब जयमाल पहनानेमें विलम्ब मत करो!"

कनकवतीने कुण्ठित होकर कहा :—"हे सखी! मैं जयमाल किसे पहनाऊँ? मैंने जिसे पसन्द किया था, अपना हृदय-हार बनाना स्थिर किया था, वह खोजने पर भी इस समय कहीं दिखलायी नहीं देता।"

यह कहते-कहते कनकवतीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह अपने मनमें कहने लगी :—"हा दैव! अब मैं क्या करूं और कहाँ जाऊं? यदि मुझे वसुदेव कुमार न मिलेंगे, तो मेरी क्या अवस्था होगी? हा दैव! वे कहाँ चले गये?"

इसी समय कनकवतीकी दृष्टि कुबेर पर जा पड़ी। वे उसे देखकर मुस्कुराने लगे। उनकी उस मुस्कुराहटमें

व्यंग छिपा हुआ था। इसलिये चतुरा कनकवती तुरन्त समझ गयी, कि उसकी इस विडम्बनामें अवश्य कुबेरका कुछ हाथ है। इसलिये वह उनके सामने जा खड़ी हुई और हाथ जोड़कर दीनतापूर्वक कहने लगी :—"हे देव! पूर्व-जन्मकी पत्नी समझ कर आप मुझसे दिल्लगी न कीजिये। मुझे सन्देह होता है कि मेरे प्राणनाथको आपहीने कहीं छिपा दिया है। हे भगवन्! क्या आप मेरा यह सन्देह दूर न करेंगे?"

कनकवतीकी यह प्रार्थना सुनकर कुबेर हँस पड़े। उन्होंने वसुदेवकी ओर देखकर कहा :—"हे महाभाग! मेरी दी हुई उस अंगुठीको अब अपनी उंगलीसे निकाल दीजिये।"

कुबेरकी यह आज्ञा सुनकर वसुदेवने उंगलीसे वह अंगूठी निकाल दी। निकालते ही वे पुनः अपने स्वाभाविक रूपमें दिखायी देने लगे। कनकवती उन्हें देखते ही आनन्दसे पुलकित हो उठी। उसने तुरन्त अपनी जयमाल उनके गलेमें डाल दी। कुबेर भी इस मणिकाञ्चन योगसे प्रसन्न हो उठे। उनकी आज्ञासे देवताओंने आकाशमें

कोंने कूप, तालाब और नदियोंका जल पी-पीकर उन्हें खाली कर डाला, सेनाके चलनेसे इतनी धूल उड़ती थी, कि उसके कारण आकाशमें दूसरी भूमि सी प्रतीत होने लगती थी। राजा निषध अपने नगर पहुँचनेके लिये इतने अधीर हो रहे थे, कि वे किसी भी विघ्न-बाधाकी परवाह न कर तूफानकी तरह निश्चित मार्ग पार करनेके बाद ही विश्रामका नाम लेते थे।

एकदिन निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचनेके पहलेही मार्गमें सूर्यास्त हो गया। अन्धकारमें जल, स्थल, गढ़ा या टीला कुछ भी दिखायी न देता था। ऐसी अवस्थामें सेनाके लिये आगे बढ़ना बहुतही कठिन हो गया। आँखे होने पर भी सब लोग अन्धेकी तरह इधर-उधर भटकने और ठोकरें खाने लगे। सेनाकी यह अवस्था देखकर नलने गोदमें लेटी हुई दमयन्तीसे कहा :—"प्रिये! इस समय हमारी सेना अन्धकारके कारण विचलित हो रही है। तुम्हें इस समय अपने तिलक-भास्करको प्रकाशित कर सेनाको आगे बढ़नेमें सहायता करनी चाहिये।"

पतिदेवके यह वचन सुनकर दमयन्तीने जल लेकर

अपना ललाट धो दिया। फलतः उसका तिलक अन्धकारमें सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो उठा और उसी प्रकाशमें समस्त सेना उस दिन का रास्ता तय कर निर्दिष्ट स्थानमें जा पहुँची।

दूसरे दिन मार्गमें नलको एक प्रतिमाधारी मुनिराज दिखायी दिये। उनके चारों ओर भ्रमर इस तरह चक्कर काट रहे थे। जिस तरह मधुर रस और परागके फेरमें वे कमलके आसपास चक्कर काटा करते हैं। उन्हें देखते ही नलकुमार अपने पिताके पास दौड़ गये और उनसे कहने लगे :—"पिताजी! क्या आपने इन मुनिराजको नहीं देखा? चलिये, इन्हें वन्दन कीजिये और राह चलते इनके दर्शनका पुण्य लूटिये। देखिये, यह मुनिराज कायोत्सर्ग कर रहे हैं। किसी मदोन्मत्त हाथीने खुजली मिटानेके लिये अपना गण्डस्थल इनके शरीरसे रगड़ दिया है। मालूम होता है कि वैसा करते समय उसका मदजल मुनिराजके शरीरमें लग गया है और उसीकी सुगन्धसे यह मधु लोलुप भौंरोंका दल यहाँ खिंच आया है। इन भौंरोंने मुनिराजको न जाने कितना

काटा है, किन्तु फिर भी वे परिशह सहन कर रहे हैं। हाथी द्वारा उत्पीड़ित होनेपर भी अपने स्थान या ध्यानसे न डिगनेवाले मुनिराजका अनायास दर्शन होना वास्तवमें बड़े सौभाग्यका विषय है।"

पुत्रके यह वचन सुनकर निषधराजको भी उस मुनिराज पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे अपने पुत्र और परिवारके साथ उनके पास गये और उनको वन्दन कर कुछ देरतक उनकी सेवा की। इसके बाद उनकी रक्षाका प्रबन्ध कर वे वहाँसे भी आगे बढ़े और शीघ्र ही कोशला नगरीके समीप जा पहुँचे। नलने दमयन्तीको उसे दिखाते हुए कहा :—"प्रिये! देखो, यही जिन चैत्योंसे विभूषित हमारी नगरी है।"

नलके यह कहनेपर दमयन्तीने उन विशाल जिन चत्योंको देखा। उनके बाह्य दर्शनसे ही उसका हृदय मत्त मयूरकी भाँति थिरक उठा। उसने उत्साहित होकर कहा :—"मैं धन्य हूँ जो मुझे आप जैसे पति मिले, जो इस रमणीय नगरीके स्वामी हैं। मैं इन चैत्योंकी नित्य वन्दना किया करूँगी।"

इधर निषधराजके आगमनका समाचार पहलेही नगरमें फैल गया था, इसलिये जनताने उनके स्वागतकी पूरी तैयारी कर रक्खी थी। नगरके सभी रास्ते ध्वजा और पताकाओंसे सजा दिये गये थे। घर-घर मंगलाचार हो रहा था। निषधराजने अच्छा दिन देखकर अपने दोनों पुत्र और पुत्रवधूके साथ नगर प्रवेश किया। निषधराजने यहाँपर भी अपनी ओरसे नलका विवाहोत्सव मनाया और दीन तथा आश्रितोंको दानादि देकर सन्तुष्ट किया।

इसके बाद नल और दमयन्तीने बहुत दिनोंतक अपना समय आनन्दपूर्वक व्यतीत किया। अन्तमें राजा निषधको वैराग्य उत्पन्न हुआ, इसलिये उन्होंने नलको अपने सिंहासनपर बैठा कर और कुबेरको युवराज बनाकर दीक्षा ले ली। नलकुमार परम न्यायी और नीतिज्ञ थे, इसलिये उन्होंने इस गुरूतर भारको आसानीसे उठा लिया। वे सन्तानकी ही भाँति प्रजाका पालन करते थे और उसके दुःखसे दुःखी तथा सुखसे सुखी रहते थे। अपने इस गुणके कारण वे शीघ्रही जनताके प्रेम-भाजन

विपत्तिका शिकार होना पड़ता है, तो कभी किसी विपत्तिका। जिस स्थानपर रथ खड़ा किया था, उस स्थानपर आकर नलने देखा, तो रथका कहीं पता भी न था। केवल सारथी दुःखित भावसे एक ओर खड़ा था। उसने नलको बतलाया, कि जिस समय आप भीलोंको खदेड़ने गये थे, उसी समय भीलोंका एक दूसरा दल यहाँ आया और उसने वह रथ मुझसे छीन लिया। यह सुनकर नल अवाक् हो गये। कहने सुननेकी कोई बात भी न थी। दैव दुर्बलका घातक हुआ ही करता है। अब वे सारथीको कोशला नगरीकी ओर बिदा कर चुपचाप वहाँसे चल पड़े और दमयन्तीका हाथ पकड़कर उस भयंकर जंगलमें भटकने लगे।

बेचारी दमयन्ती पर ऐसी मुसीबत कभी न पड़ी थी। उसके कोमल पैर वनकी कठिन भूमिमें विचरण करनेसे क्षत विक्षत हो गये। कहीं उसके पैरोंमें काँटे चुभ जाते, तो कहीं कुशके मूल। उसके पैरोंसे रक्तकी धारा बहने लगी। वह जिधर पैर रखती उधरकी ही

भूमि रक्तरञ्जित बन जाती। इस प्रकार दमयन्तीने अपने रक्तसे उस वन-भूमिको मानो इन्द्रवधूटियोंसे पूर्ण बना दिया। नलने उसे आराम पहुंचानेके लिये अपनी धोती फाड़कर उसके दोनों पैरोंमें पट्टी बाँध दी, किन्तु इससे क्या होता था। जिसने कभी महलके बाहर पैर भी न रक्खा था, उसके लिये इस तरह वनवन भटकना बहुत ही दुष्कर था।

दमयन्ती बारंबार थककर वृक्षोंके नीचे बैठ जाती। नल अपने वस्त्रसे उसका पसीना पोछते और उसे हवा करते। दमयन्ती जब प्यासी होती, तृषाके कारण जब उसका कंठ सूखने लगता, तब नल पलाश पत्तोंका दोना बनाकर किसी सोते या नदीसे उसके लिये जल भर लाते और उससे तृषा निवारण करते। यह सब करते हुए उनका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था, अपनी हृदयेश्वरीकी यह दयनीय दशा देखकर उनकी आँखोंमें आँसू भर आते थे, किन्तु लाचारी थी। यह सब सहन करनेके सिवा और कोई उपाय भी न था।

एकदिन दमयन्तीने पूछा :—"नाथ! अभी यह

जंगल और कितना बाकी है ? अभी इसे पार करनेमें कितने दिन लगेंगे ? मुझे तो ऐसा मालूम होता है, मानों इस जंगलमें ही मेरे जीवनका अन्त आ जायगा।"

नलने कहा :—"प्रिये ! यह जंगल तो सौ योजनका है जिसमेंसे हम लोगोंने शायद ही पाँच योजन अभी पार किये हों। किन्तु विचलित होनेकी जरूरत नहीं। जो मनुष्य विपत्तिकालमें धैर्यसे काम लेता है, वही अन्तमें सुखी होता है।"

इस तरहकी बातें करते हुए दोनों जन जंगलमें चले जा रहे थे। धीरे-धीरे शाम हुई और सूर्य भगवान भी अस्त हो गये। नलने देखा कि अब दमयन्ती बहुत थक गयी है, साथ ही रात्रिके समय जंगलमें आगे बढ़ना ठीक भी नहीं, इसलिये उन्होंने अशोकवृक्षके पत्ते तोड़कर उसके लिये एक शैय्या तैयार कर दी। इसके बाद उन्होंने दमयन्तीसे कहा :—"प्रिये ! अब तुम इस शैय्या पर विश्राम करो। यदि तुम्हें थोड़ी देरके लिये भी निद्रा आ जायगी, तो तुम अपना सारा दुःख भूल जाओगी।

दुःखी मनुष्यको निद्रामें ही थोड़ीसी शान्ति मिल सकती है।"

दमयन्तीने कहा :—"हे देव! मुझे मालूम होता है मानो पश्चिम ओर कोई हिंसक प्राणी छिपा हुआ है। देखिये, गायें भी कान खड़े किये उसी ओरको देख रही हैं। यदि हमलोग यहाँसे कुछ आगे चलकर ठहरें तो बहुत अच्छा हो।"

नलने कहा :—"प्रिये! तुम बहुत ही डरपोक हो, इसलिये ऐसा कहती हो। यहाँसे आगे बढ़ना ठीक नहीं। आगे तपस्वियोंके आश्रम हैं। वे सब मिथ्या दृष्टि हैं। उनके संगसे सम्यक्त्व उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार खटाई पड़नेके कारण दूध अपनी स्वाभाविक गन्ध और स्वादसे रहित बन जाता है। विश्रामके लिये इस समय यही स्थान सबसे अच्छा है। तुम निश्चिन्त होकर सो रहो। यदि तुम्हें भय मालूम होता है, तो मैं अंगरक्षककी भाँति सारी रात पहरा दूँगा।"

पतिदेवके यह वचन सुनकर दमयन्ती निश्चिन्त हो गयी। नलने उसकी शैय्यापर अपना अर्धवस्त्र बिछा

दिया। तदनन्तर दमयन्ती पञ्च परमेष्ठीका स्मरण करती हुई उसी शैय्या पर लेट रही और गहरी थकावटके कारण उसे शीघ्र ही निद्रा आ गयी।

दमयन्तीके सोजानेपर, दैव दुर्विपाकसे नलके हृदयमें एक विचारका उदय हुआ। वे अपने मनमें कहने लगे:— "ससुराल जाकर रहना बहुत ही बुरा है, परले दरजेकी नीचता है। उत्तम पुरुष कदापि ऐसा नहीं करते। मुझे भी यह विचार छोड़ देना चाहिये। वहाँ जाकर रहनेसे मेरा अपमान होगा, मेरी मर्यादा नष्ट हो जायगी। इसलिये वहाँ जाना ठीक नहीं। किन्तु दमयन्ती मेरे इस प्रस्तावसे शायद सहमत न होगी। उसे अपने पिताके यहाँ सुख मिलनेकी आशा है, इसलिये वह तो वहीं चलने पर जोर देगी। वह वहाँपर सुखी भी हो सकती है, चाहे तो वहाँ सहर्ष जा सकती है, मैं उसे रोकना भी नहीं चाहता, किन्तु मैं वहाँ क्यों जाऊँ?"

नल बड़ी चिन्तामें पड़ गये। दमयन्ती उनके साथ थी। वह अपने मायके जाना चाहती थी, किन्तु नलको इसमें अपमान दिखायी देता था, इसीलिये वे असमंजसमें

पड़ गये। दूसरे ही क्षण उनके हृदयमें वह भयङ्कर विचार उत्पन्न हुआ, जिसके कारण उन दोनोंका वह रहा-सहा सुख भी नष्ट हो गया, जो एक दूसरेके साथ रहनेसे उन्हें उस जंगलमें भी प्राप्त होता था। वे कहने लगे:—"यदि अपने हृदयको पत्थर बनाकर मैं दमयन्तीको यहीं छोड़ दूँ, तो फिर मैं जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकता हूँ। दमयन्ती परम सती है। अपने सतीत्वके प्रभावसे सर्वत्र उसकी रक्षा होगी। किसीकी सामर्थ्य नहीं जो उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचा सके। बस, यही विचार उत्तम है। इसीको अब कार्य रूपमें परिणत करना चाहिये।"

इस प्रकार नलने कुछ ही क्षणोंमें दमयन्तीको, उस दमयन्ती को जो उन्हें प्राणसे भी अधिक प्रिय थी, हिंसक प्राणियोंसे भरे हुए जङ्गलमें सोती हुई अवस्थामें छोड़ जाना स्थिर कर लिया। उन्होंने दमयन्तीकी शैय्या पर अपना जो वस्त्र बिछा दिया था, उसे छुरीसे आधा काट लिया। इसके बाद दमयन्तीके वस्त्र पर अपने रुधिर से निम्नलिखित दो श्लोक लिखकर वे आँसू बहाते हुए चुपचाप वहाँसे एक तरफ चल दिये।

अपनी सोती हुई प्रियाको देखते जाते थे।

(पृष्ठ ३०५)

"विदर्भेषु यात्यध्वा, वटाऽलंकृतया दिशा।
कोशलेषु च तद्वाम—स्तयोरेकेन केनचित् ॥१॥
गच्छेः स्वच्छाशये ! वेश्म, पितु र्वा श्वसुरस्य वा।
अहं तु क्वापि न स्थातु—मुत्सहे हे विवेकिनि ! ॥२॥"

अर्थात्:—"जिस दिशामें वटवृक्ष है, उसी दिशामें विदर्भ देश जानेका रास्ता है और उसकी बायीं ओरसे जो रास्ता जाता है, वह कोशल देशकी ओर गया है। हे विवेकिनि ! इन दोमेंसे इच्छानुसार एक रास्तेको पकड़कर तुम पिता या श्वसुरके यहाँ चली जाना। तुम इन दोमेंसे किसी भी एक स्थानमें रह सकती हो, परन्तु मेरी इच्छा तो कहीं भी रहनेकी नहीं होती।"

यह सब कार्रवाई करनेके बाद नल उस स्थानसे तो चल दिये, किन्तु उनको इससे सन्तोष न होता था। वे बारंबार सिंहकी भाँति घूम-घूमकर अपनी सोती हुई प्रियाको देखते जाते थे। जब वे उससे कुछ दूर निकल गये और उसका दिखलाई देना बन्द हो गया, तब उनका हृदय मचल पड़ा। वे अपने मनमें कहने लगे:—"मैंने यह बहुत ही बुरा किया। दमयन्ती मुझपर विश्वासकर

बिम्बका पूजन करती। इसके साथ ही वह तरह-तरहके व्रत, उपवास और तपका भी अनुष्ठान करती। और जब वे पूर्ण होते तब परम श्राविका की भाँति बीज रहित प्रासुक फलोंद्वारा पारणकर उनकी पूर्णाहुति करती।

इस प्रकार दमयन्तीके दिन जपतपमें व्यतीत हो रहे थे। उधर दो-चार दिनके बाद सार्थवाहकको दमयन्तीका स्मरण आया। उसने जब देखा, कि उसका कहीं पता नहीं है, तब उसे बड़ीही चिन्ता हुई और वह वापस लौटकर दमयन्तीकी खोज करने लगा। अन्तमें उस गुफाके अन्दर दमयन्तीसे उसकी भेट हो गयी। जिस समय वह वहाँ पहुँचा उस समय दमयन्ती जिन बिम्बका पूजन कर रही थी। उसे सकुशल देखकर सार्थवाहककी चिन्ता दूर हो गयी और वह उसे प्रणाम कर विनयपूर्वक उसी जगह बैठ गया।

प्रभु पूजा समाप्त होनेपर दमयन्तीने सार्थवाहकका स्वागत किया और बड़े प्रेमसे उसका कुशल समाचार पूछा। इसी समय उनका शब्द सुनकर कुछ तापस भी उस गुफामें जा पहुँचे और वहीं बैठकर उनकी बातें सुनने

लगे। वर्षाके दिन तो थे ही, शीघ्रही बादल घिर आये और मूशलाधार वृष्टि होने लगी। उस गुफामें इतना स्थान न था, कि सब तापसोंका उसमें समावेश हो सके। इसलिये वे सब वर्षाके कारण व्याकुल हो उठे। उन्होंने दमयन्तीसे पूछा :—"इस समय होमलोग कहाँ जायँ और किस प्रकार इस जलसे अपनी रक्षा करें?"

दमयन्तीने उनकी घबड़ाहट देखकर उन्हें सान्त्वना दी और उनके चारों ओर एक रेखा खींचकर कहा :—"यदि मैं सती, परम श्राविका और सरल चित्तवाली होऊँ तो बाहर मूशलाधार वृष्टि होने पर भी इस रेखाके अन्दर एक भी बूँद न गिरे।" दमयन्तीके मुखसे यह वचन निकलते ही उतने स्थानमें इसतरह जलका गिरना बन्द हो गया, मानो किसीने छाता तान दिया हो। उसका यह चमत्कार देखकर सब तापस बड़े विचारमें पड़ गये और अपने मनमें कहने लगे कि निःसन्देह यह कोई देवी है। वर्ना मानुषीमें इतनी शक्ति कहाँ कि वह इस प्रकार पृथ्वीपर जलका गिरना रोक दे। ऐसा सौन्दर्य भी मानुषीमें होना असम्भव ही है। अस्तु।

इसके बाद उस वसन्त सार्थवाहकने पूछा :—"हे देवि ! आप यह किस देवताका पूजन कर रही हैं।"

दमयन्तीने कहा :—"यह तीनों लोकके नाथ अरिहन्त देवका बिम्ब है। यह परमेश्वर हैं और मनवाञ्छित देनेवाले हैं। इन्हींकी आराधनाके कारण मैं यहाँ निर्भय होकर रहती हूँ। इनके प्रभावसे मुझे व्याघ्रादिक हिंसक प्राणी भी हानि नहीं पहुँचा सकते।"

इस प्रकार अरिहन्त भगवानकी महिमाका वर्णन कर दमयन्तीने सार्थवाहकको अहिंसामूलक जैनधर्म कह सुनाया। उसे सुनकर उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया। उन तापसोंने भी उसके उपदेशसे सन्देह रहित जिनधर्म स्वीकार किया और अपने तापस धर्मको त्याग दिया।

इसके बाद वसन्त सार्थवाहकने उसी जगह एक नगर बसाया और वहाँपर शान्तिनाथ भगवानका एक चैत्य बनवाकर उसमें अपना सारा धन लगाया। इसके बाद वह सार्थवाहक समस्त तापस और उस नगरके निवासी लोग आर्हत धर्मकी साधना करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगे। वहाँपर रहनेवाले पाँच सौ

तापसोंको सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ, इसलिये उस नगरका नाम तापसपुर रक्खा।

एकदिन दमयन्तीको रात्रिके समय उस पर्वतके शिखर पर बड़ा प्रकाश दिखायी दिया। साथ ही उसने देखा कि वहाँपर बड़ी धूम मची हुई है और सुर, असुर तथा विद्याधर इधर उधर आ जा रहे हैं। उनके जय जय कारसे समस्त तापस तथा वसन्त सार्थवाहक आदिकी निद्रा भंग हो गयी। पर्वत पर क्या हो रहा है, यह जाननेकी सबको बड़ी इच्छा हुई, इसलिये सब लोग सती दमयन्तीको आगे करके उस पर्वत पर चढ़ गये। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा कि सिंहकेसरी नामक साधुको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है और देवतागण उसीका उत्सव मना रहे हैं।

दमयन्ती तथा उसके समस्त संगी यह देख कर बहुत ही प्रसन्न हुए। दमयन्ती मुनिराजको वन्दन कर उनके चरणोंके निकट बैठ गयी। पश्चात् उसके संगी भी मुनिराजको वन्दन कर यथोचित स्थानमें बैठ गये। इसी समय उस साधुके गुरु यशोभद्रसूरि वहाँ आ पहुँचे। उन्हें यह

लिये यह दुःखितावस्थामें भूमिपर लेट रही है। लेकिन पंक लग जानेपर भी कमलिनी तो सदा कमलिनी ही रहती है।"

दमयन्ती चिन्तामग्न थी, साथ ही उसे कुछ निद्रा भी आ गयी थी, इसलिये दासियोंकी इन बातोंकी ओर उसका ध्यान भी आकर्षित न हुआ। वे सब जल भरकर राजमन्दिरको वापस चली गयीं। वहाँ उन्होंने रानीसे उसकी चर्चा की। इसलिये रानीने कहा :—"अच्छा, तुम जाओ और उसे मेरे पास लिवा लाओ। मैं उसे अपनी पुत्री चन्द्रवतीकी बहिन बनाकर अपने पास रख लूँगी।"

रानीकी यह बात सुनकर उसकी कई दासियाँ दमयन्तीके पास गयीं और कहने लगी :—"हे सुभगे! इस नगरकी रानी चन्द्रयशाने तुम्हें आदरपूर्वक अपने पास बुलाया है। वे तुम्हें अपनी पुत्रीके समान रक्खेंगी और तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट न होने देंगी। और यहाँपर पड़े रहनेसे तो तुम्हारे शरीरमें भूत-प्रेत प्रवेश कर तुम्हें सतायेंगे। इसलिये हे भद्रे! तुम हमारे साथ

चलो और इस मलीन वेशको त्याग कर राजकन्याकी भाँति ऐश्वर्य भोग करो।"

दमयन्ती ऐश्वर्यके प्रलोभनसे तो लुब्ध न हुई, किन्तु रानीने उसे पुत्री बनाकर आश्रय देनेको कहा था, इसलिये वह उसी समय दासियोंके साथ चन्द्रयशाके पास चली गयी।

चन्द्रयशा दमयन्तीकी सगी मौसी थी, परन्तु दमयन्तीको इस बातका कुछ भी पता न था। दूसरी ओर चन्द्रयशाको यह बात मालूम थी, कि उसकी बहिनके दमयन्ती नामक एक लड़की है, उसने बाल्यावस्थामें उसे देखा भी था, किन्तु इस समय न तो वह उसे पहचानती ही थी, न उसे इसी बातका पता था कि यह दमयन्ती ही है।

इस प्रकार यह आत्मीयता अज्ञात होने पर भी, चन्द्रयशाने जब दमयन्तीको देखा, तो उसके हृदयमें वात्सल्यभाव उमड़ आया। दमयन्तीकी भी यही अवस्था हुई। उन दोनोंका हृदय उसी अज्ञात सम्बन्धके कारण लोह चुम्बककी भाँति एक दूसरेके प्रति आकर्षित होने

लगा। चन्द्रयशाने दमयन्तीको गाढ़ आलिङ्गन कर उसे गलेसे लगा लिया। रानीका यह माताके समान प्रेम देखकर दमयन्तीके नेत्रोंसे भी अश्रुधारा वह निकली। वह दुःख और प्रेमके कारण रानीके पैरों पर गिर पड़ी।

रानीने उसे उठाकर मधुर वचनों द्वारा सान्त्वना दी। जब वह शान्त हुई, तब रानीने उसका परिचय पूछा। दमयन्तीने पूर्वकी भाँति अपना असली परिचय न देकर जो बातें सार्थवाहकसे कही थीं, वही बातें रानी से भी कह दीं। उन्हें सुनकर रानीने समवेदना प्रकट करते हुए कहा :—"हे कल्याणी! तुम्हें यहाँपर किसी प्रकारका कष्ट न होने पायगा। जिस प्रकार मेरी पुत्री चन्द्रवती रहती है, उसी प्रकार तुम भी रहो और आनन्द करो।"

दमयन्ती ऐश्वर्य या सुखकी भूखी तो थी नहीं, किन्तु उसे किसी निरापद स्थान या आश्रयकी आवश्यकता जरूर थी। इसलिये रानीके उपरोक्त वचन सुनकर उसे परम सन्तोष हुआ और वह बड़ी सादगीके साथ वहाँ रहती हुई अपने दिन व्यतीत करने लगी।

रानी चन्द्रयशा जब-जब इस गुप्तवेशवाली दमयन्ती को देखती, तब-तब उसे प्रकृत दमयन्तीकी याद आ जाती थी। वह दमयन्तीके रूपसे उसके रूपकी तुलना करती, तो उसे उन दोनोंमें बड़ी समानता दिखायी देती। एकदिन उसने अपनी पुत्री चन्द्रवतीसे कहा :—"तुम्हारी यह बहिन ठीक मेरी बहिनकी पुत्री दमयन्तीके समान है। इसे देखकर मुझे सन्देह हो जाता है कि यह वही तो नहीं है? परन्तु यह केवल सन्देह ही है। उसकी न तो ऐसी अवस्था हो ही सकती है, न वह यहाँ आ ही सकती है। वह तो हमारे स्वामी राजा नलकी पटरानी है और यहाँ से एकसौ चौवालिस योजनकी दूरी पर कोशला नगरीमें रहती है!"

खैर, रानीने इसे असम्भव मानकर दमयन्तीके निकट कभी इसकी चर्चा न की। फलतः उन दोनोंका यह सम्बन्ध प्रकट न हो सका और दमयन्ती उसी तरह अपने दिन बिताती रही।

रानी चन्द्रयशाने नगरके बाहर एक दानशाला बनवा रक्खी थी। वहाँपर वह रोज सुबह कुछ देर बैठ-

कर दीन और दुःखियोंको दान दिया करती थी। यह देख, दमयन्तीने रानीसे कहा :—"माताजी! यदि आप कहें तो दानशालामें बैठकर मैं भी दीन दुःखियोंको दान दिया करूँ। सम्भव है कि मेरे पतिदेव कभी घूमते-घामते वहाँ आ जायें या वहाँ आनेवाले मुसाफिरोंसे किसी प्रकार उनका पता मिल जाय!"

रानीने दमयन्तीकी यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली, अतः दूसरे ही दिनसे दमयन्ती वहाँ बैठकर दान देने लगी। वहाँपर जो-जो याचक या मुसाफिर आता, उसको नलका रूप आदि बतला-बतलाकर दमयन्ती उससे उनका पता पूछती। धीरे-धीरे यही उसकी दिनचर्या हो गयी। इस कार्यमें उसे आनन्द भी आता था और उसका दिन भी आसानीसे कट जाता था।

एकदिन दमयन्ती दानशालामें बैठी हुई थी। इतने-ही में राजकर्मचारी एक बन्दीको लेकर उधरसे आ निकले। वे उसे वधस्थानकी ओर लिये जा रहे थे। दमयन्तीने उन राजकर्मचारियोंसे उसके अपराधके सम्बन्धमें पूछताछ की, तो उन्होंने बतलाया कि यह एक चोर है।

इसने चन्द्रवती देवीकी रत्नपिटारी चुरा ली है, इसलिये इसे मृत्युदण्ड दिया गया है।"

मृत्युदण्डका नाम सुनते ही दमयन्तीको उस चोर पर दया आ गयी। इसलिये उसने करुणापूर्ण दृष्टिसे उस चोरकी ओर देखा। देखते ही चोरने हाथ जोड़कर कहा :—"हे देवि! मुझ पर आपकी दृष्टि पड़ने पर भी क्या मुझे मृत्युदण्ड ही मिलेगा? क्या आप मुझे अपना शरणागत मानकर मेरी रक्षा न करेंगी?"

चोरके यह वचन सुनकर दमयन्तीका हृदय और भी द्रवित हो उठा। उसने उसे अभयदान देकर कहा :—"यदि मैं वास्तवमें सती होऊँ, तो इस बन्दीके समस्त बन्धन छिन्न-भिन्न हो जायँ।"

इतना कह दमयन्तीने हाथमें जल लेकर उसपर तीन बार छिड़क दिया। छिड़कते ही उसके सब बन्धन टूट गये। इससे राज-कर्मचारियोंमें बड़ाही तहलका मच गया। उन्होंने तुरन्त राजा ऋतुपर्णको इसकी खबर दी। उसे इससे बहुतही आश्चर्य हुआ, क्योंकि ऐसी घटना इसके पहले कभी भी घटित न हुई थी। वे सपरिवार दमयन्तीके

पास गये और उससे कहने लगे :—"हे पुत्री! तुमने यह क्या किया? दुष्टोंका दमन और शिष्टोंकी रक्षा करना राजाका एकान्त कर्त्तव्य है। उपद्रवियोंसे रक्षा करनेके लिये ही राजा अपनी प्रजासे कर लेता है। अपराधियोंको समुचित दण्ड न देनेसे उनका पाप राजा-केही शिर पड़ता है। इस चोरने राज-कन्याकी रत्न पिटारी चुरा ली है, इसे दण्ड न देनेसे दूसरे चोरोंका भी हौसला बढ़ जायगा और फिर इस प्रकारके अपराधियों को दण्ड देना कठिन हो पड़ेगा।"

दमयन्तीने कहा :—"पिताजी! इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अपराधियोंको दण्ड अवश्य देना चाहिये, परन्तु यदि मेरे सामने ही इसका वध किया जायगा, तो मुझ श्राविकाका दया-धर्म किस काम आयगा? इसलिये मैं आपसे क्षमा प्रार्थना करती हूँ। यह मेरी शरणमें आया है। इसका चित्कार, इसकी करुण-प्रार्थना सुनकर मैंने इसे अभयदान दिया है। आप भी इसे अभयदान देनेकी कृपा करें। मैं यह उपकार अपने ही ऊपर समझूँगी और इसके लिये आपकी चिरऋणी रहूँगी।"

दमयन्तीका अत्यन्त आग्रह देखकर राजा ऋतुपर्णने उस चोरका अपराध क्षमा कर दिया। राज-कर्मचारियों के हाथसे मुक्ति पाते ही वह चोर दमयन्तीके पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा :—"आपने आज मुझे जीवन-दान दिया है, इसलिये आजसे मैं आपको अपनी-माता मानूँगा।"

इतना कह, दमयन्तीका आशीर्वाद ग्रहण कर उस समय तो वह चोर वहाँसे चला गया, किन्तु इसके बादसे वह रोज एकबार दमयन्तीके पास आने और उनको प्रणाम करने लगा। एकदिन दमयन्तीने उससे पूछा :—"तुम कौन हो और कहाँ रहते हो? तुमने चोरीका यह पापकर्म क्यों किया था?"

उसने कहा :—"हे देवी! तापसपुरमें वसन्त नामक एक धनीमानी सार्थवाहक रहते थे। उन्हींका मैं पिङ्गल नामक नौकर था। मैं दुर्व्यसनी था, इसलिये उन्हींके यहाँ सेंध लगाकर, मैंने उनके भंडारसे थोड़ा बहुमूल्य माल चुरा लिया। वह माल लेकर मैं वहाँसे भागा। मैं समझता था कि इस मालको लिये किसी सुरक्षित

स्थानमें पहुँच जाऊँगा और थोड़े दिन मौज करूँगा, किन्तु दुर्भाग्यवश मार्गमें डाकुओंने मुझे लूट लिया। इसलिये मैं फिर जैसाका तैसा हो गया।

पश्चात् मैं घूमता घामता यहाँ आ पहुँचा। यहाँपर राजा ऋतुपर्णने मुझे नोकर रख लिया। इससे मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ, खासकर इस विचारसे कि अब मुझे फिर माल मारनेका मौका मिलेगा। चोरका ध्यान सदा चोरीमें ही रहता है, इसलिये किसी भी कार्यसे यदि मैं राजमन्दिरमें इधर उधर जाता, तो वहाँ रक्खी हुई चीजों पर सबसे पहले नजर डालता। एकदिन मैंने चन्द्रवती देवीकी रत्नपिटारी देख ली। उसे देखते ही मेरा चित्त चलायमान हो गया और मैं उसी क्षण उसे चुरा लाया।

परन्तु चोरकी हिम्मत कितनी? मैं ज्योंही डरते डरते वहाँसे भागनेकी तैयारी करने लगा, त्योंही राजमहलके चतुर पहरेदारोंको मुझपर सन्देह हो गया और उन्होंने मुझे गिरफ्तार कर लिया। तलाशी लेने पर मेरे पाससे जब वह रत्नपिटारी निकली, तब उन्होंने मुझे

राजाके सामने उपस्थित किया और उन्होंने चोरीके अपराधमें मुझे मृत्युदण्ड दे दिया। इसके बाद जो कुछ हुआ वह आपको मालूम ही है। यदि आपने मुझे न बचाया होता तो, हे महासती! उस दिन मैं कुत्ते की मौत मारा गया होता।"

चोरकी इस आत्म-कथासे दमयन्तीको जब यह मालूम हुआ, कि वह वसन्त सार्थवाहका नोकर था और तापसपुरमें रहता था, तब उन्होंने बड़े प्रेमसे वसन्तका कुशल समाचार पूछा। उत्तरमें उस चोरने कहा :—"हे देवी! तापसपुरसे आपके चले आने पर विन्ध्याचलके वियोगी हाथीकी भाँति वसन्त सार्थवाहकने अन्न त्याग दिया और सात दिन तक उपवास किया। इसके बाद यशोभद्रसूरिका उपदेश श्रवण कर उसने आठवें दिन फिर अन्न ग्रहण किया।

इसके कुछ दिन बाद वह अनेक बहुमूल्य चीजें लेकर राजा कुबेरके दर्शन करने गया। वे उसकी भेट देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे न केवल राजसभामें ही सम्मानित किया, बल्कि छत्र और चमर

सहित उसे तापसपुरका राज्य देकर उन्होंने उसे अपने सामन्तोंमें शामिल कर लिया। उन्होंने उसका नाम भी बदलकर वसन्त श्रीशेखर रख दिया। इस प्रकार राज-सम्मान प्राप्त कर वह विजय-भेरी बजाता हुआ तापसपुर लौट आया। उस समयसे वह वहींपर रहता है और प्रेमपूर्वक प्रजाका पालन करता है।"

वसन्तका यह समाचार सुनकर और उसे सुखी जानकर दमयन्तीको अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने उस चोरसे कहा :—"हे वत्स! तुमने पूर्व जन्ममें दुष्कर्म किये थे। उन्हींका फल तुम इस जन्ममें भोग कर रहे हो। अब तुम्हें दीक्षा लेकर उन दुष्कर्मों को क्षय कर देना चाहिये।"

चोरने कहा :—"माताजी! मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करनेको तैयार हूँ।"

इसी समय वहाँपर कहींसे दो साधु आ पहुँचे। दमयन्तीने उन्हें दोष रहित भोजन करानेके बाद कहा :—"हे भगवन्! यदि यह पुरुष योग्य हो, तो इसे दीक्षा देनेकी कृपा कीजिये।"

साधुओंने कहा :—"हाँ, यह योग्य है। इसे दीक्षा देनेमें कोई आपत्ति नहीं है।" यह कहते हुए मुनिराज पिङ्गलको उसी समय देव-मन्दिरमें ले गये और वहाँपर उन्होंने उसे यथाविधि दीक्षा दे दी।

उधर कई दिनोंके बाद दमयन्तीके पिता भीमरथने सुना कि द्यूत क्रीड़ामें नलका सारा राज्य कुबेरने जीत लिया है और राज्य जीतनेके बाद उसने नलको अपने देशसे निकल जानेकी आज्ञा दे दी है। उन्होंने यह भी सुना कि दमयन्तीको साथ लेकर नल जंगलमें चले गये हैं, किन्तु इसके बाद उन दोनोंका क्या हुआ, यह आज तक किसीको मालूम नहीं हो सका।

महलमें जाकर राजाने यह समाचार अपनी रानी पुष्पदन्तीको सुनाया। पुष्पदन्ती अपनी पुत्री और दामादकी चिन्तासे अधीर और व्याकुल होकर रोदन करने लगी। राजा भीमरथको भी कम दुःख न हुआ था। किन्तु वे जानते थे कि विपत्ति कालमें जो मनुष्य धैर्यसे काम लेता है, वही अन्तमें सुखी होता है। उन्होंने रानीको भी समझा बुझाकर शान्त किया।

इसके बाद रानीने उनसे अनुरोध किया कि किसी चतुर दूतको भेजकर चारों ओर उनकी खोज करानी चाहिये। राजा भीमरथने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दूसरे ही दिन उन्होंने इस कार्यके लिये हरिमित्र नामक एक पुरोहितको चुन लिया और उसे सब मामला समझा कर नल दमयन्तीकी खोज करनेके लिये रवाना किया। वह सर्वत्र उनकीखोज करता हुआ क्रमशः अचल-पुरमें पहुँचा और वहींके राजा ऋतुपर्णसे भेट की। जिस समय उन दोनोंमें बात चीत हो रही थी, उसी समय वहाँ रानी चन्द्रयशा जा पहुँची। उन्हें जब यह मालूम हुआ, कि यह आदमी राजा भीमरथके यहाँसे आया है तब उन्होंने अपनी बहिन पुष्पदन्ती आदिका कुशल समाचार पूछा। उत्तरमें हरिमित्रने कहा :—"हे देवि! रानी पुष्पदन्ती और राजा भीमरथ तो परम प्रसन्न हैं, किन्तु नल-दमयन्तीका समाचार बहुत ही शोचनीय है।"

चन्द्रयशाने कहा :—"हे पुरोहित! तुम यह क्या कह रहे हो? नल और दमयन्तीको क्या हो गया है? उनका जो कुछ समाचार हो, शीघ्र ही कहो।"

हरिमित्रने द्यूतसे लेकर नलके वन-प्रवास तकका सारा हाल उन्हें कह सुनाया। रानीको अत्यन्त दुःख हुआ और वे उस दुःखके कारण विलाप करने लगीं। हरिमित्र उनको उसी अवस्थामें छोड़ कर दानशालाकी ओर चला गया। उसे भूख भी बड़े जोरोंकी लगी हुई थी, इसलिये उसने सोचा कि वहींपर भोजनका भी ठिकाना हो जायगा। दानशालाका द्वार तो सबके लिये खुला ही रहता था। इसलिये हरिमित्रने वहाँपर ज्योंही भोजनकी इच्छा प्रकट की, त्योंही शुद्ध और ताजे भोजनकी थाली उसके सामने आ गयी। हरिमित्र उसके द्वारा अपनी क्षुधाग्नि शान्त करने लगा।

भोजन करते समय अतिथियोंके पास जाना और उनसे पूछ-ताछ कर उन्हें किसी और वस्तुकी आवश्यकता हो, तो वह उन्हें दिला देना, यह दमयन्तीका एक नियमसा था। इसी नियमानुसार वह हरिमित्रके पास भी पहुँची और उससे पूछने लगी कि भाई! तुम्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता तो नहीं है?

हरिमित्रको किसी खाद्यपदार्थकी आवश्यकता न

थी, इसलिये उसने उसके लिये तो इन्कार कर दिया, परन्तु इसके साथ ही उसकी दृष्टि दमयन्ती पर जा पड़ी, जिससे उसको इतना आनन्द हुआ, मानो उसे कुबेरका भण्डार मिल गया हो। वह दमयन्तीको भली भाँति पहचानता था। इसलिये उसे पहचाननेमें जरा भी दिक्कत न हुई, फिर भी उसने उसे दो तीन बार देखकर भली भाँति निश्चय कर लिया। जब उसे मालूम हो गया कि यही दमयन्ती है, तब उसने पुलकित हृदयसे दमयन्तीको प्रणाम करके कहा :—"हे देवि! तुम्हारी यह क्या अवस्था हो रही है! खैर, तुम्हारा पता लग गया, यह भी कम सौभाग्यकी बात नहीं है। अब तुम्हारे माता-पिता और स्वजन स्नेहियोंकी चिन्ता दूर हो जायगी।"

इतना कह, हरिमित्रने दमयन्तीको अपने आगमनका सब हाल कह सुनाया। इसके बाद वह रानी चन्द्रयशाके पास दौड़ गया और उन्हें यह शुभ संवाद कह सुनाया। दमयन्ती उनकी दानशालामें रहती थी, वे उसे रोज देखती थी, फिर भी,—उसे पहचानते हुए

भी—उन्होंने उसे न पहचाना, इसके लिये उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे उसी समय दानशालामें जा पहुँची। वहाँपर उन्होंने दमयन्तीको गलेसे लगा लिया। दमयन्ती भी उन्हें जी खोल कर मिली, क्योंकि उसे यह बात आज अपने जीवनमें पहले ही पहल मालूम हुई, कि चन्द्रयशा उसकी सगी मौसी है।

अपना प्रकृत परिचय न देकर छद्मवेशमें रहनेके कारण दमयन्तीको चन्द्रयशाने सख्त उलाहना दिया। उसने कहा :—"हे वत्से! मुझे वारंवार धिक्कार है कि मैं तुम्हें पहचान न सकी। मुझे भ्रम तो अनेकबार हुआ, परन्तु मैंने निराकरण एकबार भी न किया। इसके लिये आज मुझे बड़ा ही पश्चाताप हो रहा है। लेकिन इसके साथ ही मैं तुम्हें भी भला बुरा कहे बिना नहीं रह सकती। तुमने छिपे वेशमें रहकर मुझे धोखा क्यों दिया? तुमने अपना असली परिचय मुझे क्यों नहीं दिया? दैवयोगसे तुम्हारे शिर यह दुःख आ पड़ा तो इसमें लज्जाकी कौन बात थी? लज्जा भी कहाँ?—मातृकुलमें! माता-पिताके सामने?"

इस प्रकार दमयन्तीको उलाहना देनेके बाद रानी चन्द्रयशा उसकी दुरवस्थाके लिये रोने कलपने लगी। शान्त होनेपर उन्होंने दमयन्तीसे पूछा :—"हे पुत्री! तुमने नलको त्याग दिया था या नलने तुमको त्याग दिया था? मैं समझती हूँ कि उन्होंने ही तुम्हें त्याग दिया होगा। तुम तो सती हो, इस लिये ऐसा अनुचित काम तुम कर भी कैसे सकती हो? अब तक मैंने कहीं भी ऐसा नहीं सुना कि किसी पतिव्रता स्त्रीने संकटावस्थामें पड़े हुए अपने पतिको त्याग दिया हो। जिस दिन इस देशकी सती साध्वी स्त्रियाँ ऐसा करने लगेंगी, उस दिन यह पृथ्वी अवश्य रसातलको चली जायगी। परन्तु नलने भी तुम्हें त्यागकर बड़ा ही अनुचित कार्य किया है। वे तुम्हें मेरे यहाँ या तुम्हारी माताके यहाँ क्यों न छोड़ गये? ऐसी महासती भार्याको जंगलमें अकेली छोड़ देना नलके लिये बड़े कलङ्ककी बात है। इस कार्य द्वारा उन्होंने अपने कुलको भी कलङ्कित बना दिया है। हे वत्से! तुम मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने तुम्हें पहचाननेमें ऐसी बड़ी भूलकी है, जिसका वर्णन भी नहीं

किया जा सकता। खैर, होनहार होकर ही रहता है। तुम्हारे भाग्यमें यह दुःख बदा था, इसीलिये तुम्हें भोग करना पड़ा!"

इस प्रकार नाना प्रकारकी बातें कहकर चन्द्रयशाने दमयन्तीको सान्त्वना दी। इतने ही में उसे स्मरण आ गया कि दमयन्तीके ललाट पर तो सूर्यके समान परम तेजस्वी एक तिलक था, वह क्यों नहीं दिखायी देता! उसने दमयन्तीके ललाटकी ओर देखा। दमयन्ती जान बूझ कर उसकी सफाई न करती थी इसलिये वह मैला कुचैला हो रहा था। रानी चन्द्रयशाने हाथमें जल लेकर उसे भली भांति धो दिया। धोते ही वह तिलक इस प्रकार चमक उठा, जिस प्रकार बादल छँट जाने पर वर्षाके दिनोंमें सूर्य चमक उठता है।

इसके बाद रानी चन्द्रयशा बड़े आदरके साथ उसे दानशालासे अपने राज महलमें लिवा लायी। वहाँ उसने स्वयं अपने हाथसे स्नान करा कर मनोहर श्वेत वस्त्र उसे पहननेको दिये। मौसीका यह प्रेम और आदर भाव देख कर दमयन्तीके होठों पर भी आज हँसी दिखायी

देने लगी। रानी चन्द्रयशा दमयन्तीको सजावजा कर राजा ऋतुपर्णके पास लिवा ले गयी। उस समय राजा एक कमरेमें बैठे हुए थे। रात हो चुकी थी और चारों ओर घोर अन्धकार फैला हुआ था। कमरेमें एक बत्ती जल रही थी, जो काफी तेज थी, लेकिन फिर भी वह उस स्थानके अन्धकारको पूर्णरूपसे दूर करनेमें समर्थ न थी। रानी चन्द्रयशाने कमरेमें पैर रखते ही वह बत्ती बुझा दी। साथ ही उसने दमयन्तीके ललाटका वस्त्र हटाकर उसका वह तिलक खोल दिया। तिलक खोलते ही वह कमरा जग-मगा उठा।

राजाने चकित होकर पूछा :—"प्रिये! तुमने दीपक तो यहाँ आते ही बुझा दिया था, अब यह इतना प्रकाश कहाँसे आ रहा है? मुझे तो ऐसा मालूम होता है, मानो यह रात नहीं बल्कि दिन है।"

चन्द्रयशाने कहा :—"नाथ! यह दमयन्तीके भाल तिलकका प्रताप है। इसके रहने पर सूर्य, चन्द्र, दीपक या रत्न—किसी भी वस्तुकी जरूरत नहीं पड़ती। इसका प्रकाश बहुत दूर तक फैल जाता है और उस

प्रकाशमें दिनकी तरह सब चीजें बहुत साफ दिखायी देती हैं।"

राजाने आश्चर्यपूर्वक फिर पूछा :—"क्या दमयन्ती मिल गयी? उसका पता मिल गया? वह कहाँ थी? उसका पता किस प्रकार मिला?"

रानी चन्द्रयशाने राजाको सारा हाल कह सुनाया। सुनकर उन्हें बड़ाही आश्चर्य हुआ। वे भी इस बातसे बहुत दुःखित हुए, कि दमयन्ती इतने दिनोंसे उनके महलमें, उन्हींकी छत्र छायामें रहती थी, फिर भी वह पहचानी न जा सकी। इसके बाद उन्होंने दमयन्तीको अपने पास बैठाकर बड़े प्रेमसे उसकी विपत्तिका हाल पूछा। दमयन्तीने सजल नेत्रोंसे अपनी करुण कथा उनको भी कह सुनायी। राजा ऋतुपर्ण उसे सुनकर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपने रूमालसे दमयन्तीके अश्रु पोंछ कर नाना प्रकारसे उसे आश्वासन दिया। बेचारी दमयन्ती अपने हृदयकी वेदनाको हृदयमें ही छिपा कर फिर किसी तरह शान्त हो गयी।

इसी समय आकाशसे एक देव उतर कर राजा

ऋतुपर्ण और दमयन्तीके सामने आ उपस्थित हुआ। उसने हाथ जोड़कर दमयन्तीसे कहा :—"हे माता! मैं वही पिंगल चोर हूँ, जिसे आपने उन दो साधुओं द्वारा दीक्षा दिलायी थी। दीक्षा लेनेके बाद मैं विहार करता हुआ तापसपुर गया और वहाँके श्मशानमें कायोत्सर्ग कर मैं अपने जीवनका शेष समय व्यतीत करने लगा। संयोग वश उसी समय एक चितासे आग उछल कर आस पासके वृक्षोंमें लग गयी और उसने देखते-ही-देखते दावानलका रूप धारण कर लिया। मैं भी उस दावानलमें जल गया, परन्तु मृत्युके समय मैं धर्मध्यानमें लीन था, इसलिये मैं देवलोकमें देव हुआ और मेरा नाम पिङ्गल पड़ा। देवत्व प्राप्त होनेके बाद मुझे अवधि ज्ञानसे मालूम हुआ, कि आपने मेरी प्राण रक्षाकर मुझे जो प्रव्रज्या दिलायी थी उसीके प्रभावसे मैं सुरसुखका भोक्ता हुआ हूँ। हे स्वामिनी! यदि मुझे पापी समझकर आपने उस समय मेरी उपेक्षा की होती, तो मुझे धर्मकी प्राप्ति कदापि न होती और मैं अवश्य नरकका अधिकारी होता। हे देवी! आपके ही प्रसादसे मुझे यह देवत्व

और देव सम्पत्ति प्राप्त हुई है, इसलिये मैं आपका दर्शन करने आया हूँ। आपकी सदा जय हो!"

इतना कह वह देव सात क्रोड़ सुवर्ण मुद्राओंकी वर्षा कर अन्तर्धान हो गया। जैन धर्मका यह साक्षात् फल देखकर राजा ऋतुपर्ण भी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया।

दो एकदिन बाद हरिमित्रने राजा ऋतुपर्णसे कहा :- "हे राजन्! दमयन्तीको अब अपने पिताके घर जानेकी आज्ञा दीजिये। उसके माता पिता उसके वियोगसे बहुत दुःखित हो रहे हैं।"

राजा और रानीने इसके लिये सहर्ष अनुमति दे दी। उनकी रक्षाके लिये उन्होंने एक छोटीसी सेना भी उनके साथ कर दी। यथा समय दमयन्ती सबसे मिल भेंट कर एक रथमें बैठ, अपने पितृ-गृहके लिये रवाना हुई।

हरिमित्रने कुंडिनपुरके समीप पहुँचनेके पहले ही दमयन्तीके आगमनका समाचार राजा भीमरथको भेज दिया था, इसलिये राजा भीमरथ बड़ेही प्रेमसे अपनी पुत्रीको लिवानेके लिये सामने आ पहुँचे। पिताको

देखकर दमयन्ती रथसे उतर पड़ी और पैरोंसे चलती हुई पिताकी ओर अग्रसर हुई। उनके समीप पहुँचते ही वह आनन्दपूर्वक विकसित नेत्रोंसे उनके चरणों पर गिर पड़ी। पिता और पुत्रीका यह मिलन वास्तवमें परम दर्शनीय था। दोनोंके होठों पर मुस्कुराहट और नेत्रोंमें अश्रु थे। राजा भीमरथका वात्सल्य भाव देखते ही बनता था। वे बारंबार दमयन्ती की पीठ पर हाथ फेर-कर उसे स्नेह और करुणाभरी दृष्टिसे देखते थे। उनका आनन्द आज उनके हृदयमें न समाता था।

पुत्रीके आगमनका समाचार सुनकर रानी पुष्पवती भी वहाँ आ पहुँचीं। उनका समूचा शरीर स्नेहके कारण रोमाञ्चित हो रहा था। जिस प्रकार गंगा यमुनाका संगम होता है, उसी प्रकार माताने पुत्रीको गलेसे लगा लिया। स्नेहमयी माताके गले लगने पर दमयन्तीका दुःख-सागर मानो उमड़ पड़ा और उसे रुलाई आ गयी। जब उसने जी भरकर रो लिया, तब उसका हृदय भार कुछ हलका हुआ।

इसके बाद दमयन्तीके माता-पिता बड़े प्रेमसे उसे

राजमहलमें लिवा ले गये। वहाँपर दमयन्तीने द्यूत क्रीड़ासे लेकर अब तक की मुसीबतका सारा हाल उन्हें कह सुनाया। सुननेके बाद माता पुष्पदन्तीने उसे बहुत सान्त्वना दी। उसने कहा :—"हे आयुष्मती! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि इतने संकट आनेपर भी तुम्हारा जीवन बच गया है और तुम सकुशल हमारे पास पहुँच गयी हो। इससे प्रतीत होता है कि तुम्हारा सौभाग्यसूर्य अभी अस्त नहीं हुआ है। अब तुम यहाँपर आनन्दसे रहो। मेरा विश्वास है कि कभी-न-कभी तुम्हारे पतिदेव तुम्हें अवश्य मिलेंगे। हमलोग अब उनकी खोज करानेमें भी कोई बात उठा न रक्खेंगे।"

पुरोहित हरिमित्रका कार्य बहुत ही सन्तोष दायक था। यदि उसने तनमनसे चेष्टा न की होती, तो दमयन्तीका पता कदापि न चलता। राजा भीमरथने इन सब बातों पर विचार कर उसे पाँच सौ गाँव इनाम दे दिये। साथ ही उन्होंने कहा :—"हे हरिमित्र! यदि इसी तरह चेष्टा कर तुम नलका पता लगा लाओगे, तो मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे दूँगा।" इसके बाद

उन्होंने अपनी पुत्रीके आगमनके उपलक्षमें एक अट्ठाई महोत्सव किया, जो सात दिन तक जारी रहा। इन दिनोंमें उन्होंने देव पूजा और गुरु पूजा विशेष रूपसे की।

समय समय पर राजा भीमरथ भी दमयन्तीको बड़े प्रेमसे अपने पास बुलाकर उसे सन्त्वना दिया करते थे। एकदिन उन्होंने कहा :—"हे पुत्री! मैं एक ऐसी युक्ति सोच रहा हूँ, जिससे नलकुमार जहाँ होंगे वहाँसे अपने आप यहाँ चले आयँगे। मेरी यह धारणा है, कि अब तुम्हें अधिक समय तक यह दुःखमय जीवन न बिताना होगा।"

पिताकी इन सान्त्वनाओंसे दमयन्तीको खूब शान्ति मिलती थी और वह अपने दिन बड़े ही आनन्दमें बिताती थी।

इस तरह कोशला नगरी छोड़नेके कई वर्ष बाद दमयन्ती तो किसी तरह ठिकाने लग गयी, किन्तु नलको सुदिन देखनेका समय अभी न आया था। वे दमयन्तीको सोती हुई छोड़कर वर्षों तक जंगलमें भटकते रहे। एकबार उन्हें एक स्थानसे काजल समान काला

धुआँ निकलता दिखायी दिया। वह इस प्रकार ऊँचे चढ़ रहा था, मानो सूर्य चन्द्र और ताराओंको श्याम बनानेके लिये वहाँ जा रहा हो। शीघ्र ही उस स्थानमें आगकी भयंकर लपटें दिखायी देने लगीं। पशुओंमें भगदड़ मच गयी। पक्षियोंने उड़ उड़कर दूसरे जंगलका रास्ता लिया। हरे भरे वृक्ष भी इस दावानलकी प्रबलताके कारण इस प्रकार भस्म होने लगे, मानो सूखा हुआ तृण भस्म हो रहा हो। नल भी यह दावानल देखकर कर्त्तव्य विमूढ़ बन गये।

ठीक इसी समय उस दावानलके अन्दरसे नलको किसी मनुष्य की सी आवाज आती हुई सुनायी दी। उन्होंने कान लगाकर सुना तो उन्हें मालूम हुआ, कि कोई अपनी रक्षाके लिये उनसे पुकार पुकार कर प्रार्थना कर रहा है। वह कह रहा था :—"हे इक्ष्वाकुकुल-तिलक राजा नल! हे क्षत्रियोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये। आप यद्यपि निष्कारण उपकारी हैं, तथापि यदि आप मेरी प्राण रक्षा करेंगे तो मैं भी उसके बदले आपका कुछ उपकार कर दूँगा।"

यह सुनकर नल उस दावानल की ओर आगे बढ़े। समीप पहुँचने पर उन्होंने देखा कि वनलताओंके झुण्डमें एक भीषण सर्प पड़ा हुआ है और वही उनका नाम ले लेकर अपनी रक्षाके लिये उन्हें पुकार रहा है।

नलको एकायक उस सर्पके पास जानेका साहस न हुआ। उन्होंने दूरहीसे उसे पूछा :—"हे भुजंग! तुझे मेरा और मेरे वंशका नाम कैसे मालूम हुआ? क्या तू वास्तवमें सर्प है? सर्प तो मनुष्यकी बोली नहीं बोलते!"

सर्पने उत्तर दिया :—"हे महापुरुष! पूर्व जन्ममें मैं मनुष्य था, किन्तु अपने कर्मोंके कारण इस जन्ममें मैं सर्प हो गया हूँ। किसी सुकृतके कारण मैं इस जन्ममें भी मानुषी भाषा बोल सकता हूँ। हे यशोनिधान! मुझे अवधिज्ञान है, इसीलिये मुझे आपका और आपके वंशादिकका नाम मालूम है। आप शीघ्र ही मेरी रक्षा कीजिये, वर्ना मैं इसीमें जलकर खाक हो जाऊँगा।"

सर्पकी यह दीनतापूर्ण बातें सुनकर नलको उसपर दया आ गयी। उन्होंने दूरसे ही अपने उत्तरीय वस्त्रका

एक छोर उसके पास फेंक दिया। सर्प जब उससे लिपट गया तब उन्होंने उस वस्त्रका दूसरा छोर पकड़कर, उसे अपनी ओर खींच लिया। इसके बाद वे उसे उठाकर निरापद स्थानको ले जाने लगे, परन्तु उस स्थान तक पहुँचनेके पहले ही उसने राजा नलके हाथमें बेतरह डस लिया। इससे नलने तुरन्त उसे दूर फेंक दिया और कहा :—"वाह! तुमने मेरे ऊपर बड़ा ही उपकार किया! लोग सच ही कहते हैं, कि सर्पको जो दूध पिलाता है, उसे भी वह काटे बिना नहीं रहता।"

नल यह बातें कह ही रहे थे, कि विषके प्रभावसे उनका शरीर कुबड़ा, केश प्रेतकी भाँति पीले, होंठ ऊँटकी तरह लम्बे, हाथ पैर छोटे, और पेट बहुत बड़ा हो गया। अंगोंमें इस प्रकार विकृति आ जानेसे वे बहुत बदसूरत दिखायी देने लगे। इससे उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ और वे अपने मनमें कहने लगे :—"इस प्रकार कुरूप होकर जीनेकी अपेक्षा तो मरना ही अच्छा है। अब मुझे दीक्षा ले लेनी चाहिये, ताकि इस परितापसे सदाके लिये छुटकारा मिल जायगा।"

परन्तु इतनेही में उन्होंने आश्चर्यके साथ देखा कि वह सर्प सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित तेजपुञ्जके समान एक देव बन गया है। उसने नलसे कहा :—"हे नल-कुमार! तुम दुःखी मत हो! मैं तुम्हारा पिता निषध हूँ। मैंने तुम्हें राज्य देकर दीक्षा लेली थी। उसके प्रभावसे मैं ब्रह्मलोकमें देव हुआ। वहाँपर अवधि ज्ञानसे तुम्हारी दुर्दशाका हाल मालूम होने पर मैंने माया सर्पका रूप धारण कर तुम्हें कुरूप बना दिया है। जिस प्रकार कड़वी दवा पीनेसे रोगीका उपकार ही होता है, उसी प्रकार इस कुरूपसेभी तुम्हें लाभ ही होगा। तुमने अपने राजत्वकालमें अनेक राजाओंको अपना दास बनाया था। इसलिये वे सब तुम्हारा अपकार कर सकते हैं, परन्तु तुम्हारा रूप परिवर्तित हो जानेसे वे अब तुम्हें पहचान न सकेंगे, फलतः तुम उनसे सुरक्षित रह सकोगे। दीक्षा लेनेका विचार तो इस समय तुम भूलकर भी मत करना, क्योंकि तुम्हें अभी बहुत भोग भोगने बाकी हैं। जब दीक्षा लेनेका उपयुक्त समय आयेगा, तब मैं स्वयं तुम्हें खबर दूँगा। इस समय तो तुम यही समझलो कि जो कुछ हुआ है, वह तुम्हारे

यह स्वप्न देखते ही दमयन्तीकी आँखें खुल गयीं। उसने अपने पितासे इसका हाल कहा। वे इससे बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा :—"बेटी! यह स्वप्न बहुत ही अच्छा मालूम होता है। तुमने जो निर्वृत्ति देवी देखी है, वह तुम्हारी पुण्यराशि है। कोशलाका उद्यान तुम्हें ऐश्वर्य दिलानेवाला है। आम्रवृक्ष पर चढ़ना पति समागम सूचित करता है। खिला हुआ कमल तुम्हारा सतीत्व है जो नलके मिलनसे शीघ्र ही विकसित होनेवाला है। वृक्षसे पक्षीका गिरना कुबेरका पतन सूचित करता है। उसके राज्यभ्रष्ट होनेमें अब अधिक देर न समझनी चाहिये। यह स्वप्न तुमने प्रभात कालमें देखा है, इसलिये इसका फल तुम्हें अति शीघ्र और संभवतः आज ही मिलेगा। स्वप्नशास्त्रके अनुसार तुम्हारे स्वप्नका फल यही मालूम होता है।"

थोड़ी ही देरमें मंगल नामक एक अनुचरने राजा भीमरथको दधिपर्णके आगमनका समाचार कह सुनाया। राजा भीमरथ यह सुनकर नगरके बाहर गये और बड़े सम्मानके साथ दधिपर्णको नगरमें लिवा लाये। इसके

बाद उन्होंने एक राज-भवनमें उनको ठहरा कर भोजनादिक द्वारा उनका आतिथ्य सत्कार किया।

राजा दधिपर्णको भीमरथके इस स्वागत सत्कारसे पूर्ण सन्तोष हुआ, परन्तु उनकी समझमें यह न आता था, कि जिस स्वयंवरके लिये वे इतनी दूरसे यहाँ आये थे, उसकी कोई तैयारी नगरमें नहीं दिखायी देती थी। वे कहने लगे, शायद स्वयंवरकी तिथि लिखने या पढ़नेमें भूल हुई होगी। इतने ही में राजा भीमरथ उनके पास आये। दधिपर्णने सोचा कि अब इनसे इस विषयमें पूछ ताछ करनी चाहिये। किन्तु परम चतुर राजा भीमरथ उनका मनोभाव पहले ही समझ गये, इसलिये उन्होंने उनके कुछ कहने सुननेके पहले ही कहा :—"राजन्! आपको जिस कार्यके लिये बुलाया है, उसकी बातचीत हमलोग फिर किसी समय एकान्तमें करेंगे। किन्तु इस समय तो मैं एक दूसरे ही कार्यसे आपके पास आया हूँ। मैंने सुना है कि आपके साथ जो कुबड़ा आया है वह सूर्यपाकी है। मैं उसकी इस विद्याका चमत्कार देखना चाहता हूँ। अन्तःपुरमें रानी आदि भी इसके लिये परम

उत्सुक हैं। क्या आप थोड़ी देरके लिये उसे मेरे साथ भेजनेकी कृपा न करेंगे ?"

राजा दधिपर्ण भीमरथका यह अनुरोध भला कैसे अमान्य कर सकते थे ? उन्होंने उसी समय कुब्जको भीमरथके साथ कर दिया। भीमरथ उसे सम्मान पूर्वक अपने महलमें लिवा ले गये। वहाँ उन्होंने उसे चावल आदि देकर अपनी अद्भुत विद्याका चमत्कार दिखलानेको कहा। कुब्जने, उस सामग्री द्वारा क्षणमात्रमें उसी तरह स्वादिष्ट भोजन तैयार कर दिया, जिस प्रकार उसने पहले दधिपर्ण राजाके यहाँ तैयार किया था। राजा भीमरथने सपरिवार उन पदार्थोंको चक्खा। दमयन्तीको उन्होंने वह चीजें विशेष रूपसे खिलायीं, क्योंकि उसीके कहनेसे उसकी परीक्षाका यह आयोजन किया गया था।

कुब्ज द्वारा बना हुआ वह भोजन चखते ही दमयन्तीने पितासे कहा :—"अब मुझे पूरा विश्वास और प्रतीति हो गयी है, कि यह पदार्थ मेरे पतिदेवके ही बनाये हुए हैं। ये कुब्ज या वामन किस प्रकार हो

गये, यह मैं नहीं कह सकती, किन्तु इनके नल होनेमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। इस सूर्यपाकके अतिरिक्त उनकी एक परीक्षा और भी ऐसी है, जिससे मैं तुरन्त उनको पहचान सकती हूँ। मेरे किसी भी अंगमें उनका हाथ या उंगली स्पर्श होते ही मेरा समूचा शरीर रोमाञ्चित हो उठता है। आप ऐसा प्रबन्ध करिये कि तिलक करनेके मिस वे मेरे ललाटको या मेरे किसी दूसरे अंगको एक उंगली द्वारा स्पर्श करें। यदि वे नल होंगे, तो मैं उसी समय उन्हें पहचान लूँगी।"

दमयन्तीका यह वचन सुनकर भीमरथने उस कुब्जसे पूछा :—"भाई, सच कहो, क्या तुम नल हो?"

कुब्जने अपने दोनों कानों पर हाथ रखते हुए कहा :—"भगवान्! भगवान्! आप यह क्या कहते हैं? देवता स्वरूप वे नल कहाँ और बीभत्स रूप मैं कहाँ? मैं नहीं समझ सकता, कि मेरे और उनके रूपमें जमीन आसमानका अन्तर होने पर भी आप लोग ऐसा सन्देह क्यों कर रहे हैं?"

भीमरथने कहा :—"अच्छा भाई तुम नल नहीं हो

वहींपर उपस्थित थे। उसी समय एक प्रौढ़ा स्त्री आकाशसे उतरकर वहाँ आयी। और उसने वसुदेवसे कहा :—"हे कुमार! मेरा नाम धनवती है। मेरे बालचन्द्रा और वेगवती नामक दो कन्याएं हैं। इनमेंसे बालचन्द्रा आपसे विवाह करनेके लिये लालायित है। वह दिनमें न खाती है, न रातको ही उसे निद्रा आती है। यदि आप मेरे साथ न चलेंगे, तो आपकी वियोगाग्निमें वह अपने प्राण त्याग देगी।"

वसुदेवने गुरुजनोंके सामने उसकी इन बातोंका कोई उत्तर न देकर, समुद्रविजयकी ओर देखा। समुद्रविजयने कहा :—"हे भाई! यह शुभ कार्य है, इसलिये मैं तुम्हें सहर्ष जानेकी आज्ञा देता हूँ। किन्तु पहलेकी तरह वहाँ अधिक समय न बिता देना!"

बड़े भाईकी आज्ञा मिल जाने पर वसुदेव उन्हें प्रणाम कर धनवतीके साथ आकाशगामी वाहन द्वारा गगनवल्लभ नगरमें जा पहुँचे। वहाँपर बालचन्द्राके पिता काञ्चनदंष्ट्रने, जो विद्याधरोंके राजा थे, उनका

बड़ा सत्कार किया और शुभ मुहूर्त्तमें बड़ी धूमके साथ उनसे बालचन्द्राका विवाह कर दिया।

राजा समुद्रविजय इस बीच रुधिरराजसे विदा ग्रहण कर कंसादिकके साथ अपने नगरको चले गये थे। वहाँ वे प्रतिदिन वसुदेवकी प्रतीक्षा करते थे। इधर वसुदेवने शीघ्र ही काञ्चनदंष्ट्रसे विदा ग्रहण कर बालचन्द्राके साथ अपने नगरके लिये प्रस्थान किया। इसी समय उन्होंने अपनी उन सब स्त्रियोंको भी अपने साथ ले लिया, जिनसे उन्होंने पहले व्याह किया था। इस समय अनेक विद्याधर और उनके साले आदिक सम्बन्धी भी उनके साथ हो गये। वसुदेव इन सबके साथ जिस समय विमलमणि विमानमें बैठ कर शौर्यपुर पहुँचे, उस समय उनका आनन्द हृदयमें न समाता था। राजा समुद्र-विजय और समस्त नगर निवासी बड़े आदरके साथ उन्हें नगरमें लिवा ले गये। वहाँ वसुदेव परिवारके साथ आनन्दपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे।

—१०१—

दसवाँ परिच्छेद

कृष्ण वासुदेव और बलभद्रका जन्म

हस्तिनापुर नगरमें एक महामति नामक सेठ रहता था। उसे ललित नामक एक पुत्र था, जो माताको बहुत ही प्रिय था। एकबार सेठानीने ऐसा गर्भ धारण किया, जो बहुत ही बुरा और सन्ताप दायक था। सेठानीने उस गर्भको गिरानेके लिये अनेक उपाय किये, किन्तु कोई फल न हुआ। यथासमय उसने एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया, परन्तु जन्म होते ही उसने उसे कहीं फेंक देनेके लिये एक दासीके सिपुर्द कर दिया।

दासीको क्या, वह उसी समय उस बालकको लेकर वहाँसे चल पड़ी, परन्तु मकानसे बाहर निकलते ही उसका पिता सामने मिल गया। दासीके हाथमें जीवित बालकको देखकर उसने उसके सम्बन्धमें पूछताछ

की, तो दासीने उससे सारा हाल बतला दिया। बालकको देखकर सेठका पितृ-हृदय द्रवित हो उठा, इसलिये उसने दासीके हाथसे उसे ले लिया। इसके बाद गुप्तरूपसे दूसरे मकानमें ले जाकर उसने उसे बड़ा किया और उसका नाम गंगदत्त रक्खा।

ललितको अपने इस भाईका हाल मालूम था, इसलिये वह भी कभी-कभी उस मकानमें जाकर उसे खेलाया करता था। एकदिन वसन्तोत्सवके समय उसने अपने पितासे कहा :—"हे पिताजी! वसन्तोत्सवके दिन गंगदत्त भी हमलोगोंके साथ भोजन करे तो बड़ाही अच्छा हो।"

पिताने कहा :—हाँ अच्छा तो है, किन्तु तुम्हारी माता उसे देख लेगी तो बड़ा ही अनर्थ कर डालेगी।"

ललितने कहा :—"अच्छा, मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगा, जिससे माताजी उसे देख न सकेंगी।"

पुत्रकी यह बात सुनकर पिताने उसे इस कार्यके लिये अनुमति दे दी। भोजनका समय होने पर ललितने गंगदत्तको एक पर्देके पीछे बैठा दिया और खुद पिता-

पुत्र उसके बाहर बैठकर भोजन करने लगे। भोजन करते समय बीच बीचमें वे अपनी थालीसे खानेकी चीजें उठा उठाकर चुपचाप गंगदत्तको भी देते जाते थे। इतने ही में अचानक हवासे पर्दा उड़ा तो गंगदत्त पर उसकी माताकी दृष्टि पड़ गयी। उसे देखते ही उसके बदनमें मानो आगसी लग गयी। उसने गंगदत्तके केश पकड़ कर उसे खूब मारनेके बाद घरसे बाहर निकाल कर वह उसे एक मोरी में ढकेल आयी।

महामति सेठ और ललितको इससे बड़ाही दुःख हुआ। उन्होंने चुपचाप उसे मोरीसे निकाल कर नहलाया धुलाया और अनेक प्रकारसे उसे सान्त्वना दी। इसके बाद वे फिर उसे उसी मकानमें चुपचाप रख आये।

इस घटनाके कुछ दिन बाद वहाँपर कई साधुओंका आगमन हुआ। सेठने उनका आदर सत्कार कर, उनसे गंगदत्त और उसकी माताका हाल निवेदन करके पूछा :—"हे भगवन्! गंगदत्तकी माता उससे इतना वैर क्यों रखती है?"

इस प्रश्नके उत्तरमें एक साधुने कहा :—"ललित और गंगदत्त पूर्वजन्ममें सगे भाई थे। ललित बड़ा और गंगदत्त छोटा था। एकबार वे दोनों गाड़ी लेकर जंगलमें काष्ठ लेने गये वहाँसे गाड़ीमें काष्ठ भरकर जब वे लौटे, तो मार्गमें एक स्थानपर बड़े भाईको एक नागिन दिखलायी दी। उस समय छोटा भाई गाड़ी हाँक रहा था। इसलिये बड़े भाईने उसे पुकारकर उसका ध्यान उस नागिन की ओर आकर्षित किया और उसे बचा देनेको कहा। यह सुनकर नागिन बहुतही प्रसन्न हुई और उसे उन दोनों पर विश्वास जमगया। परन्तु छोटा भाई कुटिल प्रकृतिका था, इसलिये उसने उसके ऊपरसे गाड़ी निकाल दी। इससे वह नागिन वहीं कुचल कर मर गयी। इस जन्ममें वही नागिन तुम्हारी स्त्री हुई है। वह बड़ा भाई, जिससे उस जन्ममें उसकी रक्षा की थी, इस जन्ममें ललित हुआ है और वह अपनी माताको अत्यन्त प्यारा है। छोटा भाई गंगदत्त हुआ है। उसने उस जन्ममें नागिनका प्राण लिया था, इसलिये इस जन्ममें उसकी माता उससे वैर रखती है। इस प्रकार हे सेठ!

स्नेह और वैर पूर्वजन्मके कर्मोंसे ही उत्पन्न होते हैं, अकारण नहीं।

साधुके यह वचन सुनकर सेठ और ललितको बड़ाही दुःख हुआ। उन्हें इस संसारकी विचित्रता देखकर वैराग्य आ गया और उन दोनोंने उसी समय दीक्षा ले ली। मृत्युके बाद वे दोनों महाशुक्र देवलोकमें गये और वहाँपर स्वर्गीय सुख उपभोग करने लगे। इधर गंगदत्तने भी माताकी अनिष्टताका स्मरण कर विश्ववल्लभ होनेका निदान किया। मृत्यु होने पर वह भी उसी महाशुक्र देवलोकका अधिकारी हुआ।

ललितका जीव देवलोकसे च्युत होने पर वसुदेव की पत्नी रोहिणीके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। जिस दिन वह रोहिणीके गर्भमें आया, उस दिन पिछली रातमें रोहिणीने एक स्वप्न देखा था, जिसमें उसे ऐसा मालूम हुआ था, मानो गज, सिंह, चन्द्र और समुद्र—यह चारों उसके मुखमें प्रवेश कर रहे हैं। यह स्वप्न बहुत अच्छा और पुत्र-जन्मका सूचक था। इसलिये गर्भकाल पूर्ण होने पर रोहिणीने सचमुच चन्द्रके समान एक

सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। पश्चात् मागध आदिने बड़ी धूमधामसे उसका जन्मोत्सव मनाया। वह बालक सबको प्यारा मालूम होता था, इसलिये वसुदेवने उसका नाम राम रक्खा। यही राम आगे चलकर बलराम और बलभद्रके नामसे विख्यात हुआ। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो वसुदेवने उसकी शिक्षा दीक्षाके लिये एक आचार्य नियुक्त कर दिया। रामने उसके निकट रहकर थोड़े ही दिनोंमें समस्त विद्या तथा कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली।

एकदिन राजा समुद्र विजय अपनी राज-सभामें बैठे हुए थे। उस समय वसुदेव और कंस आदि भी वहींपर उपस्थित थे। इतने ही में वहाँ नारदमुनि आ पहुँचे। उनको देखकर राजा तथा समस्त सभा खड़ी हो गयी। राजाने उनको ऊँचे आसन पर बैठा कर पूजनादि द्वारा उनका बड़ाही सत्कार किया। इससे नारदमुनि बहुतही प्रसन्न हुए और राजाको आशीर्वाद दे वहाँसे अन्यत्र प्रस्थान कर गये।

नारदमुनिका यह आदर सत्कार देखकर कंसको

बड़ाही आश्चर्य हुआ और उसने उनके चले जाने पर समुद्रविजयसे उनका परिचय पूछा। समुद्रविजयने कहा :—"प्राचीनकालमें इस नगरके बाहर यज्ञयशा नामक एक तापस रहता था। उसके यज्ञदत्ता नामक एक भार्या और सुमित्र नामक एक पुत्र भी था। सुमित्रकी पत्नीका नाम सोमयशा था। जृंभक देवताओंमेंसे कोई देवता च्युत होकर उसीके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ और उसीका नाम नारद पड़ा।

जिन तापसोंके यहाँ नारदका जन्म हुआ था, वे एक प्रकार का व्रत किया करते थे। उस व्रतकी विधि यह थी कि एकदिन उपवास करना और दूसरे दिन जंगल में जाकर फलों द्वारा पारण करना। एकदिन वे लोग नारदको एक अशोक वृक्षके नीचे बैठा कर पारणके लिये फल लेने चले गये। इसी समय उधरसे जृंभक देवता आ निकले और उस सुन्दर बालकको अशोक वृक्षके नीचे अकेला देखकर उसके पास खड़े हो गये। इसके बाद अवधिज्ञानसे उन्हें जब यह मालूम हुआ कि पूर्व जन्ममें वह भी जृंभक देवता और उनका एक मित्र था,

तब उन्होंने उस वृक्षकी छायाको स्थिर बना दिया, जिससे उस पर धूप न आ सके।

इतना कर जृंभक देवता उस समय तो अपने काममें चले गये, किन्तु काम निपटाकर जब वे उधरसे फिर लौटे तो उस समय भी उस बालकको उन्होंने उसी स्थानमें पाया। स्नेहवश वे इस बार उसे वैताढ्य पर्वत पर उठा ले गये। वहाँपर एक गुफामें उन्होंने उसे पाल-पोस कर बड़ा किया। जब उसकी अवस्था आठ वर्षकी हुई, तब उन्होंने उसे प्रज्ञप्ति आदि विद्याओंकी शिक्षा दी। इसके बाद वही बालक बड़ा होने पर नारदमुनिके नामसे विख्यात हुआ। नारदमुनि अपनी विद्याओंके बल आकाशमें विचरण करते हैं। वे इस अवसर्पिणीमें नवें नारद और चरम शरीरी हैं। नारद की उत्पत्तिका यह हाल मुझे त्रिकालज्ञानी सुप्रतिष्ठ मुनिने बतलाया था। नारद मुनि स्वभावसे कलह प्रिय हैं। यदि कोई उनकी अवज्ञा करता है, तो वे रुष्ट हो जाते हैं। शायद इसी कारणसे उनकी सर्वत्र पूजा होती है। उनकी एक विशेषता यह भी है कि वे कहीं भी एक स्थानमें स्थिर

नहीं रहते। नारदकी बाल्यावस्थामें जृंभक देवताओंने जिस अशोककी छाया स्थिर कर दी थी, वह उस समयसे पृथ्वीपर छाया वृक्षके नामसे सम्बोधित किया जाता है।" यह वृत्तान्त सुनकर कंस चकित हो गया।

तदनन्तर समुद्रविजयके यहाँ कुछकाल रहनेके बाद कंस अपनी राजधानी मथुरा नगरीको चला गया था। एकबार उसने वहाँसे वसुदेवको मथुरा आनेके लिये निमन्त्रित किया। इसलिये वसुदेव समुद्रविजयकी आज्ञा प्राप्तकर वहाँ गये। कंस और उसकी पत्नी जीवयशाने उनका बड़ाही आदर सत्कार किया। इसके बाद एकदिन मौका देखकर कंसने कहा :—"हे मित्र! मृत्तिकावती नामक नगरीमें मेरे काका देवक राज करते हैं। उनके देवकी नामक एक कन्या है। आप उससे विवाह कर लीजिये। मैं आपका अनुचर हूँ, इसलिये मुझे विश्वास है कि आप मेरी यह प्रार्थना अमान्य न करेंगे।"

वसुदेवने कंसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, इसलिये उनको अपने साथ लेकर कंसने मृत्तिकावती नगरीके लिये

प्रस्थान किया। संयोगवश मार्गमें नारद मुनि मिल गये। उन्होंने उनसे पूछा :—"तुम दोनों जन कहाँ जा रहे हो?"

वसुदेवने कहा :—"कंसकी इच्छानुसार मैं देवक राजाकी देवकी नामक कन्यासे विवाह करने जा रहा हूँ।"

नारदने कहा :—"कंसने इस काममें मध्यस्थ बनकर बहुतही उत्तम कार्य किया है। हे वसुदेव! जिस प्रकार पुरुषोंमें तुम सर्वश्रेष्ठ हो, उसी प्रकार स्त्रियोंमें देवकी शिरमौर है। मालूम होता है, कि विधाताने यह अद्भुत जोड़ मिलानेके लिये ही तुम दोनोंको उत्पन्न किया था। यदि तुम देवकीसे विवाह कर लोगे, तो उसके सामने तुम्हें विद्याधरियाँ भी तुच्छ मालूम देने लगेंगी। इस विवाहमें कोई विघ्न बाधा न हो, इसलिये मैं अभी देवकीके पास जाता हूँ और उसे तुम्हारे गुण सुनाकर, तुम्हींसे विवाह करनेके लिये उसे समझा आता हूँ।"

इतना कह नारद उसी समय आकाश मार्ग द्वारा

देवकीके घर जा पहुँचे। देवकीने उनका आदर सत्कार कर यथाविधि उनका पूजन किया। इसपर नारदने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा :—"हे कुमारी! मैं आशीर्वाद देता हूँ, कि तुम्हारा विवाह वसुदेवके साथ हो!"

देवकीने सकुचाते हुए पूछा :—"भगवन्! वसुदेव कौन हैं?"

नारदने कहा :—"कामदेवको भी लज्जित करनेवाले, युवक शिरोमणि, विद्याधरियोंके प्रिय पात्र, दसवें दशार्ह वसुदेवका नाम क्या तुमने नहीं सुना? उसका नाम तो बच्चे तक जानते हैं। हे सुन्दरि! आज संसारमें दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो रूप और सौभाग्यमें उसके सामने ठहर सके। इसीलिये तो देवता भी उससे ईर्ष्या करते हैं।"

इतना कह नारद मुनि अदृश्य हो गये। किन्तु उनकी बातोंसे देवकीके हृदयमें वसुदेवने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। वह मन-ही-मन उनपर अनुरक्त हो गयी और उन्हींके ध्यानमें रात दिन निमग्न रहने लगी।

कुछ ही दिनोंमें वसुदेव और कंस भी वहाँ जा

पहुँचे। देवक राजाने उनका बड़ा सत्कार किया और उच्च आसन पर बैठाकर उनके आगमनका कारण पूछा। इसपर कंसने कहा :—"राजन्! वसुदेव मेरे स्वामी और मित्र हैं। मेरी इच्छा है कि इनसे आप देवकीका व्याह कर दें। इसके लिये इनसे बढ़कर दूसरा पति और कौन हो सकता है?"

देवकने मुस्कुरा कर कहा :—"आज तक मैंने कन्याके यहाँ इस तरह पतिको जाते नहीं देखा। आपने यह विरुद्धाचरण क्यों किया? खैर, देवकी या उसकी मातासे पूछे विना इस सम्बन्धमें मैं कोई बात नहीं कह सकता।"

देवकका यह उत्तर सुनकर कंस और वसुदेव अपने तम्बूमें लौट आये। पश्चात् देवक राजसभासे उठकर अपने अन्तःपुरमें गया। वहाँ उसने रानीसे कहा :—"आज कंसने देवकीका व्याह वसुदेवसे कर देनेके लिये मुझे प्रार्थना की थी किन्तु मैंने इन्कार कर दिया है। देवकी मुझे प्राणसेभी बढ़कर प्यारी है। यदि मैं इसका व्याह अभीसे कर दूँगा, तो मेरे लिये इसका वियोग असह्य हो जायगा।"

यह सुनकर रानी और देवकी उदास हो गयी। देवकीके नेत्रोंमें तो आँसू तक भर आये। रानीने कहा :—"आपको इन्कार न करना चाहिये था। देवकीकी अवस्था विवाह करने योग्य हो चुकी है। उसका वियोग तो किसी न किसी दिन हमें सहना ही होगा। जब आपको घर बैठे वसुदेव जैसा वर मिल रहा है, तो इस सुयोगसे आपको अवश्य लाभ उठाना चाहिये।"

देवकने कहा :—"मैं तो उपहास कर रहा था। अभी मैंने उसको कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया है। यदि तुम्हें यह सम्बन्ध पसन्द है, तो मैं भी कदापि इन्कार न करूँगा।"

इस प्रकार सबकी राय मिल जाने पर देवकने मन्त्रीको भेज कर कंस और वसुदेवको अपने महलमें बुला लिया और शुभ मुहूर्त्तमें बड़े समारोहके साथ वसुदेवसे देवकीका विवाह कर दिया। दहेजमें देवकने बहुतसा सुवर्ण, अनेक रत्न और कोटि गायों सहित दस गोकुलके स्वामी नन्दको प्रदान किया। विवाह कार्य

कि उनका पुत्र सकुशल नन्दके घर पहुँच गया और कंसके हाथसे अब उसे हानि पहुँचनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

कुछ देर बाद उस कन्याने रोदन किया। उसे सुनकर समस्त प्रहरी उठ बैठे। वे उसी समय उस बालिकाको कंसके पास उठा ले गये। कंस उसे देखकर विचारमें पड़ गया। मुनिराजने तो कहा था, कि देवकीके सातवें गर्भसे मेरी मृत्यु होगी, किन्तु यह तो एक बालिका है। यह मेरा नाश करनेमें कैसे समर्थ हो सकती है। मालूम होता है कि मुनिराजने कोरी धमकी ही दी थी। इस बालिकाकी हत्यासे मुझे क्या लाभ होगा?—इस प्रकार विचार कर कंसने उस बालिकाकी हत्याका विचार छोड़ दिया और केवल उसकी नासिका काटकर उसे देवकीको वापस दे दिया।

वसुदेवके जो पुत्र उत्पन्न हुआ था और जिसे वे रातोरात नन्दके यहाँ छोड़ आये थे, उसका वर्ण श्याम होनेके कारण उसका नाम कृष्ण पड़ा। यद्यपि प्रत्यक्ष रूपसे नन्द और यशोदा ही उसका लालन-पालन

करते थे, किन्तु परोक्ष रूपसे अनेक देव-देवियाँ भी उसकी रक्षाके लिये सदा उद्यत रहते थे।

कृष्णके जन्मको एक मास होने पर देवकीने उसे देखनेके लिये गोकुल जानेकी इच्छा प्रकट की। वसुदेवने कहा :—"प्रिये! तुम वहाँ सहर्ष जा सकती हो, किन्तु यदि तुम विना किसी कारणके अनायास वहाँ जाओगी, तो कंसको सन्देह हो जायेगा। इसलिये हे सुभगे! वहाँ कोई निमित्त दिखलाकर जाना उचित होगा। मेरी राय तो यह है कि तुम नगरकी अनेक स्त्रियोंको साथ लेकर, गो-पूजन करती हुई गोकुल पहुँच जाओ और गो-पूजनके ही बहाने पुत्रको देखकर वहाँसे तुरंत लौट आओ!"

वसुदेवकी यह सलाह देवकीको पसन्द आ गयी, इसलिये उन्होंने वैसा ही किया। यशोदाकी गोदमें अपने लालनको—उस लालनको, कि जिसका हृदय श्रीवत्ससे शोभित है, जिसकी कान्ति मरकत रत्नके समान है, जिसके हाथ पैरमें चक्रादिके लक्षण हैं, विकसित कमल समान जिसके लोचन हैं, देखकर देवकीका हृदय आनन्द

विभोर हो गया। उन्होंने उसे अपनी गोदमें लेकर खेलाया, उसका दुलार किया और बारंबार उसे हृदयसे लगाकर अपने प्रेमावेशको शान्त किया। कृष्णको अपनी गोदसे उतारने की उन्हें मानो इच्छा ही न होती थी, परन्तु लाचारी थी, इसलिये वे उसे वहीं छोड़कर अपने वासस्थानको लौट आयीं। परन्तु उस दिनसे पुत्र वियोग सहन करना उनके लिये असम्भव हो पड़ा, इसलिये वे गो-पूजनके बहाने रोज एकबार गोकुल जाने लगी। उसी समयसे गो-पूजनकी प्रथा प्रचलित हुई, जो आजतक इस देशमें सर्वत्र प्रचलित है।

परन्तु वसुदेवके शत्रुओंको इससे भला शान्ति कैसे मिल सकती थी? सूर्पकके शकुनी और पूतना नामक दो पुत्रियाँ थी। वे अपने पिताकी प्रेरणासे उसका बदला लेनेको तैयार हुईं। एकदिन कृष्ण एक गाड़ीके पास अकेले खेल रहे थे। संयोगवश उस समय नन्द या यशोदा—दो में से एक भी वहाँ उपस्थित न थे। इसी समय वह दोनों विद्याधरियाँ कृष्णके पास आ पहुँची और कृष्णको मार डालनेका मौका देखने लगीं। कुछ

देरमें श्रीकृष्ण जब खेलते खेलते उस गाड़ीके नीचे पहुँचे, तब शकुनी उस गाड़ी पर चढ़ गयी और उन्हें उसके नीचे दबाकर मार डालनेकी चेष्टा करने लगी। यह देख-कर श्रीकृष्ण वहाँसे बाहर सरक आये। बाहर पूतना उनके लिये तैयार खड़ी थी। वह कृष्ण को गोदमें लेकर उन्हें अपना जहर से भरा हुआ स्तन पिलाने लगी। परन्तु उसकी भी यह चाल बेकार हो गयी। कृष्णकी रक्षा करनेके लिये जो देवता सदैव उपस्थित रहते थे, उन्होंने इसी समय उस गाड़ी द्वारा प्रहार कर उन दोनोंकी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

इस घटनाके कुछ देर बाद वहाँ नन्द आ पहुँचे। सबसे पहले उनकी दृष्टि उस गाड़ी पर जा पड़ी, जो शकुनि और पूतना पर प्रहार करनेसे चूर चूर हो गयी थी। इसके बाद उन्होंने रक्तलोचनवाली राक्षसी समान उन दोनों विद्याधरियोंको देखा, जिनके प्राण-पखेरू तन-पिञ्जरको वहीं छोड़कर न जाने कहाँ प्रयाण कर गये थे। यह सब देखते ही नन्दके प्राण सूख गये। किसी अज्ञात शंकासे उनका हृदय काँप उठा। वे अपने मनमें

कहने लगे—"मालूम होता है कि आज श्रीकृष्णकी खैर नहीं।" उन्होंने उसी समय उनकी खोज की। वे कहीं खेल रहे थे। उनको सकुशल देखकर नन्दके मृत शरीरमें मानो फिरसे प्राण आ गये। पूछताछ करने पर उन्हें ग्वाल-बालोंने बतलाया कि "कृष्णने ही उस गाड़ीको तोड़ डाला था और उन्हींने उन राक्षसियोंको मारकर अपनी प्राण रक्षा की थी!"

नन्दने बड़े आश्चर्यके साथ यह समाचार सुना। उन्होंने श्रीकृष्णका समूचा शरीर टटोल कर देखा कि उन्हें कहीं चोट तो नहीं आयी है। इसी समय वहाँ यशोदा आ पहुँची। श्रीकृष्णको अकेला छोड़नेके लिये नन्दने उनको सख्त उलाहना देते हुए कहा :—"प्यारी! तुमने आज कृष्णको अकेला क्यों छोड़ दिया? तुम्हारे ऐसे कामका परिणाम किसी समय बहुत ही भयानक हो सकता है। देखो, आज ही भगवानने इसकी रक्षा न की होती तो न जाने क्या हो गया होता! चाहे जितना नुकसान हो रहा हो, घीके घड़े

ही क्यों न लुढ़के जा रहे हों, परन्तु कृष्णको अकेला छोड़कर तुम्हें कहीं न जाना चाहिये।"

यशोदा भी उस गाड़ी और विद्याधरियोंको देखकर सहम गयीं। उन्होंने बड़े प्रेमसे कृष्णको अपनी गोदमें उठाकर उनके शरीर की जांच की। जब उन्हें विश्वास हो गया, कि कृष्णको कहीं चोट नहीं आयी, तब उनका हृदय शान्त हुआ। उन्होंने बारंबार कृष्णके कपोल पर चुम्बन कर उन्हें गलेसे लगा लिया। इस दिनसे वे कृष्णको बड़े यत्नसे रखने लगीं। अपनी समझमें वे उन्हें कभी अकेला न छोड़ती थीं, परन्तु कृष्ण बहुत ही उत्साही और चञ्चल प्रकृतिके बालक थे, इसलिये वे मौका मिलतें ही यशोदाकी नजर बचाकर इधर उधर निकल जाया करते थे।

कृष्णकी इस आदतसे यशोदा बहुत आजिज आ गयीं। एकदिन उन्हें कार्यवश अपनी पड़ोसिनके यहाँ जाना था। वे जानती थीं, कि कृष्ण घरमें बैठनेवाले जीव नहीं हैं, इसलिये उन्होंने उनकी कमरमें एक रस्सी बाँधकर, उस रस्सीका दूसरा छोर एक बहुत बड़े

ऊखलसे बाँध दिया। इतना करने पर उन्हें विश्वास हो गया कि कृष्ण अब उस स्थानको छोड़कर और कहीं नहीं जा सकते, इसलिये वे पड़ोसिनके यहाँ चली गयीं। श्रीकृष्णको अकेले देखकर उसी समय सूर्पकका पुत्र अपने दादाका बदला चुकानेके लिये वहाँ आ पहुँचा। उसने श्रीकृष्णके दोनों ओर दो अर्जुनके वृक्ष उत्पन्न किये। इसके बाद कृष्णको ऊखल समेत पीस डालनेके लिये वह विद्याधर उन्हें उन दोनों वृक्षोंके बीचमें ले गया। परन्तु उसके कुछ करनेके पहले ही, कृष्णकी रक्षाके लिये वहाँ जो देवता नियुक्त था, उसने उन दोनों वृक्षोंको उखाड़ डाला और उस विद्याधरको मारकर वहाँसे खदेड़ दिया। उस समय वहाँ कोई उपस्थित न था, किसीको भी यह भेद मालूम न हो सका।

थोड़ी देरमें कुछ ग्वाल-बाल खेलते हुए वहाँ आ पहुँचे, उन्होंने उन वृक्षोंको देखकर समझा कि कृष्णने ही उन वृक्षोंको उखाड़ डाला है। वे तुरन्त यशोदाके पास दौड़ गये। उन्होंने यशोदासे कहा :—"कृष्णने

दो वृक्षोंमें ऊखल फँसाकर उन्हें उखाड़ डाला है।" यशोदा यह आश्चर्यजनक संवाद सुनकर उसी समय वहाँ आ पहुँची। नन्द भी कहींसे दौड़ आये। कृष्णको सकुशल देखकर उनके आनन्दका वारापार न रहा। उन्होंने धूलि धूसरित कृष्णको गलेसे लगाकर वारंवार उनके मस्तक पर चुम्बन किया। उस दिन कृष्णके उदरमें दाम (रस्सी) बांधा गया था, इसलिये उस दिनसे सब ग्वाल-बाल कृष्णको दामोदर कहने लगे।

श्रीकृष्ण गोप गोपियोंको बहुत ही प्यारे थे, इसलिये वे उन्हें रात दिन गोदमें लिये घूमा करती थीं। ज्यों ज्यों वे बड़े होते जाते थे, त्यों त्यों उनके प्रति लोगोंका स्नेह भी बढ़ता जाता था। कृष्णका स्वभाव बहुत ही चञ्चल था, इसलिये जब वे कुछ बड़े हुए, तब गोपियोंकी मटकियोंसे दूध दही उठा लाने लगे, ऐसा करते समय वे कभी कभी उनकी मटकियाँ भी फोड़ डालते थे, तथापि गोपियाँ उनसे असन्तुष्ट न होती थीं। वे चाहे बोलते चाहे मारते, चाहे दही-मक्खन खा जाते, चाहे कोई नुकसान कर डालते, किन्तु हर

हालतमें नन्द, यशोदा और समस्त गोपगोपियाँ उनसे प्रसन्न ही रहते थे! उनकी बाललीलामें, उनके क्रीड़ा कौतुकोंमें कोई किसी प्रकारकी बाधा न देते थे, बल्कि उनके प्रेमके कारण, सब लोग मन्त्र-मुग्धकी भाँति उनके पीछे लगे रहते थे।

धीरे धीरे कृष्णके अतुल पराक्रम—शकुनि और पूतनाको मारने, शकट तोड़ने और अर्जुन वृक्षोंको उखाड़ डालनेकी बात चारों ओर फैल गयी। जब यह बातें वसुदेवने सुनी, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हो गयी। वे अपने मनमें कहने लगे:—"मैं अपने पुत्रको छिपानेके लिये नन्दके यहाँ छोड़ आया था, परन्तु अब वह अपने बलसे प्रकट होता जा रहा है। यदि कंसको उसपर सन्देह हो जायगा, तो वह उसका अमंगल किये बिना न रहेगा। इसके लिये पहलेहीसे सावधान हो जाना उचित है। यदि कृष्ण की रक्षाके लिये मैं अपने किसी पुत्रको उसके पास भेज दूं तो बहुत ही अच्छा हो सकता है। परन्तु अक्रूरादि पुत्रोंको तो क्रूर मति कंस जानता है, इसलिये उन्हें भेजना

ठीक नहीं। रामको वह नहीं पहचानता, अतः उसे वहाँपर जानेका आदेश दिया जा सकता है।

इस प्रकार विचार कर वसुदेवने कोशला नगरीसे रामसहित रोहिणीको बुलाकर उन्हें शौर्यपुर भेज दिया। इसके बाद एक दिन रामको बुलाकर, उनको सब मामला समझा, उन्हें भी नन्द और यशोदाके हाथोंमें सौंप, पुत्रकी ही भाँति रखनेका अनुरोध किया। नन्द और यशोदाने इसमें कोई आपत्ति न की। उन्होंने कृष्णकी भाँति रामको भी पुत्ररूपमें अपना लिया।

राम और कृष्ण—दोनों भाई दस धनुष ऊँचे और देखनेमें अत्यन्त सुन्दर थे। वे जिधर खेलनेके लिये निकल जाते, उधरकी ही गोपिकाएं सारा कामकाज छोड़कर, उनको देखनेमें लीन हो जाती थीं। कृष्ण जब कुछ बड़े हुए, तब नन्दने उनको शिक्षाके उपकरण देये और वे रामके निकट धनुर्वेद तथा अन्यान्य लाओं की शिक्षा प्राप्त करने लगे। राम और कृष्ण भी एक दूसरेके भाई, कभी मित्र और कभी गुरु शिष्य नते। वे खाते पीते, उठते बैठते, सोते जागते, खेलते

कूदते सदा एक दूसरेके साथ ही रहते। यदि एक क्षणके लिये भी कोई किसीसे अलग हो जाता तो वह उनके लिये असह्य हो पड़ता था।

कृष्ण बहुत ही बलवान थे। उनके शरीरमें कितना बल है, इसकी कभी किसीको थाह न मिलती थी। बीच बीचमें वे ऐसे कार्य कर दिखाते थे, जिससे लोगोंको दांतों तले उंगली दबानी पड़ती थी। बड़े बड़े उत्पाती वृषभोंको, जिन्हें कोई काबूमें न कर सकता था उन्हें वे केवल पूँछ पकड़ कर खड़े कर देते थे। ऐसे ऐसे कार्य उनके लिये बाँये हाथके खेल थे। अपने भाईके यह सब कार्य देखकर रामको बड़ा ही आनन्द और आश्चर्य होता था, परन्तु वे अपने मुखसे कुछ भी न कहकर, उदासीनकी भाँति सब कुछ देखा करते थे।

धीरे धीरे कृष्णकी अवस्था जब कुछ बड़ी हुई, तब उनका अलौकिक रूप देखकर गोपियोंके हृदयमें काम-विकार उत्पन्न होने लगा। वे जब तब कृष्णको अपने बीचमें बैठाकर रास और वसन्त क्रीड़ा करने लगतीं। जिस प्रकार भ्रमर दल एक क्षणके लिये भी

कमलसे अलग नहीं होता, उसी प्रकार गोपियाँ भी कृष्णसे कभी अलग न होती। कृष्णको देखते ही उनकी पलकोंका गिरना बन्द हो जाता, उनकी दृष्टि स्थिर बन जाती और उनकी जिह्वा भी कृष्णका ही जप करने लगतीं। कभी कभी वे कृष्णके ध्यानमें इसप्रकार तन्मय बन जातीं, कि उन्हें सामने रक्खे हुए पात्रोंका भी ध्यान न रहता और वे अनेकबार भूमिपर ही गायोंको दुह देतीं। कृष्ण सदा दीन-दुःखियोंकी आततायियोंसे रक्षा करनेके लिये प्रस्तुत रहते थे, इसलिये कृष्णको अपने पास बुलानेके लिये अनेकबार गोपियाँ भीत और त्रस्त मनुष्योंकी भाँति झुठ-झुठ चीत्कार कर उठती थीं। कृष्ण जब उनके पास जाते तब वे हँस पड़तीं और तरह तरहसे अपना प्रेम व्यक्त कर, अपने हृदयको शान्त करतीं।

कभी कभी गोपियाँ निर्गुण्डी आदि पुष्पोंकी माला बनातीं और कृष्णके कण्ठमें उसे जयमालकी भाँति पहना कर आनन्द मनातीं। कभी वे गीत और नृत्यादिक द्वारा कृष्णका मनोरंजन करतीं और उनके

शिक्षा वचन सुनकर अपने कर्णोंको पावन करतीं। कृष्ण समस्त गोपोंके अग्रणी थे, इसलिये उन्हें गोपेन्द्रके नामसे भी सम्बोधित करती थीं। जिस समय कृष्ण मोरपंख धारण कर मधुर स्वरसे मुरली बजाते, उस समय गोपियोंका हृदय भी थिरक थिरक कर नाचने लगता। कभी कभी गोपियाँ कृष्णसे कमल ला देनेकी प्रार्थना करतीं और वे उन्हें लाकर देते। गोपियाँ इससे बहुत ही सन्तुष्ट रहती थीं। कभी कभी वे मधुर शब्दोंमें रामको उलाहना देते हुए कहने लगतीं :—"हे राम! तुम्हारा भाई ऐसा है कि यदि हम उसे देख लेती हैं, तो वह हमारा चित्त हरण कर लेता है और यदि हम उसे नहीं देखतीं, तो वह हमारा जीवन ही नष्ट कर देता है।"

कभी कभी कृष्ण पर्वतके शिखर पर चढ़ जाते और वहाँसे वंशी बजाकर रामका मनोरंजन करते थे। कभी कभी कृष्ण नृत्य करते, गोपियाँ गायन गातीं और राम तबलचीकी भाँति हस्ताल देते थे। इस प्रकार विविध क्रीड़ा करते हुए राम और कृष्णके ग्यारह वर्ष देखते ही देखते सानन्द व्यतीत हो गये।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

नेमिनाथ भगवानका जन्म

उधर शौर्यपुर नगरमें समुद्रविजय राजाकी शिवादेवी रानीने एकदिन प्रभातके समय गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कुम्भ, पद्मसरोवर सागर, देवविमान, रत्नपुञ्ज और निर्धूम अग्नि—यह चौदह महास्वप्न देखे। उसदिन कार्तिक कृष्ण द्वादशी और चित्रा नक्षत्र था। उस नक्षत्रसे चन्द्रमाका योग होने पर अपराजित अनुत्तर विमानसे शंखका जीव च्युत होकर शिवादेवीके उदरमें आया। उस समय तीनोंलोक प्रकाशित हो उठे और अन्तर्मुहूर्त्त तक नारकीय जीवोंको भी सुख हुआ। तीर्थंकरोंके जन्मके समय इतना तो अवश्य ही होता है।

स्वप्न देखते ही शिवादेवीकी निद्रा टूट गयी। उन्होंने तुरन्त शैय्या त्यागकर अपने पतिसे इन स्वप्नोंका

यह चौदह महास्वप्न देखे ।

हाल कह सुनाया। राजाने उनका फल जाननेके लिये एक क्रोष्टुकि नामक स्वप्न पाठक को बुला भेजा। उसी समय अचानक एक मुनिराज भी वहाँ आ गये। राजाने उन दोनोंका सत्कार कर उनसे उस स्वप्नका फल पूछा। इसपर मुनिराजने कहा :—"हे राजन्! यह स्वप्न बहुत ही उत्तम है। तुम्हारी रानी एक ऐसे पुत्रको जन्म देगी, जो तीनों लोकका स्वामी तीर्थंकर होगा।"

यह स्वप्न-फल सुनकर राजा और रानी बहुत ही प्रसन्न हुए। रानी उस दिनसे रत्नकी भाँति यत्नपूर्वक उस गर्भकी रक्षा करने लगीं। उस गर्भके प्रभावसे रानीके अंगप्रत्यङ्गका लावण्य और सौभाग्य बढ़ गया। गर्भकाल पूर्ण होनेपर शिवादेवीने श्रावण शुक्ल पञ्चमीके रात्रिके समय चित्रा नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका योग होने पर एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उसके शरीरकी कान्ति मरकत रत्नके समान और देह शंख लाञ्छनसे सुशोभित हो रही थी। राजा और रानीके नेत्र इस पुत्र-रत्नको देखते ही मानो शीतल और तृप्त हो गये।

इस पुत्रका जन्म होते ही छप्पन दिशिकुमारिकाओंने

अपने अपने स्थानसे आकर शिवादेवीका प्रसूति-कर्म किया। इसके बाद पञ्चरूप धारण कर सौधर्मेन्द्र भी वहाँ आये। उन्होंने एक रूपसे प्रभुका प्रतिबिम्ब माताके पास रखकर, उन्हें अपने हाथोंमें उठा लिया, और दो रूपोंसे दोनों ओर दो चमर, तथा एकसे छत्र धारण किया, और पाँचवें रूपसे उनके आगे आगे वज्र उछालते हुए, उन्हें भक्ति-पूर्वक मेरु पर्वतके शिखर पर अति पाण्डुकंबला नामक शिला पर ले गये। वहाँ प्रभुको अपनी गोदमें स्थापित कर शक्रने एक सिंहासन पर स्थान ग्रहण किया और अच्युत आदि तिरसठ इन्द्रोंने भक्ति-पूर्वक भगवानको स्नान कराया। फिर शक्रेन्द्रने भी भगवानको ईशानेन्द्रकी गोदमें बैठा कर उन्हें विधि-पूर्वक स्नान कराया।

भगवानको स्नान करानेके बाद शक्रेन्द्रने दिव्य पुष्पों द्वारा उनकी पूजा और आरती की। इसके बाद हाथ जोड़कर उन्होंने इस प्रकार उनकी स्तुति की :—

"हे मोक्ष गामिन्! हे शिवादेवीकी कुक्षिरूपी सीपके मुक्ताफल! हे प्रभो! हे शिवादेवीके रत्न! आपके

द्वारा हमारा कल्याण हो ! हे बाईसवें तीर्थङ्कर ! मोक्ष सुख जिसके करतलमें है, जिसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान है, जो विविध लक्ष्मीके निधान रूप हैं, ऐसे आपको अनेकानेक नमस्कार है ! हे जगद्गुरु ! यह हरिवंश आज पवित्र हुआ, यह भारतभूमि भी आज पावन हुई, क्योंकि आप जैसे चरम शरीरी तीर्थाधिराजका इसमें जन्म हुआ है । । हे त्रिभुवन वल्लभ ! जिस प्रकार लता समूहके लिये मेघ आधार रूप होते हैं, उसी प्रकार संसारके लिये आप आधार रूप हैं। आप ब्रह्मचर्यके स्थान और ऐश्वर्यके आश्रय रूप हैं। हे जगत्पते ! आपके दर्शनसे भी प्राणियोंका मोह नष्ट होकर उन्हें दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति होती है। हे हरिवंशरूपी वनके लिये जलधर समान ! आप अकारण त्राता हैं, अकारण वत्सल हैं और अकारण समस्त जीवोंके पालन करनेवाले हैं। हे प्रभो ! आज भरत-क्षेत्र अपराजित विमानसे भी अधिक महिमावान बन गया है, क्योंकि लोगोंको सम्यक्त्व देनेवाले आपने इसमें जन्म लिया है। हे नाथ ! अब आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आपके

चरण मेरे मनरूपी मानस सरोवरमें राज-हंसकी भाँति सदा निवास करें और मेरी जिह्वा निरन्तर आपका गुणगान किया करे!"

इस प्रकार जगत् प्रभुकी स्तुति कर शक्रेन्द्र पुनः उन्हें शिवादेवीके पास उठा ले गये और उन्हें यथास्थान रख आये। इसके बाद भगवानके लिये पाँच अप्सराओंको धात्रीके स्थानमें नियुक्त कर, वे नन्दीश्वर की यात्रा कर अपने स्थानको वापस चले गये।

इसके बाद राजा समुद्रविजयने भी पुत्रके जन्मोपलक्षमें एक महोत्सव मनाया और अपने इष्टमित्र, सभाजन तथा आश्रितोंको दानादि द्वारा सम्मानित किया। जिस समय यह बालक गर्भमें आया, उस समय उसकी माताने पहले चौदह स्वप्न और बादको अरिष्ट रत्नकी चक्रधारा देखी थी, इसलिये राजाने उस बालकका नाम अरिष्टनेमि रक्खा। अरिष्टनेमिके जन्मका समाचार सुनकर वसुदेव आदि राजाओंको भी अत्यन्त आनन्द हुआ और उन्होंने भी मथुरा नगरीमें बड़ी धूमके साथ उसका जन्मोत्सव मनाया।

बारहवाँ परिच्छेद

कंस-वध

एकदिन देवकीको देखनेके लिये कंस वसुदेवके घर गया। वहाँपर उसने देवकीकी उस कन्याको देखा, जिसकी नासिका छेदकर उसने जीवित छोड़ दिया था। उसे देखकर कंसके हृदयमें कुछ भयका सञ्चार हुआ, इसलिये घर आने पर उसने एक अच्छे ज्योतिषीको बुलाकर उससे पूछा कि मुनिराजने जो यह कहा था कि "देवकीका सातवाँ गर्भ—तुम्हारा भाञ्जा—तुम्हारी मृत्युका कारण होगा, यह बात झूठ है या सच है?"

ज्योतिषीने कुछ सोच विचार कर कहा:—"हे राजन्! मुनिका वचन मिथ्या नहीं हो सकता। देवकीका सातवाँ गर्भ, जो तुम्हारी मृत्युका कारण होगा, कहीं न कहीं जीवित अवस्थामें अवश्य विद्यमान होगा। वह कहाँ है, यह जाननेके लिये तुम अपने अरिष्ट नामक

वृषभ, केशी नामक अश्व, दुर्दान्त गर्दभ तथा दुर्दमनीय मेषको वृन्दावनमें छोड़ दो और उन्हें स्वच्छन्द विचरण करने दो। जो इन चारोंको मारे, उसे ही देवकीका सातवाँ पुत्र समझना! निःसन्देह उसीके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी।"

कंसने पूछा—"क्या इसके अतिरिक्त उसकी और भी कोई पहचान है?"

ज्योतिषीने कहा—"हाँ, अवश्य है। आपके यहाँ शारंग नामक जो धनुष है, आपकी बहिन सत्यभामा जिसकी नित्य पूजा करती है, उसे जो चढ़ायेगा, वही आपके प्राणोंका घातक होगा। ज्ञानियोंका कथन है कि वह धनुष वासुदेवके सिवा और कोई धारण न कर सकेगा। इसके अतिरिक्त वही कालीयनागका दमन करेगा और चाणूर मल्ल तथा आपके पद्मोत्तर तथा चम्पक नामक हाथियों को मारेगा। जो यह सब कार्य करेगा, उसीके द्वारा आपकी भी मृत्यु होगी।

ज्योतिषीके यह वचन सुनकर कंसका हृदय भयसे काँप उठा। उसने अपने शत्रुको खोज निकालनेके

लिये उसी समय अरिष्ट आदिको वृन्दावनमें छोड़ दिया। अरिष्ट वास्तवमें बड़ाही भीषण पशु था। वह जहाँ जाता, वहाँके लोगोंको अत्यन्त दुःखित कर देता। मनुष्योंकी कौन कहे, बड़े-बड़े गाय बैलोंको भी वह अपने सींगोंसे पंककी भाँति उठाकर दूर फेंक देता था। यदि किसीके घरमें वह घुस जाता, तो वहाँसे किसी प्रकार भी निकाले न निकलता और दही दूध या घृतादिकके जो पात्र सामने पड़ते, उन्हें तोड़ फोड़ कर मिट्टीमें मिला देता।

एकदिन अरिष्ट घूमता घामता गोकुलमें जा पहुँचा और वहाँपर गोप-गोपियोंके घरमें घुसकर इसी तरहके उत्पात मचाने लगा। उसने किसीके बच्चोंको उठा पटका, किसीके गाय बैलोंको जख्मी कर डाला, किसीका घी दूध मिट्टीमें मिला दिया और किसी की खाद्य सामग्री नष्ट भ्रष्ट कर दी। उसके इन उत्पातोंसे चारों ओर हाहाकार मच गया। गोपियाँ दीन बन गयीं! वे दुःखित होकर राम और कृष्णको पुकारकर कहने लगीं :—"हे राम! हे कृष्ण! हमें बचाओ! इस आफतसे हमारी रक्षा करो!"

गोपियोंकी यह करुण पुकार शीघ्र ही राम और कृष्णके कानों में जा पड़ी। वे उसी समय उनकी रक्षाके लिये दौड़ पड़े। परन्तु बूढ़े मनुष्योंने उनको रोका। वे जानते थे कि अरिष्ट कंसका साँढ़ है। वह बड़ाही भयंकर है। एक तो उसे मारना ही कठिन है और यदि कोई किसी तरह उसे मारेगा भी, तो वह कंसका कोपभाजन हुए विना न रहेगा। इसलिये उन्होंने राम और कृष्णसे कहा :—"जो कुछ होता हो, होने दो! वहाँ जानेकी जरूरत नहीं। हमें घी दूध न चाहिये, गाय बैल न चाहिये, उनकी सब हानि हम बर्दाश्त कर लेंगे, परन्तु हम तुम्हें वहाँ न जाने देंगे। वहाँ जानेसे तुम्हारी खैर नहीं।"

परन्तु राम और कृष्ण ऐसी बातें सुनकर भला क्यों रुकने लगे? वे शीघ्र ही साँढ़के पास जा पहुँचे। कृष्णने उसे ललकारा। उनकी ललकार सुनते ही रोष पूर्वक अपने सींग और पूँछ उठाकर वह कृष्णकी ओर झपटा। कृष्ण भी तैयार खड़े थे। नजदीक आते ही उन्होंने उसके दोनों सींग पकड़ कर उसकी गर्दन

इस तरह ऐंठ दी, कि वह वहीं जमीन पर गिर पड़ा और उसकी जीवन लीला समाप्त हो गयी। अरिष्टकी इस मृत्युसे गोप गोपियोंको बड़ा ही आनन्द हुआ और वे देवताकी भाँति कृष्णकी पूजा करने लगे। कृष्ण पर अब तक उनका जो प्रेम था, वह इस घटनाके बाद दूना हो गया।

इसके बाद एकदिन कृष्ण अपने इष्ट-मित्रोंके साथ वनमें क्रीड़ा कर रहे थे। इसी समय कंसका वह केशी नामक अश्व वहाँ आ पहुँचा। उसके बड़े बड़े दाँत, काल समान शरीर और भयंकर मुख देखकर सब लोग भयभीत हो गये। वह छोटे छोटे बछड़ोंको मुखसे काटने और गाय बैलोंको लातोंसे मारने लगा। कृष्णने उसे कई बार खदेड़ा, परन्तु वह किसी प्रकार भी वहाँसे न गया। अन्तमें जब कृष्णने बहुत तर्जना की, तब वह मुख फैलाकर उन्हींको काटनेके लिये झपट पड़ा। उसके तीक्ष्ण दाँतोंको देखकर सबको शंका हुई, कि अब वह कृष्णको कदापि जीता न छोड़ेगा, परन्तु उसके समीप आते ही कृष्णने अपनी वज्र समान भुजा इतनी

तेजीके साथ उसके मुखमें डाल दी कि उसका मुख गर्दन तक फट गया और उसी पीड़ाके कारण तत्काल उसकी मृत्यु हो गयी। इसी प्रकार कंसके उस दुर्दान्त गर्दभ और मेषको भी कृष्णने क्षणमात्रमें मारकर गोकुल और वृन्दावनको सदाके लिये उनके भयसे मुक्त कर दिया।

इन सब बातोंका पता लगानेके लिये कंसके गुप्त चर सदैव चारों ओर विचरण किया करते थे। उन्होंने यथा समय कंसको इन सब घटनाओंकी सूचना दी। इससे कंसका सन्देह दूर हो गया और वह समझ गया, कि नन्दके यहाँ कृष्ण नामक जो बालक है, वही मेरा शत्रु है। फिर भी विशेष रूपसे इसकी परीक्षा करनेके लिये उसने एक उत्सवका आयोजन किया। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उसके यहाँ शारंग नामक एक धनुष था, जिसकी सत्यभामा पूजा किया करती थी। उसने उस धनुषको राजसभामें स्थापित कराया और सत्यभामाको वहीं बैठकर उसकी पूजा करनेका आदेश दिया। इसके बाद उसने चारों ओर घोषणा

करा दी कि जो शारंग धनुषको उठाकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, उसीके साथ मैं अपनी बहिन सत्यभामाका विवाह कर दूँगा।

सत्यभामा परम सुन्दरी रमणी थी। देखनेमें देवाङ्गनाओंको भी मात करती थी। उसके विवाहकी बात सुनते ही चारों ओरसे दूर दूरके राजे महाराजे वहाँ आ आकर अपना भाग्य आजमाने लगे। परन्तु उस धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाना तो दूर रहा, कोई उसको उसके स्थानसे तिल भर भी इधर उधर न कर सका। जो लोग आते थे, वे इसी तरह विफल हो होकर लौट जाते थे। मानो उस धनुषका चढ़ानेवाला इस धरा-धाममें उत्पन्न ही न हुआ था।

धीरे धीरे यह समाचार अनाधृष्टिके कानों तक जा पहुँचा। अनाधृष्टि वसुदेवका पुत्र था और मदन-वेगाके उदरसे उत्पन्न हुआ था। वह अपनेको बड़ा ही बलवान मानता था और इसके लिये उसे अभिमान भी था। उसने धनुष चढ़ानेका विचार किया और एक तेज रथ पर बैठकर शीघ्र ही मथुराके लिये प्रस्थान

किया। मार्गमें उसे गोकुल गाँव मिला। वह राम और कृष्णसे मिलनेके लिये वहाँ एक रात ठहर गया। उनसे बहुत दिनोंके बाद मुलाकात होनेके कारण वह अत्यन्त आनन्दित हुआ।

दूसरे दिन सुबह अनाधृष्टि वहाँसे मथुरा जानेको निकला। राम और कृष्ण प्रेमपूर्वक उसे नगरके बाहर पहुँचाने आये। अनाधृष्टिको मथुराका रास्ता मालूम न था, इसलिये उसने रामको तो बिदा कर दिया, किन्तु कृष्णको रास्ता दिखानेके लिये अपने साथ ले लिया।

मथुराका मार्ग बहुत ही संकीर्ण था और उसमें जहाँ तहाँ बड़े बड़े वृक्ष खड़े थे। गोकुलसे कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर अनाधृष्टिका रथ एक विशाल वट वृक्षमें फँस गया। अनाधृष्टिने उसे बाहर निकालनेकी बड़ी चेष्टा की, बहुत हाथ पैर मारे, किन्तु किसी तरह भी वह रथ बाहर न निकल सका। यह देखकर कृष्ण रथ परसे नीचे कूद पड़े और उन्होंने क्षणमात्रमें उस वृक्षको उखाड़ कर रथका रास्ता साफ कर दिया। कृष्णका यह बल देखकर अनाधृष्टिको बड़ाही आनन्द हुआ और उसने प्रेमपूर्वक

कृष्णको गलेसे लगा लिया। इसके बाद वे दोनों रथ पर बैठकर पुनः आगे बढ़े और क्रमशः यमुना नदी पार-कर निर्विघ्न रूपसे मथुरा जा पहुँचे।

मथुरा पहुँचनेके बाद दोनों जन यथा समय कंसकी राज-सभामें गये। उस समय भी वहाँपर अनेक राजे धनुष चढ़ानेके लिये उपस्थित थे। धनुषके पास ही साक्षात् लक्ष्मीके समान कमलनयनी सत्यभामा बैठी हुई थी। जो उसे देखता था, वही उस पर मुग्ध हो जाता था। सत्यभामाने भी कृष्णको देखा। देखते ही वह उनपर आशिक हो गयी। उसने मन-ही-मन अपना तनमन उनके चरणोंमें समर्पण कर दिया, साथही उसने भगवानसे प्रार्थना की कि :—"हे भगवन्! मैं कृष्णको अपना हृदय-हार बनाना चाहती हूँ। तुम उन्हें ऐसी शक्ति दो कि वे धनुष चढ़ानेमें सफलता प्राप्त कर सकें।"

इधर अनाधृष्टिने धनुष चढ़ानेकी तैयार की, परन्तु ज्योंहीं वह धनुषको उठाने गया, त्योंहीं उसका पैर बेतरह फिसल गया और वह ऊँटकी तरह मुँहके बल जमीन पर गिर पड़ा। इससे अनाधृष्टिका हार टूट गया,

केश, रोषपूर्ण लाल लाल नेत्र और मूर्तिमान दरिद्रताका सा भयंकर रूप देखकर वे सन्न हो गये। पूछताछ करने पर जीवयशाने अतिमुक्तक मुनिके आगमनसे लेकर कंसकी मृत्यु पर्यन्तका सारा हाल उन्हें कह सुनाया। सुनकर जरासन्धने कहा :—"हे पुत्री! कंसने आरम्भमें ही भूल की थी। उसे देवकीको मार डालना चाहिये था। न रहता बाँस न बजती बाँसुरी। यदि खेत न रहता तो नाज ही क्यों पैदा होता? परन्तु हे पुत्री! अब तू रुदन मत कर। मैं कंसके घातकोंको सपरिवार मारकर उनकी स्त्रियोंको अवश्य रुलाऊँगा। यदि मैंने ऐसा न किया, तो मेरा नाम जरासन्ध नहीं!"

इस प्रकार पुत्रीको सन्त्वना देनेके बाद जरासन्धने सोम नामक एक राजाको दूत बनाकर राजा समुद्र-विजयके पास मथुरा भेजा। उसने वहाँ जाकर उनसे कहा :—"हे राजन्! राजा जरासन्धने कहलाया है कि मेरी पुत्री जीवयशा मुझे प्राणसे भी अधिक प्यारी है। उसके कारण उसका पति भी मुझे वैसा ही प्यारा था। आप और आपके सेवक सहर्ष रह सकते हैं, परन्तु

कंसको मारने वाले इन राम और कृष्ण नामक क्षुद्र बालकोंको हमारे हाथोंमें सौंप दीजिये। देवकीका सातवाँ गर्भ तो कंसको देनेके लिये आपलोग पहलेहीसे बाध्य थे। खैर, तब न सही, अब उसे दे दीजिये। बलरामने कृष्णकी रक्षा की है, इसलिये वह भी अपराधी है!"

समुद्रविजयने उत्तर दिया :—"जरासन्ध हमारे मालिक हैं, परन्तु उनकी अनुचित आज्ञा हमलोग कैसे पालन कर सकते हैं? वसुदेवने अपनी सरलताके कारण देवकीके छः गर्भ कंसको सौंप दिये, सो उसने कोई अच्छा कार्य नहीं किया। बलराम और श्रीकृष्णने कंसको मारकर अपने उन्हीं भाइयोंका बदला लिया है, इसलिये वे अपराधी नहीं कहे जा सकते। यदि वसुदेव बाल्यावस्थासे स्वेच्छाचारी न होता और हमारी सम्मतिसे सब काम करता रहता, तो उसके छः पुत्र कंसके हाथसे कभी न मारे गये होते। अब तो यह बलराम और कृष्ण हमें प्राणसे भी अधिक प्रिय हैं। इनका प्राण लेनेके लिये इनकी याचना करना घोर अन्याय और

धृष्टता है। स्वामीकी यह आज्ञा हमलोग कदापि नहीं मान सकते।"

समुद्रविजयका यह उत्तर सुनकर सोमको क्रोध आ गया। उसने कहा :—"स्वामीकी आज्ञा पालन करनेमें सेवकोंको भलेबुरेका विचार कदापि न करना चाहिये। हे राजन्! जहाँ तुम्हारे छः पुत्र मारे गये, वहाँ इन दो कुलाङ्गारोंसे भी गम खाइये, परन्तु इनके लिये साँपके मुँहमें पैर मत रखिये। बलवानके साथ विरोध करने पर अन्तमें नाश ही होता है। मगधेश्वरके सामने तुम किसी बिसातमें नहीं हो। यदि उनकी तुलना मदोन्मत्त हाथीसे की जाय, तो तुम उनके सामने भेंड बकरीके बराबर भी नहीं हो। इसलिये, मैं तो तुम्हें यही सलाह दूँगा, कि राम और कृष्णको उनके पास भेज दीजिये और स्वप्नमें भी उनसे वैर करनेका विचार न कीजिये।"

यह सुनतेही कृष्णने क्रुद्ध होकर कहा :—"हे सोम! हमलोगोंने शिष्टाचारके कारण तुम्हारे स्वामीके प्रति जो आदरभाव दिखलाया, उससे क्या वह हमारा

स्वामी हो गया? जरासन्धको हमलोग किसी तरह अपना स्वामी नहीं मान सकते। तुम्हारे स्वामीने जो सन्देश भेजा है, उससे मालूम होता है, कि वह भी अपनी वही गति कराना चाहता है, जो कंसकी हुई है। इससे अधिक हमें कुछ नहीं कहना है। तुम्हारी जो इच्छा हो, उससे जाकर कह सकते हो!

यह सुनकर सोम और भी क्रुद्ध हो उठा। उसने समुद्रविजयसे कहा :—"हे दशार्ह! तुम्हारा यह पुत्र कुलाङ्गार है। इसकी ऐसी धृष्टता कदापि क्षम्य नहीं हो सकती। तुम इसे हमारे हाथोंमें सौंप दो, फिर यह अपने आप ठीक हो जायगा।"

यह सुनकर अनाधृष्टिने लाल लाल आंखें निकाल कर कहा :—"पितासे बारंबार दोनों पुत्रोंको मांगते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? यदि अपने जामाताकी मृत्युसे जरासन्धको दुःख हुआ है, तो क्या हमें अपने छः भाइयोंके मरनेसे दुःख नहीं हुआ? तुम्हारी इस धृष्टताको हमलोग कदापि क्षमा नहीं करेंगे।"

राजा समुद्रविजयने भी इसी प्रकार सोमकी बहुत

भर्त्सना की। इससे सोम क्रुद्ध होकर राजगृहीको वापस चला गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी माँग बहुत ही अनुचित थी और वह कभी भी पूरी न की जा सकती थी। इस अवस्थामें समुद्रविजयने उसे जो उत्तर दिया था, वह सर्वथा उचित ही था। फिर भी इस विचारसे वे व्याकुल हो उठे, कि जरासन्धको इस रसे सन्तोष न होगा और यदि उसने हमलोगोंपर क्रमण कर दिया, तो उससे लोहा लेना भी कठिन जायगा।

इन्हीं विचारोंके कारण राजा समुद्रविजय चिन्तामें पड़ गये। अन्तमें उन्होंने क्रोष्टुकी नामक ज्योतिषीको बुलाकर पूछा :—"हे भद्र! तीन खण्डके स्वामी राजा जरासन्धसे हमारा विग्रह उपस्थित हो गया है। कृपया बतलाइये कि अब क्या होगा?"

ज्योतिषीने कहा :—"कुछ ही दिनोंके अन्दर यह महाबलवन्त राम और कृष्ण जरासन्धको मारकर तीनों खण्डके स्वामी होंगे। परन्तु आपलोगोंका अब यहाँ रहना अच्छा नहीं। आप अपने समस्त बन्धु-बा

और परिवारको लेकर समुद्रके किनारे पश्चिम दिशाको चले जाइये। यहाँसे प्रस्थान करते ही आपके शत्रुओंका नाश होना आरम्भ हो जायगा। आपलोग जब तक अपनी यात्रामें बराबर आगे बढ़ते जायें, तब तक सत्यभामा दो पुत्रोंको जन्म न दे। इसके बाद जहाँ वह दो पुत्रोंको जन्म दे, वहीं आपलोग नगर बसाकर बस जायें। ऐसा करने पर कोई भी आपका बाल बाँका न कर सकेगा और उत्तरोत्तर आपका कल्याण ही होता जायगा।"

यह सुनकर राजा समुद्रविजय बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी दिन डुग्गी पिटवा कर अपने प्रयाणकी घोषणा करवा दी। इसके बाद मथुरा नगरीसे अपने ग्यारह कोटि बन्धु-बान्धवोंको साथ लेकर वे शौर्यपुर गये और वहाँ सात कोटि यादवोंका दल विन्ध्याचलके मध्यभागमें होकर पश्चिम दिशाकी ओर आगे बढ़ा। राजा उग्रसेनने भी मथुरामें रहना उचित न समझा, इसलिये वे भी उन्हींके साथ चल दिये।

उधर राजा सोमने राजगृहीमें जाकर, समुद्रविजयकी

सब बातें जरासन्धको कह सुनायीं। सुनते ही जरासन्ध क्रोधसे आग-बबूला हो उठा। उसे क्रुद्ध देखकर उसके पुत्र कालकुमारने कहा :—"हे तात! आपके सामने वे डरपोंक यादव किस हिसाबमें हैं? यदि आप आज्ञा दें, तो मैं उन्हें समुद्र या अग्निसे भी खींचकर मार सकता हूँ। यदि मैं इस प्रतिज्ञाके अनुसार काम न करूँगा, तो अग्निप्रवेश कर अपना प्राण दे दूँगा और आपको भी अपना मुख न दिखाऊँगा।"

पुत्रके यह वीरोचित वचन सुनकर जरासन्ध बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उसी समय कालकुमारको पाँच सौ राजा और अगणित सेनाके साथ यादवों पर आक्रमण करनेके लिये रवाना किया। कालकुमारके साथ उसका भाई यवन सहदेव भी था। इन लोगोंको चलते समय तरह तरहके अपशकुन हुए। यवन सहदेवने उनकी ओर कालकुमारका ध्यान भी आकर्षित किया, किन्तु उसने उसकी एक न सुनी। वह तेजीके साथ रास्ता काटते हुए सदलबल शीघ्र ही विन्ध्याचलकी तराईमें यादवोंके समीप जा पहुँचा।

कालकुमारको समीप आया जानकर राम और कृष्णके अधिष्ठायक देवताओंको यादवोंकी रक्षा करनेके लिये बाध्य होना पड़ा। इसलिये उन्होंने अपनी मायासे एक पर्वत खड़ा कर, उसमें दावानल और एक बड़ीसी चिताका दृश्य उपस्थित किया और उस चिताके पास एक रोती हुई स्त्रीको बैठा दिया। इस मायाविनी रमणीको देखते ही कालकुमारने पूछा :—"हे भद्रे! तुम कौन हो और इस प्रकार क्यों रुदन कर रही हो?"

उस रमणीने दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाते हुए कहा :—"मैं राम और कृष्णकी बहिन हूँ। जरासन्धके भयसे समस्त यादव इस ओरको भाग आये थे। किन्तु उन्होंने जब सुना कि कालकुमार अपनी विशाल सेनाके साथ समीप आ पहुँचा है, तब वे भयभीत होकर इस दावानलमें घुस गये। मैं समझती हूँ कि वे सब इसीमें जल मरे होंगे। राम, कृष्ण तथा समुद्रविजय आदिक दशार्ह भी इससे बड़ी चिन्तामें पड़ गये। उन्हें अपनी रक्षाका कोई उपाय न सूझ पड़ा, इसलिये अभी कुछ ही क्षण पहले उन्होंने भी इस चितामें प्रवेश किया है।

हे भद्र! मैं उन्हींके दुःखसे दुःखित हो रही हूँ और इस चितामें प्रवेश कर अपना प्राण देने जा रही हूँ।"

इतना कह, वह मायाविनी स्त्री उस चितामें कूद पड़ी। उसकी यह हरकत देख, कालकुमारको अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया। उसने अपने पिता तथा बहिनके सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि—मैं यादवोंको अग्नि या समुद्रसेभी खींचकर मारूँगा, इसलिये उसने मनमें कहा :—"अब अग्निप्रवेश किये बिना काम नहीं चल सकता। किसी तरह हो, मैं अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूर्ण करूँगा।"

इतना कह कालकुमार अपनी तलवार खींचकर उस चितामें घुस पड़ा। उसके समस्त संगी साथी भी देवताओंकी मायासे मोहित हो रहे थे, इसलिये उन्होंने भी उसे न रोका और वह उनके सामने ही उस चितामें जलकर भस्म हो गया। इतनेहीमें सूर्यास्त होकर रात हो गयी, इसलिये यवन सहदेवने सेना सहित वहींपर वास किया। किन्तु दूसरे दिन सुबह उठकर उन्होंने देखा, तो न कहीं वह पर्वत था, न कहीं वह चिता।

उस स्थान पर केवल कालकुमारकी मुट्ठी भर हड्डियाँ पड़ी हुई थीं। पता लगाने पर उन्हें यह भी मालूम हुआ कि यादव तो इस स्थानसे बहुत दूर निकल गये हैं। और यह सब देव माया थी। यह जानकर यवन सहदेवादिक हताश हो गये और यादवोंका पीछा छोड़कर, राजगृहको लौट आये।

कालकुमारकी मृत्युका समाचार सुनकर जरासन्ध मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। कुछ देरमें जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वह बहुतही करूण क्रन्दन करने लगा। किसीने ठीक ही कहा है, कि संसारमें नाना प्रकारके भयंकर दुःख हैं, किन्तु पुत्र-वियोग उन सबोंमें बढ़कर है!

उधर यादवोंने जब कालकुमारकी मृत्युका समाचार सुना तब उनको कुछ धैर्य आया। उन्होंने आनन्द-पूर्वक क्रोष्टुकी ज्योतिषीका पूजन किया। इसी समय वहाँ अतिमुक्तक मुनिका आगमन हुआ। उन्हें देख, समुद्रविजयने वन्दना करते हुए नम्रतापूर्वक पूछा :—
"हे स्वामिन्! इस संकटके कारण हमलोग बड़ी

चिन्तामें पड़ गये हैं। इससे हमलोग किस प्रकार उद्धार पायेंगे।"

मुनिराजने कहा :—"हे राजन्! भय करनेका कोई कारण नहीं है। यह तुम्हारा अरिष्टनेमी बाईसवाँ तीर्थङ्कर और अद्वितीय बलवान होगा। यह बलराम और कृष्ण भी परम प्रतापी निकलेंगे। द्वारिकापुरीमें रहते हुए वे जरासन्धका वध कर अर्ध भरतके स्वामी होंगे।"

यह सुनकर राजा समुद्रविजयको अत्यन्त आनन्द हुआ और उसने मुनिराजका यथोचित आदर सत्कार कर उन्हें आनन्द-पूर्वक बिदा किया। इसके बाद प्रयाण करते हुए यादवोंका यह दल सौराष्ट्र देशमें पहुँचा और वहाँ गिरनारके उत्तर पश्चिममें उसने डेरा डाला। यहीं-पर कृष्णकी पत्नी सत्यभामाने भानु और भामर नामक परम रूपवान दो पुत्रोंको जन्म दिया। इनका जन्म होने पर क्रोष्टुकीके आदेशानुसार कृष्णने स्नान और बलिकर्म कर अट्ठम तप किया और उसके साथ ही समुद्रकी भी पूजा की।

इस पूजासे प्रसन्न हो, तीसरे दिन रात्रिके समय सुस्थित नामक लवण समुद्रका अधिष्ठायक देवता उपस्थित हुआ। उसने कृष्णको पञ्च जन्य शंख दिया तथा बलरामको सुघोष नामक शंख और दिव्य रत्न, माला और वस्त्रादिक दिये। तदनन्तर उसने कृष्णसे कहा :—"हे केशव! मैं सुस्थित नामक देव हूँ। आपने मुझे क्यों याद किया है? आपका जो काम हो, वह शाघ्र ही बतलाइये, मैं करनेको तैयार हूँ।

इसपर कृष्णने कहा :—"प्राचीनकालमें यहाँ वासुदेवोंकी द्वारिका नामक जो नगरी थी और जो जलमें विलीन हो गयी थी, उसमें हमलोग बसना चाहते हैं, इसलिये आप उसे समुद्रगर्भसे बाहर निकाल दीजिये!"

सुस्थित, तथास्तु कह, वहाँसे इन्द्रके पास गया और उनसे यह समाचार निवेदन किया। सौधर्मेन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने उसी समय वहाँ बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी रत्नमयी द्वारिका नगरी निर्माण कर दी। उसके चारों ओर एक बड़ा भारी किला बनाया। साथही एक खण्डसे लेकर सात खण्ड तकके

बड़े बड़े महल भी बना दिये। और हजारों जिन चैत्य भी निर्माण किये।

इन महलोंमेंसे एक महलका नाम स्वस्तिक था और वह नगरके अग्निकोणमें अवस्थित था। वह सोनेका बना हुआ था और उसके चारों ओर एक किला भी बनाया गया था। यह महल राजा समुद्रविजयके लिये निर्माण किया गया था। इसी महलके समीप अक्षोभ्य और स्तिमितके लिये नन्दवर्त्त तथा गिरिकूट नामक महल बनाये गये थे। नगरके नैऋत्य कोणमें सागरके लिये अष्टाँशनामक महल बनाया गया था। हिमवान और अचलके लिये भी दो अलग महल बनाये गये थे और उनका नाम वर्धमान रक्खा गया था। वायव्य कोणमें धरणके लिए पुष्पपत्र, पूरणके लिये आलोक दशन और अभिचन्द्रके लिये विमुक्त नामक महल बनाये गये थे। ईशान कोणमें वसुदेवका विशाल महल अवस्थित था और उसका नाम कुबेरच्छन्द था। इसी तरह नगरके मुख्य मार्ग पर राजा उग्रसेनके लिये भी स्त्री-विहार-क्षम नामक एक भारी महल बनाया गया था। यह सभी

महल गढ़ द्वारा सुरक्षित और कल्पवृक्ष, गजशाला, अश्वशाला, सिंहद्वार तथा ध्वजादिकसे सुशोभित थे।

इन सबोंके मध्यभागमें वसुदेवका पृथ्वीजय नामक बहुत बड़ा महल बनाया गया था। उससे कुछ दूरी पर अठारह खण्डका सर्वतोभद्र नामक महल बलराम और कृष्णके लिये बनाया गया था। इस महलके सामने रत्न और मणि-माणिक्यमय सर्व प्रभासा नामक एक सभागृह भी बनाया गया था, जो बहुत ही मनोरम और दर्शनीय था।

इन चीजोंके अतिरिक्त विश्वकर्माने एक सौ आठ हाथ ऊँचा, जिन प्रतिमासे विभूषित, और मेरु शिखरके समान ऊँचा, एक जैन मन्दिर भी बनाया था। तालाब, कूए, और उद्यान आदि तो स्थान स्थान पर आवश्यकतानुसार बना दिये गये थे। यह सब कुबेरने केवल एकदिन और एक रात्रि अर्थात् २४ घण्टेमें बना दिया। इस नगरीके पूर्वमें गिरनार, दक्षिणमें माल्यवान, पश्चिममें सौमनस और उत्तरमें गन्धमादन नामक बड़े बड़े पर्वत अवस्थित थे। जिस समय यह मनोहर नगरी बनकर

रुक्मि और शिशुपाल आदि उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते।

इसके बाद कृष्णने बलरामसे कहा :—"भाई! आप रुक्मिणीको लेकर आगे चलिये, मैं रुक्मि आदिको पराजित कर शीघ्र ही आपसे आ मिलूँगा।"

बलरामने कहा :—"नहीं भाई! आप चलिये, उन सबोंको परास्त करनेके लिये मैं ही काफी हूँ!"

कृष्ण और बलरामकी यह बातचीत सुनकर रुक्मिणी डर गयी। उसने कृष्णसे प्रार्थना की :—"प्राणनाथ! चाहे सबको मार डालिये, परन्तु मेरे भाईको अवश्य बचाइये! मैं नहीं चाहती कि मेरे पीछे उसका प्राण जाय और मेरे शिर कलङ्कका टीका लगे!"

रुक्मिणीकी यह प्रार्थना सुनकर कृष्णने इसके लिये बलरामको सूचना दे दी। इसके बाद बलराम वहीं खड़े होकर शत्रु-सेनाकी प्रतीक्षा करने लगे और कृष्ण रुक्मिणीको लेकर शीघ्रताके साथ आगे बढ़ गये।

कुछ ही देरमें रुक्मि और शिशुपाल एक बहुत बड़ी सेना लिये वहाँ आ पहुँचे। बलराम उनके स्वागतके

लिये पहले ही से खड़े थे। उन्होंने मूशलायुध फेंक कर बातकी बातमें समस्त सेनाको अस्तव्यस्त कर डाला। यदि वह हाथी और घोड़ों पर जा गिरता तो वे वहीं कुचल कर रह जाते और यदि रथपर जा गिरता, तो वे घड़ेकी तरह टूट कर चूर्ण-विचूर्ण हो जाते। इस प्रकार बलरामने जब समस्त सेनाको पराजित कर दिया, तब अभिमानी रुक्मिने उनको ललकार कर कहा :—"हे राम! केवल सेनाको ही पराजित करनेसे काम न चलेगा। यदि तू अपनेको वीर मानता हो, तो मेरे सामने आ! मैं तेरा मान मर्दन करनेके लिये यहाँ तैयार खड़ा हूँ!"

रुक्मिकी यह ललकार सुनकर बलरामको बड़ा क्रोध आया। वे चाहते तो उसी समय मूशल-प्रहार द्वारा उसका प्राण ले लेते, परन्तु उन्हें कृष्णकी सूचना याद आ गयी, इसलिये उन्होंने मूशलको किनारे रख, बाणोंसे उसका रथ तोड़ डाला, बख्तर तोड़ डाला और अश्वोंको भी मार डाला। बलरामकी इस मारसे रुक्मि बहुत ही परेशान हो गया। बलरामने इसी समय उस पर क्षुरप्र-बाण छोड़ कर उसके केश मूँड लिये। इसके बाद

उन्होंने हँसते हुए कहा :—"हे रुक्मि ! तुम मेरे भाईकी पत्नीके भाई हो, इसलिये मारने योग्य नहीं हो ! तुम अब यहाँसे चले जाओ ! तुम्हारा शिर मूँड कर मैं तुम्हें जीता छोड़ देता हूँ। तुम्हारे लिये इतना ही दण्ड काफी है !"

इतना कह बलरामने उसे छोड़ दिया। किन्तु रुक्मि अपनी इस दुर्दशासे इतना लज्जित हो गया, कि उसे कुण्डिनपुर जानेका साहस ही न हुआ। उसने वहीं भोजकट नामक एक नया नगर बसाया और वहीं अपने बाल-बच्चोंको बुलाकर अपना शेष जीवन व्यतीत किया।

उधर कृष्ण रुक्मिणीके साथ सकुशल द्वारिका पहुँच गये। नगर प्रवेश करते समय कृष्णने रुक्मिणीसे कहा :—"हे देवि ! देखो, यही देव निर्मित रत्नमय मेरी द्वारिका नगरी है। यहाँ कल्प-वृक्षोंसे विराजित सुरम्य उद्यानमें, तुम्हारे रहनेकी व्यवस्था मैं कर दूँगा। तुम वहाँ इच्छानुसार सुख भोग कर सकोगी !"

रुक्मिणीने कहा :—"हे नाथ ! यह सब तो ठीक है, परन्तु आपकी अन्यान्य स्त्रियाँ तो बड़े ठाठ बाठके

साथ यहाँ आयी हैं, उनके पिता तथा गुरुजनोंने बड़ी धूमके साथ, आपको विपुल सम्पत्ति दे कर आपका ब्याह किया है, किन्तु मुझे तो आप अकेले ही एक बन्दिनीकी भाँति यहाँ ले आये हैं। हे प्रियतम! इससे आपकी वह स्त्रियाँ मेरा उपहास तो न करेंगी?"

कृष्णने कहा :—"नहीं प्रिये! तुम्हारा कोई उपहास न करेगा। अन्तःपुरमें मैं तुमको औरोंसे अधिक ऊँचा स्थान प्रदान करूँगा, ताकि किसीको वैसा करनेका साहस ही न होगा!"

इस प्रकार रुक्मिणीको सान्त्वना देते हुए कृष्ण अपने राजमन्दिरमें आ पहुँचे। तदनन्तर उन्होंने सत्यभामाके महलके निकट श्रीप्रासाद नामक महलमें रुक्मिणीके लिये रहनेकी व्यवस्था कर दी और उसके साथ गान्धर्व विवाह कर वह रात्रि क्रीड़ा कौतुकमें व्यतीत की।

कृष्णने रुक्मिणीके वासस्थानमें जानेकी सबको मनाई कर दी थी, इसलिये कोई भी उसे देख न पाता था। यह प्रतिबन्ध सत्यभामाके लिये असह्य हो पड़ा। वह रुक्मिणीके लिये व्याकुल हो उठी, उसने उसे देखनेके

लिये कृष्णसे अत्यन्त आग्रह किया। इसपर कृष्णने कहा :—"अच्छा, कल तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण कर दूँगा।"

सत्यभामासे यह वादा करनेके बाद कृष्णको एक दिल्लगी सूझी। श्रीप्रासादमें लक्ष्मीकी एक सुन्दर प्रतिमा थी। उन्होंने सज्जित करानेके बहाने, चतुर कारीगरों द्वारा उस प्रतिमाको वहाँसे हटवा दिया और उस स्थानमें उस प्रतिमाकी ही भाँति रुक्मिणीको बैठा दिया। इसके बाद उन्होंने रुक्मिणीसे कहा :—"सत्यभामाके साथ अन्य रानियाँ जिस समय तुम्हें देखने आयें, उस समय तुम इस तरह स्थिर हो जाना, जिससे वे यह न समझ सकें कि तुम लक्ष्मीकी मूर्ति नहीं हो!"

इस प्रकार व्यवस्था करनेके बाद कृष्णने सत्यभामा आदिसे कह दिया कि :—"तुम श्रीप्रासादमें जाकर रुक्मिणीको सहर्ष देख सकती हो।' कृष्णका यह वचन सुनकर वे सब रुक्मिणीको देखने गयीं। श्रीप्रासादमें प्रवेश करने पर पहले ही श्रीमन्दिर पड़ता था। सत्यभामाने सोचा कि चलो पहले लक्ष्मीजीके दर्शन कर लें। यह सोच कर वे सब लक्ष्मीके मन्दिरमें गयीं और

वहाँ शिर झुका-झुका कर लक्ष्मीकी प्रतिमा (रुक्मिणी) को प्रणाम करने लगीं। सत्यभामाने तो हाथ जोड़ कर यह भी प्रार्थना की कि :—"हे देवि! तुम ऐसा करो कि मैं प्राणनाथकी नवीन पत्नीको रूपमें जीत लूँ। यदि मेरा यह मनोरथ सफल होगा, तो मैं भक्ति-पूर्वक तुम्हारी पूजा करूँगी!"

इस प्रकार मिन्नत मना, सत्यभामा अन्यान्य रानियोंके साथ, रुक्मिणीको देखनेके लिये, श्रीप्रासादमें उसकी खोज करने लगी। वे सब महलका कोना कोना खोज आयीं, परन्तु कहीं भी रुक्मिणीका पता ना चला। पता चल भी कैसे सकता था? रुक्मिणीने तो लक्ष्मीका स्थान ग्रहण कर लिया था। वहाँ वे सब पहले ही हो आयी थीं, किन्तु किसीको खयाल तक न आया था, कि यही रुक्मिणी है। अन्तमें जब वे निराश हो गयीं, तब कृष्णके पास वापस लौट गयीं। वहाँ कृष्णसे अपनी परेशानीका हाल उन्होंने कह सुनाया। सुनकर कृष्ण हँस पड़े। उन्होंने कहा :—"अच्छा चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

इतना कह, कृष्ण उन सबोंको अपने साथ लेकर श्रीप्रासादमें आये। रुक्मिणी इस समय भी पूर्वकी ही भाँति लक्ष्मीके स्थानमें बैठी हुई थी। किन्तु इस-बार कृष्णको देख कर वह खड़ी हो गयी और उसने कृष्णसे कहा :—"हे नाथ! मुझे मेरी इन बहिनोंका परिचय दीजिये, जिससे मैं अपनी बड़ी बहिनको प्रणाम कर सकूँ।"

कृष्णने यह सुनकर रुक्मिणीको सत्यभामाका परिचय देकर कहा :—"यही तुम्हारी बड़ी बहिन है!"

यह सुनकर रुक्मिणी सत्यभामाको प्रणाम करनेको उद्यत हुई, किन्तु सत्यभामाने उसे रोक कर कहा :—"नाथ! अब यह सर्वथा अनुचित होगा, क्योंकि अज्ञानताके कारण मैं इन्हें पहले ही प्रणाम कर चुकी हूँ!"

कृष्णने हँस कर कहा :—"खैर, कोई हर्ज नहीं। बहिनको प्रणाम करना अनुचित नहीं कहा जा सकता।"

यह सुनकर सत्यभामाको बड़ा ही पश्चाताप हुआ और वह बिलखती हुई अपने स्थानको चली गयी। कृष्णकी इस युक्तिसे रुक्मिणी अनायास पटरानी बन

गयी। कृष्णने उसके लिये ऐश्वर्य और ऐश आरामकी समस्त सामग्रियाँ जुटा दीं और वह वहीं रह कर कृष्णके साथ आनन्द-पूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगी।

कुछ दिनोंके बाद, एक दिन नारदमुनि वहाँ आये। कृष्णने उनका पूजनकर पूछा :—"हे भगवन्! आप तीनों लोकमें सर्वत्र विचरण किया करते हैं। यदि कहीं कोई आश्चर्यजनक वस्तु दिखायी दी हो, तो उसका वर्णन कीजिये।"

नारदने कहा :—"हे केशव! मैंने हालहीमें एक आश्चर्य जनक वस्तु देखी है। वैताढ्य पर्वतपर जाम्बवान नामक एक विद्याधर राजा राज्य करते हैं। उनकी पत्नीका नाम शिवचन्द्रा है। उनके विष्वक्सेन नामक एक पुत्र और जाम्बवती नामक एक पुत्री है। वह अभीतक कुमारी है। उसके समान रूपवती रमणी तीनों लोकमें न तो मैंने देखी है, न सुनी ही है। वह राजहंसीकी भाँति क्रीड़ा करनेके लिये सदा गंगामें जाया करती है। उसका अद्भुत सौन्दर्य देखकर ही मैं तुम्हें उसकी सूचना देने आया हूँ।"

कृष्णको यह संवाद सुनाकर नारद तो अन्यत्रके लिये प्रस्थान कर गये। इधर कृष्णने जाम्बवतीको अपनी रानी बनाना स्थिर किया, इसलिये वे अपनी सेनाको लेकर वैताढ्य पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँपर उन्होंने देखा कि जाम्बवती अपनी सखियोंके साथ खेल रही है। वह वास्तवमें वैसी ही रूपवती थी, जैसा नारदने बतलाया था। मौका मिलते ही उसे अपने रथपर बैठा कर कृष्णने द्वारिकाकी राह ली। इससे चारों ओर घोर कोलाहल मच गया। जाम्बवानने तलवार खींचकर कृष्णका पीछा किया, किन्तु अनाधृष्टिने उसे पराजित कर बन्दी बना लिया। वह उसी अवस्थामें उसे कृष्णके पास ले गया। जाम्बवानने देखा कि अब कृष्णसे विरोध करनेमें कोई लाभ नहीं है, तब उसने जाम्बवतीका विवाह उनके साथ सहर्ष कर दिया। इसके बाद, अपने इस अपमानसे खिन्न हो उसने दीक्षा ले ली।

जाम्बवानके पुत्र विष्वक्सेन और जाम्बवतीको अपने साथ लेकर कृष्ण द्वारिका लौट आये। वहाँ

उन्होंने रुक्मिणीके निकट एक पृथक् महलमें रुक्मिणीकी ही भाँति जाम्बवतीके रहनेकी व्यवस्था कर दी। जाम्बवतीका स्वभाव बहुत ही मिलनसार था, इसलिये उसने शीघ्र ही रुक्मिणीसे मित्रता कर ली। इससे उसके दिन भी आनन्दमें कटने लगे।

एकबार सिंहलद्वीपके राजा श्लक्ष्णरोमने कृष्णकी आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया, इसलिये कृष्णने उसे समझानेके लिये उसके पास एक दूत भेजा। कुछ दिनोंके बाद उस दूतने वहाँसे वापस आकर कृष्णसे कहा :–"हे स्वामिन्! श्लक्ष्णरोम आपकी आज्ञा मानने को तैयार नहीं है। परन्तु उसे नीचा दिखाने की एक और युक्ति मैंने खोज निकाली है। उसके श्लक्ष्मणा नामक एक कन्या है, जो बहुत ही सुन्दर है और सर्वथा आपकी रानी बनने योग्य है। वह इस समय द्रुमसेन नामक सेनापतिकी संरक्षतामें सागर-स्नान करनेके लिये यहाँ आयी हुई है। वह सात दिन यहाँ रहेगी। यदि आप चाहें तो इस बीच उसका हरण कर सकते हैं। सम्भव है कि इससे श्लक्ष्णरोम भी आपकी अधीनता स्वीकार कर ले।"

दूतकी यह सलाह कृष्णको पसन्द आ गयी। वे उसी समय बलरामको साथ लेकर समुद्र तट पर गये और सेनापतिको मारकर लक्ष्मणाका हरण कर लाये। तदनन्तर द्वारिका आकर उन्होंने उसके साथ व्याह कर लिया और दास-दासी आदिका प्रबन्ध कर रत्नगृह नामक महलमें उसके रहनेकी व्यवस्था कर दी।

इसके बाद राष्ट्रवर्धन नामक राजाकी पारी आयी। वह सुराष्ट्र देशके आयुस्खरी नामक नगरमें राज्य करता था। उसकी रानीका नाम विजया था। उसके नमुचि नामक एक महा-बलवान पुत्र और सुसीमा नामक परम रूपवती एक कुमारी भी थी। नमुचिने दिव्य आयुध सिद्ध किये थे, उसे अपने बलका बड़ा अभिमान था, इसलिये वह कृष्णकी आज्ञा न मानता था। एकबार सुसीमाको साथ लेकर वह प्रभास तीर्थमें स्नान करने गया। इसी समय कृष्णने उस पर आक्रमण कर उसे मार डाला और सुसीमाका हरण कर लिया। तदनन्तर द्वारिका आने पर कृष्णने उससे विवाह कर उसे रत्नगृहके निकट एक सुन्दर महलमें रहनेको स्थान दिया। कृष्णने

उसके लिये भी दास दासियोंका समुचित प्रबन्ध कर दिया। सुसीमाके विवाहके समय राष्ट्रवर्धन राजाने भी अनेक दास दासी और हाथी घोड़े आदि कृष्णके पास भेजकर उनसे मित्रता कर ली।

इसकेबाद वीतभय नामक नगरके स्वामी मेरु राजाकी गौरी नामक कन्यासे कृष्णने विवाह किया। पश्चात् कृष्णने सुना कि अरिष्टपुरमें राजा हिरण्यनाभकी पद्मावती नामक पुत्रीका स्वयंवर होनेवाला है। इसलिये बलराम और कृष्ण दोनों जन उस स्वयंवरमें भाग लेनेको पहुँचे। राजा हिरण्यनाभ रोहिणीके भाई थे और उस नाते कृष्ण तथा बलराम उनके भानजे लगते थे। इससे हिरण्यनाभने उन दोनों वीरोंका बहुत ही स्वागत किया। हिरण्यनाभके बड़े भाई रैवतने अपने पिताके साथ नमिनाथ तीर्थमें दीक्षा ले ली थी; किन्तु दीक्षा लेनेके पहले ही उन्होंने रेवती, रामा, सीता और बन्धुमती नामक अपनी चार पुत्रियोंका विवाह बलरामके साथ कर दिया था। इससे कृष्णने समस्त राजाओंके सामने ही पद्मावतीका हरण कर लिया। कृष्णके इस कार्यसे स्वंयवरमें-

आये हुए राजा रुष्ट हो गये, किन्तु कृष्णने उन सबोंको युद्धमें पराजित कर अपना रास्ता साफ कर लिया। बलरामके साथ द्वारिका लौटने पर कृष्णने पद्मावतीसे विवाह कर लिया और गौरीके महलके निकट उसके रहनेका प्रबन्ध कर दिया।

एक समय गाँन्धार देशकी पुष्कलावती नगरीमें राजा नग्नजीत राज्य करते थे। उनके पुत्रका नाम चारुदत्त था। पिताकी मृत्युके बाद वही अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु शक्तिसम्पन्न न होनेके कारण उसके भाई बन्धुओंने उसका राज्य छीन लिया। इससे वह भागकर कृष्णकी शरणमें आया और अपना राज्य वापस दिलानेके लिये उसने कृष्णसे प्रार्थना की। कृष्ण उसकी प्रार्थना स्वीकार कर गान्धार गये। वहाँ उन्होंने शत्रुओंको मारकर चारुदत्तका राज्य उसे वापस दिलाया। इस उपकारके बदले चारुदत्तने कृष्णके साथ अपनी बहिन गान्धारीका विवाह कर दिया। तदनन्तर कृष्ण पद्मावतीको लिये द्वारिका लौट आये। और उसे एक स्वतन्त्र महलमें रखा। इस प्रकार कृष्णने आठ

रानियोंसे विवाह किया, वे उनकी आठ पटरानियोंके नामसे विख्यात हुई।

एकदिन रुक्मिणीके यहाँ अतिमुक्तक मुनिका आगमन हुआ। उन्हें देखकर सत्यभामा भी वहाँ आ पहुँची। रुक्मिणीने मुनिसे वन्दना कर पूछा कि :—"हे भगवन! मुझे पुत्र होगा या नहीं?" इसपर मुनिराजने आशीर्वाद देते हुए कहा—"हाँ, तुझे श्रीकृष्णके समान एक सुन्दर और बलवान पुत्र होगा!"

यह सुनकर रुक्मिणी बहुत प्रसन्न हुई। उसने भोजनादि द्वारा मुनिका सत्कार कर, बड़े सम्मानके साथ उनको विदा किया। उनके चले जाने पर सत्यभामाने रुक्मिणीसे कहा कि मुनिराजने तो मेरी ओर देखकर कहा था, कि तुझे कृष्णके समान पुत्र होगा, इसलिये पुत्रकी माता बनने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त होगा। यह सुन रुक्मिणीने कहा—"नहीं, मुनिराजने तो मेरे प्रश्नके उत्तरमें मुझसे ही वह बात कही थी। तुम छल कर रही हो, इसलिये तुम्हें कोई लाभ न होगा।"

अन्तमें इस विवादका निर्णय करानेके लिये वे

यदि तुम्हें विश्वास न हो तो उसे बुलाकर पूछ लो, वह स्वयं तुम्हें सब हाल कह सुनायेगा।"

सत्यमुनिकी यह बातें सुनकर कुछ लोग तुरन्त उस किसानके यहाँ दौड़ गये और उसके मूक बालकको सत्यमुनिके पास ले आये। तदनन्तर मुनिराजने उससे कहा :—"हे वत्स! तुम अपने पूर्वजन्मका सारा वृत्तान्त इन लोगोंको कह सुनाओ! इस संसारमें न जाने कितनी बार पुत्र पिता और पिता पुत्र होता है। इसलिये ज्ञानी लोग इसे विचित्र कहते हैं। इसमें कोई लज्जा या संकोच करनेकी जरूरत नहीं है। तुम अपना मौन भंगकर सब लोगोंको अपना पूरा वृत्तान्त कह सुनाओ! इससे तुम्हारा कल्याण ही होगा।"

सत्यमुनिके मुखसे अपना यह हाल सुनकर उस बालकको बड़ाही आनन्द हुआ और उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सब लोगोंको कह सुनाया। उसका जन्मवृत्तान्त और संसारकी विचित्रता देखकर अनेक श्रोताओंको वैराग्य आ गया, फलतः उन्होंने भी

उसी समय दीक्षा ले ली। उस किसानको भी इन सब बातोंसे प्रतिबोध हो गया। परन्तु वह दोनों ब्राह्मण इससे अत्यन्त लज्जित हुए और अपनी हँसी सुनते हुए उस समय तो चुपचाप अपने घर चल गये।

परन्तु सत्यमुनिके इस कार्यमें उन दोनोंको अपना अपमान दिखायी दिया, इसलिये उन दोनोंने उनसे बदला लेना स्थिर किया। इस निश्चयके अनुसार रात पड़ते ही वे दोनों तलवार लेकर उस उद्यानमें मुनिराजको मारनेके लिये जा पहुँचे। परन्तु मुनिराजको मारनेके पहले ही सुमन यक्षने उन दोनोंको स्तम्भित बना दिया। इससे उनकी चलने फिरने या कुछ करनेकी शक्ति नष्ट हो गयी और वे जहाँके तहाँ खड़े रह गये। अपनी यह अवस्था देखकर वे दोनों रोने-कलपने लगे। रात तो किसी तरह बीत गयी। सवेरा होते ही उनके माता पिता और नगर-निवासी उनके आस पास आकर इकट्ठे हो गये और उनकी इस दुरवस्थाका कारण पूछने लगे, परन्तु वे उनको कोई उत्तर न दे सके।

अग्निभूति और वायुभूतिको निरुत्तर देखकर, उसी

समय सुमन यक्ष प्रकट हुआ और उसने लोगोंसे कहा कि :—"यह दोनों दुर्मति, मुनिराजको मारने आये थे, इसलिये मैंने इन्हें स्तम्भित कर दिया है। अब यदि यह दोनों दीक्षा ग्रहण करें, तो मैं इन्हें मुक्त कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं।"

उन दोनोंने जब देखा कि दीक्षा लेनेके सिवा और कोई गति नहीं है, तब उन्होंने कहा :—"हे यक्ष! साधु धर्म अत्यन्त कठिन है, इसलिये हमलोग श्रावकधर्म ग्रहण करेंगे।"

उनका यह वचन सुनकर यक्षने उन दोनोंको मुक्त कर दिया। उस समयसे वे दोनों यथाविधि जैन धर्मका पालन करने लगे, परन्तु उनके मातापिता तो सर्वथा उससे वञ्चित ही रह गये। कुछ दिनोंके बाद अग्निभूति और वायुभूतिकी मृत्यु हो गयी और वे सौधर्म देवलोकमें छः पल्योपम आयुवाले देवता हुए। वहाँसे च्युत होने पर गजपुरमें वे अर्हद्दास सेठके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुए और उनके नाम पूर्णभद्र तथा माणिभद्र रक्खे गये। पूर्व संचित पुण्यके कारण इस जन्ममें भी वे दोनों श्रावक ही हुए।

एकदिन उस नगरमें महेन्द्र मुनिका आगमन हुआ। उनका धर्मोपदेश सुनकर अर्हत्दास श्रेष्ठीने उनके निकट दीक्षा ले ली। उसी समय पूर्णभद्र और माणिभद्र भी उनको वन्दन करनेके लिये घरसे निकले। रास्तेमें उन्हें एक चाण्डाल मिला, जो अपनी कुतियाको भी साथ लिये हुए था। उनको देखकर उन दोनोंके हृदयमें बड़ा ही प्रेम उत्पन्न हुआ, फलतः उन्होंने मुनिराजके पास आकर, उन्हें प्रणाम कर पूछा कि :—"हे भगवन्! वह चाण्डाल और उसकी वह कुतिया कौन थी? उन्हें देखकर हमारे हृदयमें इतना प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ?"

मुनिराजने कहा :—"अग्निभूति और वायुभूतिके जन्ममें सोमदेव तुम्हारा पिता और अग्निला तुम्हारी माता थी। तुम्हारे पिताकी मृत्यु होने पर वह इसी भरतक्षेत्रके शंखपुरका जितशत्रु नामक राजा हुआ, जो परस्त्रीमें अत्यन्त आसक्त रहता था। अग्निलाकी मृत्यु होनेपर वह भी उसी नगरमें सोमभूति ब्राह्मणकी रुक्मिणी नामक स्त्री हुई। एक बार जितशत्रुकी दृष्टि रुक्मिणी पर जा पड़ी। उसे देखते ही वह उसपर आसक्त हो

गया। उसने सोमभूतिके शिर मिथ्या दोषारोपण कर रुक्मिणीको अपने अन्तःपुरमें बन्द कर दिया। सोमभूति उसके वियोगसे अत्यन्त व्याकुल हो गया और जीवित अवस्थामें ही मृत मनुष्यकी भाँति किसी तरह अपने दिन बिताने लगा। राजा जितशत्रुने हजार वर्षतक रुक्मिणीके साथ आनन्द-भोग किया। इसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी और वह नरकमें तीन पल्योपमकी आयुवाला नारकी हुआ। वहाँसे च्युत होनेपर वह एक मृग हुआ किन्तु शिकारियोंने उसे मार डाला। वहाँसे वह एक श्रेष्ठीका पुत्र हुआ और वहाँसे मृत्यु होने पर वही फिर एक हाथी हुआ। दैवयोगसे इस जन्ममें उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे अनशनकर अठारहवें दिन उसने वह शरीर त्याग दिया। इसके बाद वह तीन पल्योपमकी आयुष्यवाला वैमानिक देव हुआ। वहाँसे च्युत होनेपर वही अब यह चाण्डाल हुआ है और वह रुक्मिणी अनेक जन्मोंके बाद कुतिया हुई है। इसी पूर्व सम्बन्धके कारण उनको देखकर तुम्हारे हृदयमें प्रेम उत्पन्न हुआ है।"

मुनिराजके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर पूर्णभद्र और माणिभद्रको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने उस चाण्डाल तथा कुतियाको धर्मोपदेश दिया। उसे सुनकर उस चाण्डालको वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह एक मासके अनशन द्वारा शरीर त्यागकर नन्दीश्वर द्वीपमें एक देव हुआ। धर्मोपदेश सुननेके कारण उस कुतियाको भी ज्ञान उत्पन्न हुआ और वह भी अनशन द्वारा शरीर त्यागकर उसी शंखपुरमें सुदर्शना नामक राजकुमारी हुई।

कुछ दिनोंके बाद फिर वहाँ महेन्द्र मुनिका आगमन हुआ। पूर्णभद्र और माणिभद्रके पूछने पर उस समय भी मुनिराजने उनके गतिका सारा हाल उनको कह सुनाया। इसी समय राजकुमारी सुदर्शनाने मुनिराजका धर्मोपदेश सुन, उनके निकट दीक्षा ले ली, जिससे यथा समय उसे देवलोककी प्राप्ति हुई। उधर पूर्णभद्र और माणिभद्र आजीवन श्रावक धर्मका पालन करते रहे। अन्तमें मृत्यु होने पर वे दोनों सौधर्म देवलोकमें सामानिक देव हुए। वहाँसे च्युत होनेपर वे दोनों

हस्तिनापुरमें, विष्वकसेन राजाके मधु और कैटभ नामक पुत्र हुए।

यथा समय नन्दीश्वर द्वीपका वह देव भी च्यवन होकर अनेक जन्मोंके बाद अन्तमें पटपुरका कनकप्रभ नामक राजा हुआ। उधर सुदर्शना स्वर्गसे च्युत होकर अनेक जन्मोंके बाद राजा कनकप्रभकी चन्द्राभा नामक पटरानी हुई।

उधर हस्तिनापुरमें राजा विष्वकसेनने मधुको अपना राज्य और कैटभको युवराज पद देकर स्वयं दीक्षा ले ली, जिसके फलस्वरूप वह ब्रह्मदेवलोकका अधिकारी हुआ।

तदनन्तर मधु और कैटभ दोनों अपने राज्यका प्रबन्ध बड़ी उत्तमतासे करने लगे, परन्तु भीम नामक एक पल्लीपति उनकी अधीनता स्वीकार न करता था और वह उन्हें हमेशाँ तंग किया करता था। इसलिये मधुने उसे दण्ड देनेके लिये एक बड़ी सेनाके साथ हस्तिनापुरसे प्रस्थान किया। मार्गमें उसे वटपुर मिला। वहाँ राजा कनकप्रभने भोजनादिक द्वारा उसका बड़ा सत्कार किया, जिससे मधुको भी अत्यन्त आनन्द हुआ।

भोजनादिसे निवृत्त होने पर कनकप्रभने मधुको अपने महलमें बुलाकर उसे एक सिंहासन पर बैठाया। इसके बाद अपनी स्वामी भक्ति दिखानेके लिये वह अपनी पत्नीके साथ तरह तरहकी भेटें लेकर उसकी सेवामें उपस्थित हुआ। चन्द्राभा तो भेटकी चीजें उसके चरणोंके पास रख, उसे वन्दन कर अन्तःपुरमें वापस चली गयी, किन्तु कनकप्रभ उसके चरणोंके पास बैठकर अपने योग्य कार्य सेवा पूछने लगा। मधु चन्द्राभाको देखकर उसपर आसक्त हो गया था, इसलिये उसने कनकप्रभसे उसकी याचना की। कनकप्रभ उसके इस अनुचित प्रस्तावसे भला कब सहमत हो सकता था? उसने नम्रता-पूर्वक इन्कार कर दिया। इसपर मधु उसे बल-पूर्वक अपने साथ ले जानेको तैयार हुआ, किन्तु उसके मन्त्रीने उसे समझाया कि इस समय हमलोग रण-यात्रा कर रहे हैं, इसलिये इस समय उसे साथ लेना अच्छा न होगा। इससे उस विचारको छोड़ कर वह वहाँसे आगे बढ़ा और शीघ्र ही पल्लीपति भीमके प्रदेशमें जा पहुँचा।

पल्लीपतिको पराजित कर कुछ दिनोंके बाद मधु उसी रास्तेसे वापस लौटा। अभिमानी तो वह था ही, इस बार विजयके कारण वह और भी अधिक उन्मत्त हो रहा था। कनकप्रभने पूर्ववत् इस बार भी उसका स्वागत सत्कार कर उसकी सेवामें बहुमूल्य भेट उपस्थित की, किन्तु मधुने कहा :—"मुझे तुम्हारी यह भेट न चाहिये। मुझे चन्द्राभा दे दो, वही मेरे लिये सर्वोत्तम भेट है।"

कनकप्रभने इसबार भी नम्रतापूर्वक इन्कार किया, किन्तु मधुने उसकी एक न सुनी। वह चन्द्राभाको बल-पूर्वक रथमें बैठा कर अपने नगरकी ओर चलता बना। कनकप्रभमें इतनी शक्ति न थी, कि वह उसके इस कार्यका पूरी तरह विरोध कर सके। वह अपनी प्रियतमाके वियोगसे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। कुछ समयके बाद जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वह उच्च स्वरसे विलाप करने लगा। उसके लिये वास्तवमें यह दुःख असह्य था। वह इसी दुःखके कारण पागल होगया और चारों ओर भटक कर अपने दिन बिताने लगा।

उद्यानमें ज्ञानवान् धर्मघोष सूरिका आगमन हुआ। सोमदेवादिके चले जाने पर उनका धर्मरुचि नामक शिष्य सोमश्रीके घर आया। उसे पारणके लिये आहार की जरूरत थी। इसलिये नागश्रीने वह कड़वी तरकारी उसीको दे दी। उसे देखकर धर्मरुचिको परम सन्तोष हुआ और उसने समझा कि भिक्षामें आज मुझे अपूर्व पदार्थ मिला है। उसने प्रसन्नतापूर्वक गुरुदेवके पास जाकर उनको वह तरकारी दिखायी। गुरुदेवने उसकी गन्धसे ही उसका दोष जानकर कहा :—"हे वत्स! यदि तू इसे भक्षण करेगा, तो तेरी मृत्यु हो जायगी। इसे तुरन्त फेंक दे और कोई दूसरा आहार लाकर यत्न-पूर्वक पारण कर।"

गुरुदेवका यह वचन सुनकर धर्मरुचि वह तरकारी फेंकनेके लिये उद्यानसे कुछ दूर जंगलमें गया। वहाँ उसने तरकारीका एक कण जमीन पर गिरा दिया। थोड़ी देरमें उसने देखा कि उसमें लगनेवाली समस्त चिउंटियाँ मरी जा रही हैं। यह देखकर उसने अपने मनमें कहा :—"यदि इसके एक कणसे इतने जीव मरे

जा रहे हैं, तो यह सब तरकारी फेंक देनेसे इसके पीछे न जाने कितने जीवोंकी हत्या होगी। इससे तो यही अच्छा है, कि मैं अकेला ही इसे खाकर मर जाऊँ! ऐसा करने पर अन्य जीवोंके लिये कोई खतरा न रहेगा।"

इसप्रकार निश्चयकर धर्मरुचिने स्वस्थचित्तसे प्रसन्नतापूर्वक वह शाक खा डाला। इसके बाद सम्यक् प्रकारसे आराधना कर, समाधिपूर्वक उन्होंने प्राण त्याग दिये। अपने पुण्य-प्रभावके कारण मृत्युके बाद सर्वार्थ सिद्धके अनुत्तर विमानमें वे अहमिन्द्र नामक देव हुए।

इधर धर्मरुचिको वापस आनेमें जब बड़ी देर हुई, तब धर्मघोष सूरिको उनके लिये चिन्ता हुई और उन्होंने अन्यान्य साधुओंको उनका पता लगानेके लिये भेजा। वे पता लगाते हुए शीघ्र ही उस स्थानमें जा पहुँचे, जहाँ धर्मरुचिका मृत शरीर पड़ा हुआ था। वे उनके रजोहरणादिक लेकर गुरुदेवके पास लौट आये और उनको सारा हाल कह सुनाया। गुरुदेवने अतिशय ज्ञान द्वारा नागश्रीका दुश्चरित्र जानकर सब बातें अपने साधुओंको कह सुनायीं। साधु और साध्वियोंको

इससे बड़ा क्रोध आया और उन्होंने नगरमें जाकर सोमदेव तथा अन्यान्य लोगोंसे यह हाल कह सुनाया। इससे चारों ओर नागश्रीकी घोर निन्दा होने लगी। सोमदेव आदिको भी उस पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे घरसे निकाल दिया। इससे नागश्री बहुत दुःखित हो दर दर भटकने लगी। शारीरिक और मानसिक यातनाके कारण उसे खाँसी, दमाँ, बुखार और कुष्ट आदिक भयंकर सोलह रोगोंने आ घेरा और वह इसी जन्ममें घोर नरक भोग करने लगी। कुछ दिनोंके बाद भोजन और वस्त्र रहित अवस्थामें भटकते भटकते उसकी मृत्यु हो गयी और वह छठें नरककी अधिकारिणी हुई।

नरकमें दीर्घकाल तक घोर यातना सहन करनेके बाद उसने म्लेच्छोंके यहाँ जन्म ग्रहण किया और मृत्यु होने पर वहाँसे सातवें नरकमें गयी। वहाँसे निकलकर वह फिर म्लेच्छोंके यहाँ उत्पन्न हुई और वहाँसे फिर सातवें नरकमें गयी। वहाँसे निकलकर वह मत्स्योंके यहाँ उत्पन्न हुई और वहाँसे सातवें नरकमें गयी। वहाँसे

निकल कर वह फिर मत्स्योंके यहाँ उत्पन्न हुई और वहाँसे फिर उसी नरकमें गयी। इस प्रकार प्रत्येक नरक उसे दो दो बार भोग करना पड़ा।

इसके बाद अनेक बार पृथ्वीकायादिमें उत्पन्न होकर उसने अकाम निर्जराके योगसे अपने अनेक दुष्कर्मोंको क्षय किया। उसके बाद वह इसी चम्पापुरीमें सागरदत्त श्रेष्ठीकी सुभद्रा नामक स्त्रीके उदरसे पुत्री रूपमें उत्पन्न हुई, जहाँ उसका नाम सुकुमारीका पड़ा। वहीं जिनदत्त नामक एक महा धनवान सार्थवाह रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम भद्रा था। भद्राने सागर नामक एक पुत्रको जन्म दिया था, जो रूप और गुणमें अपना सानी न रखता था।

एकदिन जिनदत्त श्रेष्ठी सागरदत्तके मकानके पास होकर अपने घर जा रहा था। अचानक उसकी दृष्टि सुकुमारीका पर जा पड़ी, जो मकानके ऊपरी हिस्सेमें गेंद खेल रही थी। वह रूपवती तो थी ही, यौवनने उसकी शारीरिक शोभा मानो सौगुनी बढ़ा दी थी। जिनदत्त उसे देखकर अपने मनमें कहने लगा कि यह

कन्या मेरे पुत्रके योग्य है। वह इसी विषय पर विचार करता हुआ अपने घर जा पहुँचा। तदनन्तर वह अपने भाईको साथ लेकर सागरदत्तके पास गया और उससे अपने पुत्रके लिये सुकुमारीका की याचना की। इसपर सागरदत्तने कहा :—"यह पुत्री मुझे प्राणसे भी अधिक प्यारी है, इसलिये इसके बिना मेरे लिये जीवन-धारण करना भी कठिन हो जायगा। यदि आपका पुत्र सागर मेरा घरजमाई होकर रहना स्वीकार करे तो मैं उसके साथ सुकुमारीका का ब्याह कर दूँगा।"

यह सुनकर जिनदत्तने कहा :—अच्छा, मैं इस विषय पर विचार करूँगा। यह कह कर वह अपने घर चला आया। घर आकर उसने अपने पुत्र सागरसे इसका जिक्र किया, किन्तु उसने इसका कोई उत्तर न दिया। इसलिये जिनदत्तने "मौनं सम्मति लक्षणम्" मानकर सागरदत्तकी माँग स्वीकार कर ली। उसने सागरदत्तको कहला भेजा कि यदि आप अपनी पुत्रीका विवाह मेरे पुत्रसे कर देंगे, तो मैं उसे आपके यहाँ घरजमाई होकर रहनेकी आज्ञा दे दूँगा।

यह बात तय हो जाने पर सागरदत्तने सुकुमारीका के साथ सागरका व्याह कर दिया। व्याहके बाद सोहागरात मनानेके लिये वे दोनों एक सुन्दर कमरेमें भेजे गये। वहाँ सागरने ज्योंहीं अपनी नव विवाहिता पत्नीसे स्पर्श किया, त्योंही उसके पूर्व कर्मके कारण सागरके अंग-प्रत्यङ्गमें ऐसी ज्वाला उत्पन्न हुई, कि उसके लिये वहाँ ठहरना कठिन होगया, परन्तु किसी तरह कुछ देर तक वह वहाँ रुका रहा और ज्योंही सुकुमारीकाको निद्रा आयी, त्योंहीं वह वहाँसे भाग खड़ा हुआ।

कुछ देर बाद जब सुकुमारीकाकी निद्रा भंग हुई, तब उसने वहाँ पतिदेवको न पाया। इससे वह दुःखित होकर विलाप करने लगी। सुबह सुभद्राने एक दासी द्वारा उन दोनोंके लिये दन्तधावनकी सामग्री भेजी। सुकुमारीका उस समय भी रो रही थी और उसके पतिका कहीं पता न था। उसने तुरन्त सुभद्रासे जाकर यह हाल कहा। सुभद्राने सागरदत्तसे कहा और सागरदत्तने जिनदत्तको उलाहना दिया। इससे जिनदत्तने अपने पुत्रको एकान्तमें बुलाकर कहा :—"हे पुत्र!

तुमने प्रथम रात्रिमें ही सागरदत्तकी कन्याका त्याग कर बहुत ही अनुचित कार्य किया है। खैर, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम इसी समय उसके पास जाओ और उसे सान्त्वना देकर शान्त करो। तुम उसके निकट रहनेके लिये बाध्य हो, क्योंकि मैंने अनेक सज्जनोंके सामने इसके लिये प्रतिज्ञा की है।"

सागरने हाथ जोड़ कर कहा :—"पिताजी! इसके लिये मुझे क्षमा करिये। मैं आपकी आज्ञासे अग्निमें प्रवेश कर सकता हूँ, परन्तु सुकुमारीकाके पास जाना मुझे स्वीकार नहीं है।"

सागरदत्त भी दीवालकी ओटसे अपने जमाईकी यह बातें सुन रहा था, इसलिये वह निराश होकर अपने घर चला गया। उसने सुकुमारीकासे कह दिया कि सागर तुझसे विरक्त है, इसलिये अब उसकी आशा रखनी व्यर्थ है। तू खेद मत कर! मैं शीघ्र ही तेरे लिये अब दूसरा पति खोज दूँगा।"

सागरदत्तने इस प्रकारके वचनों द्वारा अपनी पुत्रीको तो सान्त्वना दी, किन्तु इस घटनासे उसका चित्त रात-

दिन दुःखी रहने लगा। एक दिन वह इस दुःखसे उदास हो अपने मकानके गवाक्षपर बैठा हुआ था, इतनेमें एक भिक्षुक पर उसकी दृष्टि जा पड़ी। मलीनताके कारण उसके शरीर पर सैकड़ों मक्खियाँ भिन भिना रही थीं। सागदत्तको उसपर दया आ गयी इसलिये उन्होंने उसे अपने पास बुलाकर स्नान तथा भोजन करा कर उसके शरीर पर चन्दनका लेप किया। इससे भिक्षुकको बड़ाही आनन्द हुआ और वह सुखसे जीवन बिताने लगा।

एकदिन सागरदत्तने उससे कहा :—"हे वत्स! मैं अपनी सुकुमारीका नामक कन्या तुम्हें प्रदान करता हूँ। तुम उसे पत्नी रूपमें ग्रहण कर आनन्द-पूर्वक उसके साथ रहो। तुम्हें अपने भोजन-वस्त्रकी चिन्ता न करनी होगी। तुम दोनोंका सारा खर्च मैं ही चलाऊँगा।"

सागरदत्तकी यह बात सुनकर वह भिक्षुक आनन्द पूर्वक सुकुमारीकाके साथ उसके कमरे में गया, किन्तु उसको स्पर्श करते ही, उसके शरीरमें भी ऐसा दाह उत्पन्न हो गया, मानो वह आगमें जल गया हो।

इस यातनासे व्याकुल हो, वह भी उस ऐश्वर्यको ठुकरा कर वहाँसे भाग खड़ा हुआ। इस घटनासे सुकुमारीका और भी दुःखित हो गयी। उसके पिताने यह सब समाचार सुना तो उन्होंने कहा :—"हे वत्से! यह तेरे पूर्व कर्मोंका उदय है, और कुछ नहीं। तू अब धैर्य धारण कर और दानादिक सत्कर्ममें अपना समय बिताया कर!"

पिताके इस आदेशानुसार सुकुमारीका धर्म-ध्यानमें तत्पर हो, अपना समय व्यतीत करने लगी। एकदिन उसके यहाँ गोपालिका आदि साध्वियोंका आगमन हुआ। सुकुमारीकाने शुद्ध अन्नपानादिक द्वारा उनका सत्कारकर धर्मोपदेश सुना और ज्ञान उत्पन्न होने पर उन्हींके निकट दीक्षा ले ली। इसके बाद वह छठ और अट्ठम आदि तप करती हुई गोपालिका प्रभृति साध्विओंके साथ विचरण करने लगी।

एकबार सुभूमिभाग उद्यानमें रविमण्डलको देख कर उसने साध्वियोंसे कहा :—"मेरी इच्छा होती है, कि मैं यहाँ आतापना लूँ।" साध्वियोंने इसका

विरोध करते हुए कहा :—"हे वत्से! आगममें कहा गया है, कि साध्वियोंको बस्तीके बाहर आतापना लेनी उचित नहीं है।" परन्तु सुकुमारीका इन बातोंको सुनी अनसुनी कर सुभूमिभाग उद्यानमें चली गयी और सूर्यकी ओर दृष्टिकर आतापना करने लगी।

इस उद्यानमें पाँच आदमी पहलेहीसे देवदत्ता नामक एक वेश्याको साथ लेकर क्रीड़ा करने आये थे। वे सब उद्यानके एक भागमें बैठे हुए थे। एक आदमी उस वेश्याको अपनी गोदमें लिये बैठा था, दूसरा छत्र धारण कर उसके शिर पर छाया कर रहा था, तीसरा एक वस्त्रसे उसे हवा कर रहा था, चौथा उसके केश सँवार रहा था और पाँचवाँ उसके चरणोंपर हाथ फेर रहा था। आतापना करते करते सुकुमारीकाकी दृष्टि उस वेश्या पर जा पड़ी। उसकी भोग-अभिलाष पूर्ण न हुई थी, इसलिये उसे देखते ही उसका चित्त चञ्चल हो उठा। उसने मन-ही-मन कामना की कि इस तपके प्रभावसे इस रमणीकी भाँति मुझे भी पाँच पति प्राप्त

हों ! इसके बाद वह अपने शरीरको साफ़ रखनेमें बहुत तत्पर रहने लगी। यदि आर्याएँ इसके लिये उसे मना करतीं, तो वह उनसे झगड़ा कर बैठती।

कुछ दिन तक उसकी यही अवस्था रही। अन्तमें वह अपने मनमें कहने लगी, कि पहले जब मैं गृहस्थ थी, तब यह आर्याएँ मेरा बड़ाही सम्मान करती थीं। इस समय मैं भिक्षाचारिणी और इनके वेशमें हो गयी हूँ, इसलिये इनके जीमें जो आता है वही कहकर यह मेरी अवज्ञा किया करती हैं। मैं अब इनके साथ कदापि न रहूँगी।"

इस प्रकार विचार कर वह उनसे अलग हो गयी और अकेली रहने लगी। इसी अवस्थामें उसने चिरकाल तक दीक्षाका पालन किया। अन्तमें आठ महीनेकी संलेखना कर, अपने पापोंकी आलोचना किये बिनाही उसने वह शरीर त्याग दिया। इस मृत्युके बाद सौधर्म देवलोकमें देवी हुई और उसे नव पल्योपमकी आयु प्राप्त हुई। वहाँसे च्युत होकर वही अब द्रौपदी हुई है। पूर्वजन्मकी आन्तरिक भावनाके कारण इस जन्ममें

धूल भर गयी। भानुकने किसी तरह खड़े हो, आँखे मलकर देखा, तो वहाँ न उस अश्वका ही पता था न प्रद्युम्नका ही। वह लज्जित हो, अपना शिर धुनाता हुआ अपने वासस्थानको चला गया।

इसके बाद प्रद्युम्नने एक विदूषकका रूप धारण किया और एक भेंड़े पर सवार हो, नगर निवासियोंको हँसाते हुए वे वसुदेवकी राजसभामें पहुँचे। उनका विचित्र वेश देखकर वहाँ जितने मनुष्य थे, वे सब ठठाकर हँस पड़े। प्रद्युम्नने अपने विविध कार्योंद्वारा उन लोगोंको और भी हँसाया। जब सब लोग हँसते हँसते थक गये, तब प्रद्युम्नने अपना वह रूप पलटकर एक वेदपाठी ब्राह्मणका वेश धारण कर लिया।

इसी वेशमें प्रद्युम्न बहुत देर तक नगरमें विचरण करते रहे। अन्तमें सत्यभामाकी एक कुब्जा दासीसे उनकी भेंट हो गयी। उन्होंने अपनी विद्याके बलसे उसका कुबड़ापन दूर कर दिया। इससे कुब्जाको बड़ा ही आनन्द हुआ और वह भक्तिपूर्वक उनके चरणोंपर गिर कर कहने लगी:—"हे भगवन्! आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं?"

प्रद्युम्नने कहा :—"मैं वेदपाठी ब्राह्मण हूँ और भोजनके लिये बाहर निकला हूँ। मुझे जहाँ इच्छानुसार भोजन मिलेगा, वहींपर अब मैं जाऊँगा।"

कुब्जाने कहा :—"यदि ऐसीही बात है, तो हे महाराज! आप मेरे साथ मेरी स्वामिनी सत्यभामाके घर चलिये। वहाँ राजकुमार भानुकका विवाह होनेवाला है, इसलिये विविध प्रकारके मोदकादिक तैयार किये गये हैं। उनमेंसे कुछ पक्वान्न खिलाकर मैं आपको सन्तुष्ट करूँगी।"

दासीकी यह बात सुनकर प्रद्युम्न उसके साथ सत्यभामाके घर गये। वहाँ उन्हें बाहर बैठाकर वह दासी अन्दर गयी, सत्यभामाको उसे पहचाननेमें भ्रम हो गया। उसने पूछा :-"तू कौन है?" दासीने कहा :-"हे स्वामिनी! मैं आपकी वही कुब्जा दासी हूँ, जो नित्य आपके पास रहती हूँ। क्या आप मुझे नहीं पहचान सकीं?"

सत्यभामाने कहा :—"क्या तू वही कुब्जा है? तेरा वह कूबड़ कहाँ चला गया? सचमुच, आज तुझे कोई न पहचान सकेगा।"

यह सुनकर कुब्जा हँस पड़ी और उसने सत्यभामा-

को उस ब्राह्मणका सब हाल कह सुनाया। सत्यभामा भी उस ब्राह्मणको देखनेके लिये लालायित हो उठी। उसने पूछा :—"वह ब्राह्मण कहाँ है?

कुब्जाने कहा :—"वह महलके बाहर बैठा हुआ है।"

सत्यभामाने कहा :—"जा तू, उस महात्माको शीघ्र ही मेरे पास ले आ!"

कुब्जा तुरन्त बाहर गयी और उस मायावी ब्राह्मणको अन्दर ले आयी। वह आशीर्वाद देकर एक आसन पर बैठ गया। तदनन्तर सत्यभामाने उससे कहा :—"हे ब्रह्मदेवता! आपने इस कुब्जाका कूबड़ अच्छा कर अपनी असीम शक्ति-सामर्थ्यका परिचय दिया है। अब आप मुझ पर भी दया करिये और मुझे रुक्मिणीकी अपेक्षा अधिक सुन्दर बना दीजिये। आपके लिये यह जरा भी कठिन नहीं है। हे भगवन्! आपकी इस कृपाके लिये मैं चिरऋणी रहूँगी।"

मायाविप्रने कहा :—"तुम्हें क्या हुआ है? मुझे तो तुम परम रूपवती दिखायी देती हो। मैंने तो अन्य स्त्रियोंमें ऐसा रूप कहीं नहीं देखा!"

सत्यभामाने कहा :—"हे भद्र! आपका कहना यथार्थ है। मैं अन्य स्त्रियोंको देखते हुए अवश्य रूपवती हूँ, परन्तु अब मैं ऐसा रूप चाहती हूँ, जो अलौकिक और अनुपम हो, जिसके सामने किसीका भी रूप ठहर न सके।"

मायाविप्रने कहा :-"यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो पहले अपने समूचे शरीरको कुरूप बना डालो। कुरूप होने पर विशेष रूपसे सुन्दर बनाया जा सकता है।"

सत्यभामाने कहा :—"हे भगवन्! शरीरको कुरूप बनानेके लिये मुझे क्या करना चाहिये।"

मायाविप्रने कहा :-"पहले तुम अपना शिर मुंड़वा डालो, फिर समूचे शरीरमें कालिख लगाकर फटे पुराने कपड़े पहन लो। इससे तुम कुरूप दिखायी देने लगोगी। ऐसा रूप धारण कर जब तुम मेरे सामने आओगी, तब मैं तुरन्त तुम्हें रूप लावण्य और सौभाग्यकी आगार बना दूँगा।"

सत्यभामाने स्वार्थवश ऐसा ही किया। इसके बाद वह जब मायाविप्रके पास गयी, तब उसने कहा :—

"मैं तो इस समय भूखों मर रहा हूँ! भूखके कारण मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। पहले मुझे पेट भर खानेको दो, तब मैं दूसरा काम करूँगा।"

यह सुनकर सत्यभामाने रसोईदारिनोंको उसे भोजन करानेकी आज्ञा दी। इसपर ब्राह्मण देवता भोजन करने चले, किन्तु चलते समय उन्होंने सत्यभामाके कानमें कहा :—"हे अनघे! जब तक मैं भोजन करके न लौटूं, तब तक तुम कुलदेवीके सामने बैठ कर "रुद्र बुद्र रुद्र बुद्र स्वाहा" इस मन्त्रका जप करो।" सत्यभामाने ब्राह्मणदेवताकी यह आज्ञा भी चुपचाप सुन ली और मन्त्र-जप करना भी आरम्भ किया।

उधर ब्राह्मणदेवता भोजन करने गये और अपनी विद्याके बलसे वहाँ भोजनकी जितनी सामग्री थी, वह सब चट कर गये। उनका यह हाल देखकर बेचारी रसोईदारिनें घबड़ा गयीं। वे डरने लगीं, कि सत्यभामा यह हाल सुनेगी, तो न जाने क्या कहेंगी? अन्तमें जब वहाँ जलके सिवा भोजनकी कोई भी सामग्री शेष न बची, तब लाचार होकर उन्हें मायाविप्रसे कहना पड़ा,

कि भोजन-सामग्री समाप्त हो गयी है, इसलिये महाराज अब दया करिये! महाराज तो यह सुनकर चिढ़ उठे। उन्होंने कहा :-"यदि भरपेट खिलानेकी सामर्थ्य न थी, तो व्यर्थ ही मुझे यहाँपर क्यों बुलाया? मेरा पेट अभी नहीं भरा। अब मुझे कहीं अन्यत्र जाकर अपनी उदर-पूर्ति करनी पड़ेगी।"

इस प्रकार रोष दिखाकर वह ब्राह्मणवेश धारी प्रद्युम्न वहाँसे चलते बने और इधर बेचारी सत्यभामा सौन्दर्य प्राप्त करनेकी आशा में अपने रूपको विरूप बना, उस मन्त्रका जप करती ही रह गयी।

सत्यभामाके महलसे निकल, प्रद्युम्न एक बाल-साधुका वेश धारण कर, उसी वेशमें रुक्मिणीके महलमें पहुँचे। नेत्रोंको आनन्द देनेवाला उनका चन्द्र समान रुप देखकर रुक्मिणी उठकर खड़ी हो गयीं और उनको आसन देनेके लिये अन्दर गयीं। इतनेहीमें वे वहाँ रक्खे हुए कृष्णके सिंहासन पर बैठ गये। आसन लेकर बाहर आनेपर रुक्मिणीने देखा, कि साधु महाराज कृष्णके आसन पर बैठे हुए हैं, तब उनके नेत्र आश्चर्यसे विकसित

हो गये। उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा :—"महाराज! मुझे एक बात कहनेके लिये क्षमा कीजियेगा। मैंने सुना है कि इस सिंहासन पर श्रीकृष्ण या उनके पुत्रके सिवा यदि कोई और बैठेगा, तो देवतागण उसे सहन न करेंगे और उसका अनिष्ट होगा।'

माया साधुने मुस्कुरा कर कहा :—"माता! आप चिन्ता न करें। मेरे तपके प्रभावसे देवता मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

उसका यह उत्तर सुनकर रुक्मिणी शान्त हो गयीं। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा :—"महाराज! यहाँ आपका आगमन किस उद्देश्यसे हुआ है? मेरे योग्य जो कार्यसेवा हो, वह निःसंकोच होकर कहिये।"

माया साधुने कहा :—हे भद्रे! मैं सोलह वर्षसे निराहार तप कर रहा हूँ। यहाँ तक, कि मैंने माताका दूध भी नहीं पिया। आज मैं पारण करनेके लिये यहाँ आया हूँ। आप मुझे जो कुछ दे सकती हों, सहर्ष दें।"

रुक्मिणीने कहा :—"हे मुने! आज तक मैंने

सोलहवर्षका तप कहीं भी नहीं सुना। हाँ, उपवाससे लेकर एक वर्षका तप अवश्य सुना है।"

माया साधुने कुछ रुष्ट होकर कहा :—"आपको इन सब बातों पर विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि आपके घरमें कुछ हो और आप मुझे देना चाहती हों तो दे दें, अन्यथा मैं सत्यभामाके यहाँ चला जाऊँगा।

रुक्मिणीने कहा :—"नहीं महाराज, आप नाराज न होइये। असल बात तो यह है कि आज मैंने चिन्ताके कारण कुछ भी भोजन नहीं बनाया है। इसलिये ऐसी अवस्थामें आपको मैं क्या दूँ?"

माया साधुने गंभीरता पूर्वक पूछा :—"आज आपको इतनी चिन्ता क्यों है?"

रुक्मिणीने कहा :—"महाराज! मुझे एक पुत्र हुआ था पर उसका वियोग हो गया है। अबतक मैं उसके मिलनकी आशामें कुल देवीकी आराधना कर रही थी। आज मैंने कुल देवीके समक्ष अपने शिरका बलिदान चढ़ाना स्थिर किया और तदनुसार ज्योंहीं मैंने अपनी

गदन पर प्रहार किया, त्योंहीं देवीने प्रसन्न होकर कहा :—"हे पुत्री ! इतनी शीघ्रता मत कर ! जिस दिन तुम्हारे इस आम्रवृक्ष पर असमयमें बौर आवेंगे, उसी दिन तुम्हारा पुत्र तुमसे आ मिलेगा।" मैं देखती हूँ कि इस आम्रवृक्षमें तो बौर लग गये, परन्तु मेरा पुत्र न आया। इसीसे मेरा जी दुःखी है। हे महात्मन् ! लग्न और राशि आदिक देखकर क्या आप मुझे यह बतला सकते हैं, कि मेरा पुत्र कब आयगा ?"

माया साधुने कहा :—"जो मनुष्य बिना कुछ भेंट दिये ज्योतिषीसे प्रश्न करता है, उसे लाभ नहीं होता।"

रुक्मिणीने कहा :—"अच्छा महाराज ! बतलाइये, मैं आपको क्या दूँ ?"

माया साधुने कहा :—"तपश्चर्याके कारण मेरी पाचनशक्ति बहुत कमजोर हो गयी है, इसलिये मुझे मण्डु (माँड) बना दो !"

रुक्मिणीने श्रीकृष्णके लिये कुछ लड्डू बना रक्खे थे। उन्हींको तोड़ कर वह मण्डु बनानेकी तैयारी करने लगी, परन्तु माया साधुने अपनी विद्याके प्रभावसे ऐसी

युक्ति कर दी कि, किसी तरह आग ही न सुलग सकी। इससे रुक्मिणी बहुत चिन्तित हो उठी। यह देखकर माया साधुने कहा :—"यदि मण्डु तैयार नहीं हो सकता, तो मुझे लड्डू ही दे दो। भूखके कारण मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।"

रुक्मिणीने कहा :—"मुझे यह लड्डू देनेमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु यह बहुत ही गरिष्ट हैं। कृष्णके सिवा इन्हें शायद ही कोई दूसरा पचा सके! मुझे भय है कि आपको यह लड्डू खिलानेसे मुझे कहीं ब्रह्म-हत्याका पाप न लग जाय।"

माया साधुने कहा :—"तपश्चर्याके कारण मुझे कभी अजीर्ण नहीं होता।"

यह सुनकर रुक्मिणी उसे डरते-डरते लड्डू देने लगी और वह एकके बाद एक अपने मुँहमें रखने लगा। उसको इस तरह अनायास लड्डू खाते देखकर रुक्मिणी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उन्होंने हँसकर कहा :—"धन्य है महाराज! आप तो बड़ेही बलवान मालूम होते हैं।"

उधर सत्यभामा अब तक कुल देवीके सामने बैठी हुई मायाविप्रके आदेशानुसार मन्त्रका जप ही कर रही थी। उसका यह जप न जाने कब तक चला करता, परन्तु इतनेहीमें कुछ अनुचरोंने आकर पुकार मचायी कि :—"हे स्वामिनी! नगरमें आज महा अनर्थ हो गया है। फलसे लदे हुए वृक्षोंको न जाने किसने फल रहित कर दिये हैं। घासकी दूकानोंको घास रहित और जलाशयोंको भी जल रहित बना दिया है। इसके अतिरिक्त भानुकको न जाने किसने एक उत्पाती अश्व दे दिया, जिसपर बैठनेसे उनकी दुर्गति हो गयी। पता लगाने पर न उस घोड़ेका ही पता मिलता है, न उसके मालिकका हीं। हमलोग इन सब घटनाओंसे पूरी तरह परेशान हो रहे हैं।"

यह सब बात सुनकर सत्यभामाका ध्यान भंग हुआ। उसने दासियोंसे पूछा :—"वह ब्राह्मण कहाँ हैं?" उत्तरमें दासियोंने डरते डरते उसके भोजन करने और नाराज होकर चले जानेका हाल उसे कह सुनाया। इससे सत्यभामा मन-ही-मन जल कर खाक हो गयी। उसे

इस बातसे बड़ा ही दुःख हुआ कि वह ब्राह्मण उसे रूपवती बनानेका प्रलोभन देकर उलटा उसे विरूप बनाकर चला गया। इसलिये वह अपने मनमें कहने लगी कि :—"अब तो मुझे रुक्मिणीके सामने और भी नीचा देखना पड़ेगा।" उसे यह भली भाँति खयाल था कि आज रुक्मिणीका शिर मुड़ाया जायगा, परन्तु अब तक वह चुपचाप बैठी हुई थी। ब्राह्मण देवताकी कृपासे जब वह अपना शिर मुड़ाकर विरुप बन गयी, तब वह कहने लगी, कि अब रुक्मिणीका शिर मुड़ानेमें भी विलम्ब न करना चाहिये। यह सोचकर उसने उसी समय कई दासियोंको एक टोकरी देकर आज्ञा दी कि इस टोकरीमें रुक्मिणीके केश ले आओ।

सत्यभामाके आदेशानुसार दासियाँ रुक्मिणीके पास गयीं और उनसे कहने लगीं कि हमारी स्वामिनीने आपके केश ले आनेके लिये हमें आपकी सेवामें भेजा है। उस समय मायामुनि भी वहाँ बैठे हुए थे। दासियोंका उपरोक्त वचन सुनकर वे उठ खड़े हुए और अपनी विद्याके बलसे क्षणमात्रमें उन सबोंके शिर मूँड,

उन्हींके केशोंसे वह टोकरी भर, उन्हें सत्यभामाके पास वापस भेज दिया।

दासियोंकी यह दुरवस्था देखकर सत्यभामाको बड़ा ही क्रोध आया। उसने दासियोंसे पूछा :—"तुम्हारी ऐसी अवस्था किसने की?"

दासियोंने झनक कर कहा :—"आप यह प्रश्न ही क्यों करती हैं? जैसा स्वामी होता है, वैसा ही उसका परिवार भी होता है!"

सत्यभामाने इससे भ्रमित होकर इस बार कई हजामोंको रुक्मिणीके केश लानेका आदेश दिया। तदनुसार वे भी रुक्मिणीके पास पहुँचे; पर मायामुनिने उनकी भी वही गति की जो दासियोंकी की थी। दासियोंके तो उन्होंने केवल केश ही मूँड़े थे, परन्तु अबकी बार नाइयोंके तो उन्होंने शिरका चमड़ा तक छील लिया!

दासियोंकी तरह यह हजाम भी रोते कलपते सत्यभामाके पास पहुँचे। सत्यभामा इसबार और भी क्रुद्ध हुई। उसने कृष्णके पास जाकर कहा :—"मैंने

आपके सामने केश देनेकी बाजी लगायी थी। आज वह दिन आ पहुँचा है। यदि रुक्मिणीके पुत्रका विवाह होता, वह आज मुझे छोड़ न देती। अब आप उसे बुलाकर मुझे शीघ्र ही उसके केश दिलाइये!"

कृष्णने हँसकर कहा :—"प्यारी! मैं उसके केश क्या दिलाऊँ? तुमने तो उसके बदले पहलेही से अपना शिर मुँड़वा लिया है!"

सत्यभामाने कहा :—"आज मुझे ऐसी दिल्लगियाँ अच्छी नहीं लगतीं। आप शीघ्र ही मुझे रुक्मिणीके केश दिलाइये!"

कृष्णने कहा :—"अच्छा, मैं बलरामको तुम्हारे साथ भेजता हूँ। उनके साथ जाकर तुम स्वयं रुक्मिणीके केश ले आओ!"

कृष्णके आदेशानुसार बलराम सत्यभामाके साथ रुक्मिणीके वासस्थानमें गये। वहाँ प्रद्युम्नने अपनी विद्यासे कृष्णका एक रूप उत्पन्न किया। बलराम उन्हें देखते ही लज्जित हो उठे और बिना कुछ कहे सुने ही चुपचाप पूर्व स्थानमें लौट आये। वहाँ भी कृष्णको

देखकर वे कहने लगे :—"आप यह क्या दिल्लगी कर रहे हैं? मुझे सत्यभामाके साथ रुक्मिणीके केश लेने भेजा और आप स्वयं मेरे पहले ही वहाँ पहुँच गये। फिर, न वहाँ जाते देरी, न यहाँ आते देरी! मेरे वापस आनेके पहले ही आप भी यहाँ वापस आ गये! रुक्मिणीके यहाँ आपको देखकर मेरे साथ साथ बेचारी सत्यभामा भी लज्जित हो गयी!"

बलरामके यह वचन सुनकर कृष्ण बड़े ही चक्करमें पड़ गये। वे शपथ-पूर्वक कहने लगे कि :—"मैं वहाँ नहीं गया, तुम मुझपर क्यों संदेह करते हो।" यह सुनकर बलराम तो शान्त हो गया; किन्तु सत्यभामाको जरा भी विश्वास न हुआ। वह क्रुधित होकर कहने लगी कि :—"यह सब तुम्हारी ही माया है!" यह कहती हुई वह अपने महलको चली गयी। कृष्ण इससे बड़े असमंजसमें पड़ गये और वे उसके भवनमें जाकर उसे समझाने बुझाने और अपनी सत्यता पर विश्वास कराने लगे।

इधर रुक्मिणीके वहाँ नारदने आकर उससे कहा

कि :—"हे भद्रे ! तुम अपने पुत्रको भी नहीं पहचान सकती हो ? यही तो तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न कुमार है !"

नारदने जब यह भेद खोल दिया, तब प्रद्युम्नने भी साधुका वेश परित्याग कर अपना देव समान असली रूप धारण कर लिया। इसके बाद वे प्रेम-पूर्वक माताके पैरोंपर गिर पड़े। रुक्मिणीके स्तनोंसे भी उस समय वात्सल्यके कारण दूधकी धारा बह निकली। उन्होंने अत्यन्त स्नेह-पूर्वक प्रद्युम्नको गलेसे लगा लिया और हर्षाश्रुओंसे उसका समूचा शरीर भिगो डाला।

इस प्रेम-मिलनके बाद प्रद्युम्नने रुक्मिणीसे कहा :- "हे माता ! जब तक मैं अपने पिताको कोई चमत्कार न दिखाऊँ तब तक आप उनको मेरा परिचय न दें !"

हर्षके आवेशमें रुक्मिणीने इसका कुछ भी उत्तर न दिया। प्रद्युम्न उसी समय एक माया-रथ पर रुक्मिणी-को बैठा कर वहाँसे चल पड़े। वे मार्गमें शंख बजा बजाकर लोगोंसे कहते जाते थे कि मैं रुक्मिणीको हरण किये जाता हूँ। यदि कृष्णमें शक्ति हो, तो इसकी रक्षा

करे! उनके इस कार्यसे चारों ओर हाहाकार मच गया। शीघ्रही कृष्णने भी यह समाचार सुना। वे कहने लगे कि, न जाने कौन दुर्मति अपना प्राण देने आया है। यह कहते हुए वे तुरंत बलराम और कुछ सैनिकोंको साथ लेकर प्रद्युम्नके पीछे दौड़ पड़े। प्रद्युम्न तो उनके आगमनकी बाट ही जोह रहा था। उसने एक ही बारमें समस्त सैनिकोंके दाँत खट्टे कर, कृष्णको शस्त्र रहित बना दिया। इससे कृष्णको बहुत ही आश्चर्य और दुःख हुआ।

इसी समय कृष्णकी दाहिनी भुजा फड़क उठी। कृष्णने यह हाल बलरामसे कहा। इसी समय नारदने उनके पास आकर कहा :—"हे कृष्ण! अब युद्धका विचार छोड़ दीजिये और रुक्मिणी सहित अपने इस पुत्रको अपने मन्दिरमें लिवा ले जाइये। यही आपका वह खोया हुआ धन—प्रद्युम्नकुमार है!"

ज्योंही नारदमुनिने कृष्णको प्रद्युम्नका यह परिचय दिया, त्यों ही प्रद्युम्न भी रथसे उतर कर कृष्णके चरणों पर गिर पड़ा। कृष्णने अत्यन्त प्रेमसे उसे उठा कर अपने गलेसे लगा लिया। पिता और पुत्रका यह मिलन

भी दर्शनीय था। जिसने उस दृश्यको देखा, उसीके नेत्र धन्य हो गये।

प्रद्युम्नकुमारको बारंबार आलिङ्गन और चुम्बन करनेके बाद कृष्ण, और रुक्मिणी प्रद्युम्नके साथ एक रथ पर सवार हुए और बड़ी धूमके साथ नगरके प्रधान मार्गोंसे होकर उनको अपने मन्दिरमें लिवा ले गये। नगर निवासियोंने उस समय उनपर पुष्पवर्षा कर, उनके जयजय कारसे आकाश गुँजा दिया। आज रुक्मिणीकी आराधना सफल हो गयी—देवीका वचन सत्य हो गया—उसकी सूनी गोद भर गयी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

शाम्ब-चरित्र

प्रद्युम्नके आगमनसे द्वारिका नगरीमें चारों ओर आनन्दकी हिलोरें उठने लगीं। भानुकका व्याह तो था ही, प्रद्युम्नके आनेके उपलक्षमें भी कृष्णने एक महोत्सव मनानेका आयोजन किया। परन्तु इतनें ही में दुर्योधनने

आकर कृष्णसे कहा :—"हे स्वामिन्! मेरी पुत्री जो शीघ्रही आपकी पुत्रवधू होनेवाली थी—जिसका ब्याह भानुकुमारके साथ होने वाला था, उसे कोई हरण कर ले गया है। आप शीघ्रही उसका पता लगवाइये, वर्ना भानुका ब्याह ही रुक जायगा।"

कृष्णने कहा :—"मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ, जो बतला दूँ कि इस समय वह कहाँ है? यदि मैं सर्वज्ञ होता, तो जिस समय प्रद्युम्नको कोई हरण कर ले गया था, उस समय मैं उसे क्यों न खोज निकालता!"

कृष्णकी भाँति अन्यान्य लोगोंने भी इस विषयमें अपनी असमर्थता प्रकट की। अन्तमें प्रद्युम्नने कहा :—"मैं अपनी प्रज्ञप्ति विद्यासे उसका पता लगाकर उसे अभी लिये आता हूँ। मेरे लिये यह बायें हाथका खेल है।"

प्रद्युम्नके यह वचन सुनकर दुर्योधन तथा कृष्णादिकको अत्यन्त आनन्द हुआ। प्रद्युम्न उसी समय उठ खड़ा हुआ और थोड़ी ही देरमें उस कन्याको लाकर सबके सामने हाजिर कर दिया। यह देख कर कृष्ण परम प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रद्युम्नसे कहा :—तुमने इस

कन्याका पता लगाया है, इसलिये यदि तुम कहो तो इससे तुम्हारा व्याह कर दिया जाय। परन्तु प्रद्युम्नने कहा कि :—"यह मेरे भाईकी पत्नी है, इसलिये मैं इससे व्याह कदापि नहीं कर सकता। निदान, उसका व्याह भानुकके साथ कर दिया गया। प्रद्युम्नकी इच्छा न होने पर भी कृष्णने उसी समय कई विद्याधर राज-कुमारियोंके साथ प्रद्युम्नका भी व्याह कर दिया। नारदमुनिने प्रद्युम्नका पता लगाने और उसे कालसंवरके यहाँसे लिवा लानेमें बड़ा परिश्रम किया था, इसलिये कृष्ण और रुक्मिणी उनके परम आभारी थे। विवाहोत्सव पूर्ण होने पर उन्होंने यथाविधि उनका पूजन कर सम्मान-पूर्वक उन्हें विदा किया।

उधर प्रद्युम्नकी सम्पत्ति और प्रशंसासे सत्यभामाको बड़ाही सन्ताप हुआ और वह कोप गृहमें जाकर एक कोनेमें लेट रही। कृष्ण जब उसके भवनमें गये, तब उनको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा :—"हे सुभगे! तुम इस प्रकार दुःखी क्यों हो रही हो? क्या किसीने तुम्हारा अपमान किया है।

सत्यभामाने सजल नेत्रोंसे कहा :—"नहीं, किसीने मेरा अपमान नहीं किया है, परन्तु एक आन्तरिक पीड़ाके कारण मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। मैं आपसे सत्य कहती हूँ, कि यदि मेरे प्रद्युम्नके समान पुत्र नहीं होगा, तो मैं अवश्य प्राणत्याग दूँगी।"

उसका यह आग्रह देखकर कृष्णने उसे सान्त्वना दी। इसके बाद उन्होंने हरिणीगमेषीदेवको उद्देश कर अष्टम तप करते हुए पौषध व्रत ग्रहण किया। इससे हरिणीगमेषीने प्रकट होकर पूछा—"हे राजन् कहिये, आपका क्या काम है? आपने मुझे क्यों याद किया है?"

कृष्णने कहा :—"भगवन्! सत्यभामाको प्रद्युम्नके समान एक पुत्र चाहिये। आप उसकी यह इच्छा पूर्ण कीजिये।"

हरिणीगमेषीने कृष्णके हाथमें एक पुष्पहार देकर कहा :—"राजन्! यह हार पहनाकर आप जिस रमणीसे रमण करेंगे, उसीके मनवाञ्छित पुत्र होगा।"

इतना कह वह देव तो अन्तर्धान हो गया। इधर

प्रद्युम्नको अपनी प्रज्ञप्ति विद्याके कारण यह सब हाल मालूम हुआ। इसलिये उसने अपनी माताको उस हारकी बात जतला कर कहा कि :—"हे माता! यदि आप मेरे समान दूसरा पुत्र चाहती हों तो किसी तरह वह हार अपने हाथ कीजिये!"

रुक्मिणीने कहा :—"हे पुत्र! मैं अकेले तुमको ही पुत्र रूपमें पाकर धन्य हो गयी हूँ। अब मुझे अन्य पुत्रोंकी जरूरत नहीं है।"

प्रद्युम्नने कहा :—"अच्छा, तब यह बतलाइये, कि मेरी अन्य माताओंमें कौन माता आपको अधिक प्रिय है? जो आपको अधिक प्रिय हो और जिसे आप कहें, उसीको मैं वह हार दिलवा दूँ!"

रुक्मिणीने कहा :—"हे पुत्र! तुम्हारे वियोगसे जिस प्रकार मैं दुःखित रहती थी, उसी प्रकार जाम्बवती भी दुःखित रहती थी। तुम उसे वह हार दिला दो। उसके पुत्र होनेसे मुझे प्रसन्नता ही होगी!"

इसके बाद प्रद्युम्नके कहनेसे रुक्मिणीने जाम्बवतीको अपने पास बुला भेजा। उसके आनेपर प्रद्युम्नने अपनी

प्रज्ञप्ति विद्याके बलसे उसे सत्यभामाके सदृश बना दिया। इसके बाद रुक्मिणीने सब बातें समझा कर सन्ध्याके समय उसे कृष्णके शयनागारमें भेज दिया। कृष्णने उसे सत्यभामा समझ कर उसे सहर्ष वह हार देकर उसके साथ समागम किया। इसके बाद जाम्बवतीने सिंहका एक स्वप्न देखा और महाशुक्र देवलोकसे कैटभ का जीव च्युत होकर उसके उदरमें आया। जाम्बवतीको इससे अत्यन्त आनन्द हुआ और वह मन-ही-मन रुक्मिणी तथा प्रद्युम्नको धन्यवाद देती हुई अपने महलको चली गयी।

उधर कृष्णने दिनके समय सत्यभामासे उस हारका हाल बतला कर, रात्रिके समय उसे अपने शयनगृहमें बुलाया था। उनके इस आदेशानुसार, जाम्बवतीके चले जानेपर, सत्यभामा आ खड़ी हुई। उसे देखकर कृष्ण अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! स्त्रियोंमें कितनी भोगासक्ति होती है! यह अभी मेरे पाससे गयी है और फिर मेरे पास आपहुँची है। साथही उन्हें यह भी विचार आया कि सत्यभामाका रूप धारण कर पहले किसीने मुझे धोखा तो नहीं दिया है? कुछ भी हो,

उन्होंने सत्यभामाको निराश करना उचित न समझा। वैसा करनेसे अवश्य ही उसका जी दुःखित हो जाता। कृष्णने यही सोचकर उसे भी रति-दान देना स्थिर किया।

सत्यभामाका रति समय जानकर प्रद्युम्नने इसी समय कृष्णकी भेरी बजा दी। उसकी ध्वनि सुनते ही चारों ओर खलबली मच गयी। कृष्णको मालूम हुआ कि प्रद्युम्नने ही सत्यभामाको छकाया है, क्योंकि सपत्नीका एक पुत्र दस सपत्नीके बराबर होता है। खैर, भवितव्यताको कौन रोक सकता है? सत्यभामाने भीत भावसे सहवास किया है इसलिये निःसन्देह वह भीरु पुत्रको जन्म देगी।"

दूसरे दिन सुबह कृष्ण रुक्मिणीके भवनमें गये तो वहाँ जाम्बवतीको उस दिव्य हारसे विभूषित देखा। उन्हें अपनी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखते देखकर जाम्बवतीने कहा :—"स्वामिन्! आज मेरी ओर आप इस तरह क्यों देख रहे हैं? मैं तो आपकी वह पत्नी हूँ, जिसे आप अनेकबार देख चुके हैं।"

कृष्णने कहा :—"यह तो सब ठीक है, परन्तु यह हार तुमने कहाँसे पाया है ?"

जाम्बवतीने हँसकर कहा :—"आपहीने तो मुझे दिया था ! क्या आप अपने हाथोंका किया हुआ काम भी भूल जाते हैं ?"

यह सुनकर कृष्ण हँस पड़े। इसपर जाम्बवतीने उन्हें अपना सिंह विषयक स्वप्न कह सुनाया। सुनकर कृष्णने कहा :-"यह स्वप्न बहुत ही उत्तम है। हे देवि ! प्रद्युम्नके समान तुम्हें भी एक पुत्र-रत्न होगा।" इतना कह कृष्ण उस समय वहाँसे चले गये।

तदनन्तर जाम्बवतीने गर्भकाल पूर्ण होनेपर शुभ मुहूर्त्तमें सिंहके समान अतुल बलशाली शाम्ब नामक पुत्रको जन्म दिया। इसी समय सारथीके जयसेन और दारुक तथा मन्त्रीके सुबुद्धि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सत्यभामा भी भीतावस्थामें गर्भवती हुई थी, इसलिये उसने भीरु नामक एक पुत्रको जन्म दिया। कृष्णकी अन्यान्य पत्नियोंने भी इसी समय एक एक पुत्रको जन्म दिया। परन्तु इन सबोंकी अपेक्षा सारथी और मन्त्रीके

पुत्रोंके साथ शाम्बकुमारकी विशेष मित्रता थी। इसलिये वह उन्हींके साथ खेलता कूदता हुआ बड़ा होने लगा। जब उसकी अवस्था पढ़ने लिखने योग्य हुई, तब उसने बहुत ही अल्प समयमें अनेक विद्या और कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली।

कुछ दिनोंके बाद रुक्मिणीको अपने भाई राजा रुक्मिकी याद आयी। उसके वैदर्भी नामक एक रूपवती पुत्री थी। रुक्मिणीने सोचा कि उसका व्याह प्रद्युम्नके साथ हो जाय तो बहुत अच्छा हो। यह सोचकर उसने भोजकटपुरमें राजा रुक्मिको कहलाया कि :—"आप अपनी पुत्री वैदर्भीका विवाह प्रद्युम्नकुमारके साथ कर दें, तो अत्युत्तम हो। इसके पहले मेरा और कृष्णका योग हो चुका है, वह दैव योगसे ही हुआ है। अब उसके सम्बन्धमें किसी तरहकी विशंका न करें। आप अपने हाथसे वैदर्भी और प्रद्युम्नकुमारका भी योग मिला दें। इससे हमलोगोंका पुराना प्रेमसम्बन्ध फिरसे नया हो जायगा।"

रुक्मिणीका यह सन्देश सुनकर रुक्मिको अपनी

पुरानी शत्रुता याद आ गयी। इसलिये उसने दूतसे कहा :—"हे दूत! मैं चाण्डालोंके यहाँ अपनी पुत्रीका विवाह कर सकता हूँ परन्तु कृष्णके वंशमें उसका विवाह कदापि नहीं कर सकता।"

उसका यह उत्तर सुनकर दूत वापस लौट आया और उसने रुक्मिणीको सब हाल कह सुनाया। भाईका यह अपमानजनक उत्तर सुनकर रुक्मिणीको इतना दुःख हुआ कि रातको उसे नींद भी न आयी। उसकी यह अवस्था देखकर प्रद्युम्नने पूछा :—"माता! आज तुम इतनी उदास क्यों हो?" रुक्मिणीने इसके उत्तरमें रुक्मि राजाका सब वृत्तान्त उसे कह सुनाया। सुनकर प्रद्युम्नने कहा :—"हे माता! तुम चिन्ता न करो। रुक्मि मामा पर मधुर वचनोंका प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसीलिये तो पिताजीने आपके विवाहके समय दूसरी युक्तिसे काम लिया था। मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब वैदर्भीके साथ ही विवाह करूँगा। यदि जरूरत हुई तो मैं भी पिताजीकी तरह इस मामलेमें किसी युक्तिसे ही काम लूँगा।"

इसके बाद दूसरेही दिन शाम्बकुमारको अपने साथ लेकर प्रद्युम्नकुमार भोजकटपुरमें जा पहुँचे। वहाँ वे दोनों चाण्डालका वेश धारणकर नगरमें घूम-घूमकर किन्नरकी भाँति मधुरस्वरसे गायन करने लगे। उनका गायन इतना सुन्दर, इतना मधुर और इतना मोहक होता था कि उसे जो सुनता था वही मुग्ध हो जाता था। धीरे धीरे इनकी बात राजा रुक्मिके कानोंतक पहुँची। फलतः उसने भी उनको राज भवनमें बुलाकर सपरिवार इनका गायन सुना।

गायन समाप्त होनेपर उसने उन दोनोंको काफी ईनाम देकर पूछा :—"तुम लोग यहाँ किस स्थानसे आ रहे हो?"

माया चाण्डालोंने कहा :—"राजन्! हमलोग स्वर्गसे द्वारिका नगरी देखने आये थे और इस समय वहींसे आ रहे हैं।"

इधर अपने पिताके पास ही राजकुमारी वैदर्भी बैठी हुई थी। उसने उत्सुकतापूर्वक उनसे पूछा :-"क्या तुमलोग कृष्ण-रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्न भी जानते हो?"

शाम्बने कहा :—"कामदेवके समान उस महा रूपवान् और बलवान् प्रद्युम्नको कौन नहीं जानता? उसको देखते ही दर्शकके नेत्र शीतल हो जाते हैं।"

प्रद्युम्नकी यह प्रशंसा सुनकर वैदर्भी रागयुक्त और उत्कंठित बन गयी। इतनेहीमें एक मदोन्मत्त हाथी अपने बन्धन तुड़ाकर गजशालासे भाग आया और नगरमें चारों ओर उत्पात मचाने लगा। किसीको वह पैरोंसे कुचल डालता, किसीको सूंढ़से पकड़कर आकाश में फेंक देता और किसीको इतनी तेजीसे खदेड़ता, कि उसे भाग कर प्राण बचाना भी कठिन हो जाता। राजा रुक्मिके यहाँ जितने महावत थे, वे सभी उसे वश करनेमें विफल हो गये।

अन्तमें, जब उसके उत्पातके कारण चारों ओर हाहाकार मच गया, तब राजा रुक्मिने घोषणा की कि :—"जो इस हाथीको वश कर लेगा, उसे मुँहमाँगा ईनाम दिया जायगा।" रुक्मिकी यह घोषणा सुनकर शाम्ब और प्रद्युम्न इसके लिये कटिबद्ध हुए और उन्होंने मधुर संगीत द्वारा उस हाथीको स्तम्भित कर दिया।

अनुनय कर अपना अपराध क्षमा कराया। साथ ही उसने उन दुर्गुणोंको भी सदाके लिये जलाञ्जलि दे दी, जिनके कारण जब तब उसकी निन्दा हुआ करती थी। इतना करने पर उसका चरित्र भी निर्मल बन गया और एक देवताकी भाँति सांसारिक सुख उपभोग करते हुए वह अपने दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत करने लगा।

सोलहवाँ परिच्छेद

जरासन्ध और शिशुपाल वध

कुछ दिनोंके बाद यवन द्वीपसे जलमार्ग द्वारा बहुतसा बहुमूल्य किराना लेकर कुछ वणिकलोग द्वारिका नगरी आये। वहाँपर उन्होंने और सब चीजें तो बेच डाली, परन्तु बहुमूल्य रत्न कम्बलोंका कोई अच्छा ग्राहक उन्हें वहाँ न मिल सका। इसलिये विशेष लाभकी

आशासे वे राजगृह नगर गये। वहाँके प्रसिद्ध व्यापारी उन्हें राजेन्द्र जरासन्धकी पुत्री जीवयशाके पास लिवा ले गये। उन्होंने उसे वह कम्बल दिखाये जो छनेसे बहुत ही कोमल प्रतीत होते थे। जीवयशाने उनको देख सुनकर, उनकी जो कीमत लगायी वह उनकी लागतसे भी आधी थी। यह देख कर वणिक लोग कहने लगे कि :—"हे देवि! हमलोग तो विशेष लाभ की इच्छासे द्वारिका छोड़कर यहाँ आये थे, किन्तु यहाँ तो हमें वह मूल्य भी नहीं मिल रहा है जो द्वारिकामें मिलता था।"

जीवयशाने आश्चर्यपूर्वक पूछा :—"द्वारिकानगरी कहाँ है और वहाँपर कौन राज्य करता है।"

वणिकोंने कहा :—"भारतके पश्चिम तटपर समुद्रके देवताओंने एक नयी नगरी निर्माणकी है। उसीको लोग द्वारिका कहते हैं। वहाँ देवकी और वसुदेवके पुत्र कृष्ण राज्य करते हैं।"

कृष्णका नाम सुनते ही जीवयशा मानो महान शोकसागरमें जा पड़ी। उसकी आखोंमें आँसू भर आये।

वह कहने लगी :—"अहो ! मेरे पतिदेवको मारनेवाला अब तक इस संसारमें जीवित है और राज्य कर रहा है ! मेरेलिये इससे बढ़कर दुःखका विषय और क्या हो सकता है ?"

इस प्रकार जीवयशाको विलाप करते देख, जरासन्धने उससे इसका कारण पूछा। इसपर उसने कृष्णका सब हाल उसे कह सुनाया। साथही उसने कहा :—"हे तात ! मैंने कृष्णका सर्वनाश करनेकी प्रतिज्ञा की थी। वह प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी, इसलिये अब मुझे अग्नि प्रवेश करनेकी आज्ञा दीजिये। मुझे अब यह जीवन भार रूप मालूम होता है।"

यह सुनकर जरासन्धने कहा :—"हे पुत्री ! तू रुदन मत कर। मैं कंसके शत्रुकी बहिनों और स्त्रियोंको अवश्य ही रुलाऊँगा।"

इसके बाद मगधपति जरासन्ध यदुवंशसे युद्ध करनेकी तैयारी करने लगा। उसके चतुर मन्त्रियोंने उसे भरसक समझानेकी चेष्टा की, किन्तु उसने किसीकी एक न सुनी। उसने न केवल अपनी सेनाको ही प्रस्थान

करनेकी आज्ञा दी, बल्कि अपनी आज्ञा मानने वाले अनेक राजा और सामन्तोंको भी अपनी अपनी सेनाके साथ इस लड़ाईमें भाग लेनेके लिये निमन्त्रित किया।

जरासन्धका रण-निमन्त्रण पाकर उसके परम बलवान सहदेवादिक पुत्र, महापराक्रमी चेदिराज, शिशुपाल, राजा हिरण्यनाभ, सौ भाइयोंके बलसे गर्विष्ट कुरुवंशी राजा दुर्योधन तथा और न जाने कितने राजा और सामन्त उसकी सेनामें उसी तरह आ मिले जिस प्रकार समुद्रमें विविध नदियाँ आकर मिलती हैं।

यथा समय समुद्र समान इस विशाल सेनाके साथ जरासन्धने राजगृहीसे प्रस्थान करनेकी तैयारी की। प्रयाण करते समय उसके शिरका मुकुट सरक पड़ा, हृदय-हार टूट गया, बायीं आँख फड़क उठी, वस्त्रके छोरमें पैर फँसकर रुक गया, सामने छींक हुई, महा भीषण सर्प रास्ता काट गया, बिल्ली भी सामनेसे निकल गयी, उसके बड़े हाथीने मलमूत्र विसर्जन कर दिया, वायु प्रतिकूल हो गया और गृद्ध शिरके ऊपर मँड़राने

लगे। जरासन्धने इन सब अशुभसूचक अपशकुनोंको देखा, किन्तु फिर भी उसने रणयात्रासे मुख न मोड़ा। बल्कि यों कहना चाहिये कि उसने अपने हृदयमें इनका विचार तक न आने दिया। निर्दिष्ट समय पर कूचका डंका बजा और जरासन्ध अपने गन्ध हस्तीपर सवार हो, अपनी विशाल सेनाके साथ पश्चिमकी ओर चल दिया।

जरासन्धके प्रस्थानका यह समाचार शीघ्रही कलह-प्रेमी नारद मुनि और राजदूतोंने कृष्णको कह सुनाया। कृष्णने भी उसे सुनते ही रणभेरी बजा दी। जिस प्रकार सौधर्म देवलोकमें सुघोषा घण्टेका आवाज सुनकर समस्त देव एकत्र हो जाते हैं, उसी प्रकार रणभेरीका नाद सुनकर समस्त यादव और राजे इकट्ठे हो गये। राजा समुद्रविजय इनमें सर्व प्रधान थे। उनके महानेमि, सत्यनेमि, दृढ़नेमि, सुनेमि, तीर्थंकर श्रीअरिष्टनेमि, जय-सेन, महीजय, तेजसेन, नय, मेघ, चित्रक, गौतम, अक्षफल्क, शिवनन्द और विष्वक्सेन आदि पुत्र भी बड़े रथोंपर महारथियोंकी भाँति शोभा दे रहे थे। समुद्र-विजयका छोटा भाई अक्षोभ्य भी अपने उद्धव, ध्रुव,

क्षुभित, महोदधि, अंभोनिधि, जलनिधि, वामदेव और दृढ़व्रत नामक आठ पुत्रोंको साथ लेकर आया था। यह सभी अत्यन्त बलवान और युद्धविद्यामें परम निपुण थे।

इसी प्रकार सभी दशार्ह अपने अपने पुत्र और सेनाको लेकर इस युद्धमें भाग लेनेको उपस्थित हुए, जिनकी नामावली नीचे दी जाती है :—

तीसरे दशार्ह स्तिमित और उनके पाँच पुत्र, यथा—(१) उर्मिमान (२) वसुमान (३) वीर (४) पाताल (५) स्थिर।

चौथे दशार्ह सागर और उनके छः पुत्र, यथा—(१) निष्कम्प (२) कम्पन (३) लक्ष्मीवान (४) केसरी (५) श्रीमान और (६) युगान।

पाँचवें दशार्ह हिमवन् और उनके तीन पुत्र यथा—(१) विद्युत्प्रभ (२) गन्धमादन और (३) माल्यवान।

छठे दशार्ह अचल और उनके सात पुत्र, यथा—(१) महेन्द्र (२) मलय (३) सह्य (४) गिरि (५) शैल (६) नग और (७) बल।

सातवें दशार्ह धरण और उनके पाँच पुत्र, यथा—

(१) कर्कोटक (२) धनञ्जय (३) विश्वरूप (४) श्वेतमुख (५) वासुकी।

आठवें दशार्ह पूरण और उनके चार पुत्र, यथा—(१) दुष्पूर (२) दुर्मुख (३) दुर्दर्श और (४) दुर्धर।

नवें दशार्ह अभिचन्द्र और उनके छः पुत्र, यथा—(१) चन्द्र (२) शशाङ्क (३) चन्द्राभ (४) शशि (५) सोम और (६) अमृतप्रभ।

दसवें दशार्ह साक्षात् देवेन्द्रके समान परम बलवान वसुदेव भी इसी तरह अपने अनेक पुत्रोंके साथ शत्रु-सेनासे लोहा लेनेके लिये उपस्थित हुए। उनके पुत्रोंके नाम इस प्रकार थे :—

विजयसेनाके अक्रूर और क्रूर। श्यामाके ज्वलन और अशनिवेग। गन्धर्वसेनाके वायुवेग, अमितगति और महेन्द्रगति। मन्त्रीसुता पद्मावतीके सिद्धार्थ, दारुक और सुदारु। नीलयशाके सिंह और मतंगज। सोमयशाके नारद और मरुदेव। मित्रश्रीका सुमित्र। कपिलाका कपिल। पद्मावतीके पद्म और कुमुद। अश्वसेनाका अश्व-सेन। पुंड्राका पुंड्र। रत्नवतीके रत्नगर्भ और वज्रबाहु।

सोमराजकी पुत्री सोमश्रीके चन्द्रकान्त और शशिप्रभ। वेगवतीके वेगमान और वायुवेग। मदनवेगाके अनाधृष्टि, दृढ़मुष्टि और हिममुष्टि। वन्धुमतीके वन्धुषेण और सिंहसेन। पियंगुसुन्दरीका शिलायुध। प्रभावतीके गन्धार और पिङ्गल। जरारानीके जरत्कुमार और वाहलीक। अवन्तिदेवीके सुमुख और दुर्मुख। रोहिणीके वलराम, सारण और विदूरथ। वालचन्द्राके वज्रदँष्ट्र और अमितप्रभ। यह सभी वड़े ही वलवान और पूरे लड़ाकु थे।

वलरामके साथ वलरामके अनेक पुत्र भी आये थे, जिनमेंसे उल्मूक, निषध, प्रकृति, द्युति, चारुदत्त, ध्रुव, शत्रुदमन, पीठ, श्रीध्वज, नन्दन, श्रीमान, दशरथ, देवनन्द, आनन्द, विप्रथु, शान्तनु, पृथु, शतधनु, नरदेव, महाधनु और दृढ़धन्वा मुख्य थे।

इसी प्रकार कृष्णके भी अनेकानेक पुत्र वहाँ उपस्थित थे, जिनकी संख्या एक हजारसे भी अधिक थी। उनमें भानु, भामर, महाभानु, अनुभानु, वृहद्ध्वज, अग्निशिखा, धृष्ण, संजय, अकंपन, महासेन, धीर, गंभीर,

उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित्, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शंख प्रद्युम्न और शाम्ब आदिक मुख्य थे।

राजा उग्रसेन भी बड़े उत्साहके साथ इस युद्धमें भाग लेनेको उपस्थित हुए और अपने साथ अपने घर, गुणधर, शक्तिक, दुर्धर, चन्द्र और सागर—इन छः पुत्रोंको भी लेते आये। इनके अतिरिक्त ज्येष्ठ राजाके काका शाम्बन और उनके महासेन, विषमित्र, अजमित्र, तथा दानमित्र नामक चार पुत्र, महासेनका पुत्र सुषेण, विषमित्रके हृदिक, सिनि और सत्यक, हृदिकके कृतवर्मा और दृढ़वर्मा सत्यकके युयुधान और युयुधानका गन्धर नामक पुत्र भी उपस्थित हुआ। इसी तरह दशार्होंके अन्यान्य पुत्र, बलराम और कृष्णके अगणित पुत्र, बुवा और बहिनोंके पुत्र तथा और न जाने कितने वीर पुरुष वहाँ आ आकर एकत्र हो गये।

इसके बाद क्रोष्टुकी ज्योतिषीके बतलाये हुए शुभ मुहूर्त्तमें दारुक सारथीवाले गरुड़ध्वज रथपर सवार हो, कृष्ण अपनी नगरीसे ईशान कोणकी ओर चलने लगे।

द्वारिकासे पैंतालिस योजन दूर निकल जाने पर सिनपल्ली नामक एक ग्राम मिला। वहींपर वे अपनी सेनाके साथ रुक गये।

उधर जरासन्ध भी तूफानकी तरह उत्तरोत्तर समीप आता जाता था। जब उसकी और कृष्णकी सेनामें केवल चार ही योजनका अन्तर रह गया, तब कई खेचर राजा समुद्रविजयके पास आकर कहने लगे कि :—

"हे राजन्! हमलोग आपके भाई वसुदेवके अधीन हैं। आपके कुलमें भगवान श्री अरिष्टनेमि, जो इच्छामात्रसे जगतकी रक्षा या क्षय कर सकते हैं, बलराम और कृष्ण, जो असाधारण बलवान हैं तथा प्रद्युम्न और शाम्ब जैसे हजारों पुत्र पौत्र भी मौजूद हैं। ऐसी अवस्थामें निःसन्देह आपको किसीकी सहायता आवश्यक नहीं हो सकती। फिर भी यह समझ कर हम लोग उपस्थित हुए हैं कि शायद इस अवसर पर हमारी कोई सेवा आपके लिये उपयोगी प्रमाणित हो। हे प्रभो! हम चाहते हैं कि आप हमें भी अपने सामन्त समझ कर, हमारे योग्य कार्यसेवा सूचित करें।"

राजा समुद्रविजयने सम्मानपूर्वक कहा :—"आप-लोगोंने इस संकटके समय हमें सहायता देनेके विचारसे विना बुलाये ही यहाँ आनेका जो कष्ट उठाया है, तदर्थ मैं आपलोगोंको अन्तःकरणसे धन्यवाद देता हूँ। मैं सदैव आपका स्मरण रक्खूँगा और आपके योग्य कोई कार्य दिखायी देगा, तो अवश्य आपको कष्ट दूँगा।

यह सुनकर खेचर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने पुनः हाथ जोड़कर कहा :—"हे राजन्! आप स्वयं युद्ध-निपुण हैं, इसलिये आपको किसी प्रकारकी सलाह देना—आपका अपमान करना है। फिर भी एक बात आपसे निवेदन कर देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वह यह कि राजा जरासन्धसे आपलोगोंको घबड़ानेकी जरा भी जरूरत नहीं। उसे पराजित करनेके लिये अकेले कृष्ण ही पर्याप्त हैं। परन्तु वैताढ्य पर्वत पर कुछ ऐसे विद्याधर रहते हैं, जो उसके परम आज्ञा-कारी हैं। यदि वे यहाँ आ जायँगे, तो उनसे जीतना बहुत कठिन हो जायगा। यदि आप प्रद्युम्न और शाम्ब सहित वसुदेवको हमारा सेनापति बना दें, तो हमलोग

सामने जाकर उनको वहीं रोक सकते हैं। इससे जरासन्धका बल टूट जायगा और उसे जीतना सहज हो जायगा।

विद्याधरोंके यह वचन सुनकर समुद्रविजयने कृष्णसे सलाह कर, उनके कथनानुसार सब व्यवस्था कर दी। जन्म स्नात्रके समय श्री अरिष्टनेमिके हाथमें देवताओंने शस्त्रवारिणी औषधि बाँध दी थी। वही औषधि श्री अरिष्टनेमि भगवानने, विद्याधरोंके साथ प्रस्थान करते समय वसुदेवके हाथमें बाँध दी, जिससे शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे उनकी रक्षा हो सके।

उधर जरासन्धके शिविरमें भी युद्ध-मन्त्रणा हो रही थी। व्यूह रचनाके लिये अनेक राजा और सामन्त भिन्न भिन्न प्रकारकी सूचनाएँ दे रहे थे। परन्तु हंस नामक मन्त्रीश्वर आरम्भसे ही इस युद्धका विरोधी था। उसने अन्यान्य मन्त्रियोंके साथ आकर जरासन्धसे कहा :—

"हे स्वामिन्! आप अपने जमाई कंसका बदला लेना चाहते हैं, परन्तु आप यह नहीं सोचते, कि उसने जो अविचारपूर्ण कार्य किया था, उसीका उसको फल

भोगना पड़ा था। यदि मनुष्यमें विचार शक्ति नहीं होती, तो उसका उत्साह और उसकी प्रभुता उसके लिये विषरूप हो पड़ती है। हे प्रभो! नीतिशास्त्रका कथन है कि शत्रु अपने समान या अपनेसे दुर्बल भी हो, तो उसे अपनेसे बढ़कर समझना चाहिये। ऐसी अवस्थामें, महाबलवान कृष्ण, जो हमसे कहीं प्रबल हैं—उनसे युद्ध करना युक्ति-संगत नहीं कहा जा सकता। फिर, यह तो आप स्वयं भी देख चुके हैं, कि रोहिणीके स्वयंवरमें दसवें दशार्ह वसुदेवने समस्त राजाओंको चक्करमें डाल दिया था। उस समय उससे युद्ध करनेका किसीको भी साहस न हुआ। हमें यह भी न भूलना चाहिये, कि उसके बड़े भाई समुद्र विजयने ही उस समय हमारे सैन्यकी रक्षा की थी।

इसके अतिरिक्त यह तो आपको याद ही होगा, कि आप बहुत दिनोंसे वसुदेवकी खोजमें थे। द्यूत-क्रीड़ामें करोड़ रुपये जीतने और आपकी पुत्रीको जीवन-दान देनेपर हमलोगोंने उसे पहचाना और हमारे आदमियोंने उसे मारनेकी चेष्टा भी की, किन्तु अपने प्रभाव

से उसका बाल भी बाँका न हुआ। अब तो उसके राम और कृष्ण जैसे दो बलवान पुत्र भी हो गये हैं। उन दोनोंने इतनी उन्नति की है, कि स्वयं कुबेरने उनके लिये द्वारिका नगरी बना दी है। वे दोनों महाशूरवीर हैं। महारथी पञ्च पाण्डवोंने भी संकटमें उनकी शरण स्वीकार की है। कृष्णके प्रद्युम्न और शाम्ब नामक दो पुत्र भी अपने पिता और पितामहकी ही भाँति बड़े पराक्रमी हैं। भीम और अर्जुन अपने बाहुबलसे यमको भी नीचा दिखा सकते हैं। इन सबोंको जाने दीजिये, केवल अरिष्टनेमि ही ऐसे हैं जो अपने भुज-दण्डसे क्षण-मात्रमें समस्त पृथ्वीको अपने अधिकारमें कर सकते हैं। साधारण योद्धाओंकी तो गणना भी नहीं की जा सकती।

हे मगधेश्वर! अब आप अपनी शक्ति पर विचार कीजिये। आपकी सेनामें शिशुपाल और रुक्मी अग्रगण्य हैं, परन्तु उनका बल तो रुक्मिणी-हरणके समय बलरामके युद्धमें देखा ही जा चुका है। कुरुवंशी दुर्योधन और गन्धारदेशके शकुनि राजा छल और प्रपञ्चमें जितने चढ़े बढ़े हैं, उतने बलमें नहीं। सच पूछिये तो वीरपुरुषोंमें

इनकी गणना ही न होनी चाहिये। अंग देशके राजा कर्ण अवश्य ही एक अच्छे योद्धा हैं, परन्तु कृष्णके लाखों महारथी और सुभटोंको देखते हुए वे भी किसी हिसाबमें नहीं हैं। यादव सेनामें बलराम, कृष्ण और अरिष्टनेमि—यह तीनों एक समान बली हैं, किन्तु इधर आपके सिवा इनके जोड़का और कोई नहीं है। इसी-लिये मैं कहता हूँ कि उनकी और हमारी सेनामें बहुत अधिक अन्तर है। समुद्रविजयके पुत्र श्रीअरिष्टनेमि, जिसे अच्युतादिक इन्द्र भी नमस्कार करते हैं, उनसे युद्ध करनेका साहस भी कौन कर सकता है?

इसके अतिरिक्त हे राजन्! यह तो आप देख ही चुके हैं कि कृष्णके अधिष्ठायक देवता आपके प्रतिकूल हैं और उन्होंने छलपूर्वक आपके पुत्र कालकुमारका प्राण लिया है। दूसरी ओर मैं यह देखता हूँ कि यादवलोग बलवान होनेपर भी न्यायानुकूल आचरण करते हैं। यदि ऐसी बात न होती तो वे मथुरासे द्वारिकामें क्यों भाग जाते? अब जब आपने उन्हें युद्ध करनेके लिये बाध्य किया है, तब वे अपनी सारी शक्ति संचय कर

आपके सामने आ उठे हैं। उनका वास्तविक उद्देश्य आपसे युद्ध करना नहीं, अपनी रक्षा करना है। मेरी धारणा है कि यदि आप अब भी युद्धका विचार छोड़ दें, तो यह सब लोग द्वारिका वापस चले जायँगे। मेरी समझमें इससे दोनों दलोंको लाभ हो सकता है।"

मन्त्रीकी यह बातें सुनकर जरासन्ध क्रुद्ध हो उठा। वह कहने लगा :—"हे दुराशय! मालूम होता है कि कपटी यादवोंने तुझे फोड़कर अपने हाथमें कर लिया है। इसीलिये तू उनके बलकी प्रशंसा कर मुझे डराता है। परन्तु यह सब व्यर्थ है। हे कायर! शृगालोंकी आवाज सुनकर सिंह कभी डर सकता है? हे दुर्मते! यदि तुझमें युद्ध करनेका साहस न हो, तो तू युद्धसे दूर रह सकता है, किन्तु ऐसी बात कहकर दूसरोंको युद्धसे दूर रखनेकी चेष्टा क्यों करता है? मैं तो अकेला ही इनके लिये काफी हूँ।"

जरासन्धके यह वचन सुनकर बेचारा हँसक मन्त्री चुप हो गया। किन्तु डिम्भक नामक खुशामदी मन्त्रीने कहा :—"हे राजन्! आपका कहना यथार्थ है।

महानेमिसे युद्ध आरम्भ किया। रुक्मी जिस जिस धनुष-को उठाता, उसीको महानेमि छेद डालते। इस प्रकार रुक्मीके क्रमशः इक्कीस धनुष उन्होंने काट डाले। इससे उसने क्रुद्ध होकर उन पर कौबेरी नामक गदाका वार किया, किन्तु महानेमि कुमारने उसे आग्नेय बाणसे भस्म कर डाला। इससे रुक्मी और भी कुढ़ उठा। इसबार उसने मेघकी भाँति लाखों बाणोंकी वृष्टि करनेवाला विरोचन बाण छोड़ा, किन्तु महानेमिने माहेन्द्र बाणसे उसे भी रोक दिया। इसकेबाद उन्होंने एक दूसरा बाण छोड़ा, जिससे रुक्मीके ललाटमें गहरा जख्म हो गया और वह शिर पकड़ कर वहीं बैठ गया। उसकी यह अवस्था देखकर वेणुदारी उसे तुरन्त शिविरमें उठा ले गया।

इसके बाद विविध शस्त्रोंकी वर्षाकर महानेमिने उन सात राजाओंको भी परेशान कर डाला। समुद्र-विजयने राजा द्रुमको, स्तिमितने भद्रराजको और अक्षोभ्यने वसुसेनको यम पुरी भेज दिया। सागरने पुरिमित्रको, हिमवानने धृष्टद्युम्नको, धरणने अष्टक नृपको,

अभिचन्द्रने उत्कट शतधन्वाको, पूरणने द्रुपदको, सुनेमिने कुन्ति भोजको, सत्यनेमिने महापद्मको और दृढ़नेमिने श्रीदेवको मार डाला। तदनन्तर इन सबोंकी सेना अपने सेनापति राजा हिरण्यनाभकी शरणमें जाकर रहने लगी।

इसी तरह दूसरी ओर भीम, अर्जुन तथा बलरामके वीर पुत्रोंने कौरवोंको परेशान कर डाला। अर्जुनने उन पर इतनी बाण वृष्टि की, कि चारों ओर अन्धकार छा गया। गाण्डीव धनुषके निर्घोषने सबको बधिर सा बना दिया। उस समय अर्जुनकी चपलता और स्फूर्ति भी देखने योग्य हो रही थी। वे बाणको कब हाथमें लेते थे, कब धनुष पर चढ़ाते थे और कब उसे छोड़ते थे—वह आकाशके निमेष-रहित देवताओंको भी ज्ञात न हो सकता था। उनकी स्फूर्तिके कारण सबको ऐसा मालूम होता था, मानो यह सब काम वे एक साथ ही कर डालते हैं।

अर्जुनकी इस बाणवर्षासे व्याकुल हो, दुर्योधन, कासि, त्रिगर्त, सबल, कपोत, रोमराज, चित्रसेन, जयद्रथ, सौवीर, जयसेन, शूरसेन और सोमक—यह सभी

राजा, क्षत्रिय धर्मको भूलकर एक साथ ही अर्जुनसे युद्ध करने लगे। इसी समय सहदेव शकुनिसे, भीम दुःशासनसे, नकुल उलूकसे, युधिष्ठिर शल्यसे, पाण्डव पुत्र दुर्मर्षणादिक छः योद्धाओंसे और बलरामके पुत्र अन्यान्य राजाओंसे भिड़ गये।

अर्जुन पर दुर्योधन और उसके संगी राजाओंने एक साथ ही अगणित बाणोंकी वृष्टि की, किन्तु अर्जुनने क्षणमात्रमें उन सबोंको कमलनालकी भाँति काट डाला। इसके बाद अर्जुनने दुर्योधनके सारथीको मार डाला, रथ और अश्वको छिन्न भिन्न कर डाला और उसका बख्तर भूमिपर गिरा दिया। इससे अंगशेष दुर्योधन बहुत ही लज्जित हुआ और उछल कर शकुनिके रथ पर जा बैठा। इसके बाद अर्जुनने कासि प्रभृति दस राजओं पर बाणवृष्टि कर उन्हें भी उसी तरह व्याकुल बना दिया, जिस तरह ओलेकी मारसे हाथी व्याकुल हो उठता है।

उधर राजा शल्यने एक बाणसे राजा युधिष्ठिरके रथ की पताका छेद डाली। इसपर युधिष्ठिरने शर सहित उसका धनुष छेद डाल। शल्यको इससे बड़ा ही

क्रोध आया और उसने दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिर पर इतनी बाणवृष्टि की, कि वे उनके कारण वर्षाकालके सूर्यकी भाँति छिप गये। युधिष्ठिर इससे कुछ विचलित हो उठे और उन्होंने उस पर बिजलीके समान एक भयंकर शक्ति छोड़ दी। जिस प्रकार अग्निकी लपटमें पड़ने पर गोह तत्काल जल मरती है, उसी प्रकार उस शक्तिने शल्यकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। उस शक्तिके डरसे और भी अनेक राजा उस समय रणक्षेत्रसे भाग खड़े हुए। भीमने भी दुर्योधनके भाई दुःशासनको द्यूत कपटकी याद दिलाकर क्षणमात्रमें मार डाला।

इसी प्रकार शकुनि और सहदेवमें भी बहुत देर तक माया और शस्त्रयुद्ध होता रहा। अन्तमें सहदेवने भी उस पर एक घातक बाण छोड़ा, परन्तु वह शकुनि तक न पहुँचने पाया। दुर्योधनने क्षत्रिय व्रतका त्याग कर बीचहीमें तीक्ष्ण बाणसे उसे काट डाला। यह देखकर सहदेवने ललकार कर उससे कहा :—"हे दुर्योधन! द्यूतकी भाँति रणमें भी तू छल करता है! परन्तु यह कायरोंका काम है, वीरपुरुषोंका नहीं। तुम दोनों

परम कपटी हो और इस समय एकसाथ ही मेरे हाथ लग गये हो। अब तुम दोनोंकी जीवनलीला मैं एकसाथ ही समाप्त करूँगा, जिससे तुम दोनोंको एक दूसरेका वियोग न सहन करना पड़े।

इतना कह सहदेवने तीक्ष्ण बाणोंसे दुर्योधनको ढक दिया। दुर्योधनने भी बाणवर्षा कर सहदेवको बहुत तंग किया। उसने न केवल उनका धनुष दण्ड ही काट डाला, बल्कि उनका नाश करनेके लिये यमके मुख समान एक ऐसा बाण छोड़ा, जो शायद उनका प्राण लेकर ही मानता, परन्तु अर्जुनने उस बाणको अपने गरुड़ बाणसे बीचमें ही रोक दिया। शकुनिने भी सहदेवको उसी तरह बाणों द्वारा चारों ओरसे घेर लिया, जिस तरह मेघ चारों ओरसे पर्वतको घेर लेते हैं। इससे सहदेवने क्रुद्ध होकर उसके सारथी और अश्वको मार डाला, रथको तोड़ डाला और अन्तमें शकुनिका भी मस्तक काट डाला।

उधर नकुलने भी क्षणमात्रमें उलूकको रथसे नीचे गिरा दिया। इससे उसने भागकर दुर्मर्षण राजाके रथ

पर आश्रय ग्रहण किया। परन्तु दुर्मर्षण आदि छः औ राजाओंको द्रौपदीके पुत्रोंने पराजित कर दिया, इसलिये उन सबोंने भागकर दुर्योधनका आश्रय लिया।

इसके बाद दुर्योधन कासि प्रभृति राजाओंको साथ लेकर अर्जुनसे युद्ध करने लगा। किन्तु बलरामके पुत्रोंसे घिरे हुए अर्जुनने भयंकर बाण वर्षा कर शत्रुसेनाके छक्के छुड़ा दिये। जयद्रथ इस युद्धमें दुर्योधनका दाहिना हाथ हो रहा था, इसलिये अर्जुनने मौका मिलते ही उसको भी समाप्त कर दिया। इससे जरासन्धकी सेनामें घोर हाहाकार मच गया, क्योंकि उसकी गणना बड़े-बड़े वीरोंमें की जाती थी।

जयद्रथके वधसे क्रुद्ध हो, वीर कर्ण अर्जुनको मारनेके लिये दौड़ आया। कर्ण अर्जुनके मुकाबलेका वीर माना जाता था और वह वास्तवमें ऐसा ही था। उन दोनोंमें बहुत देर तक ऐसा बाणयुद्ध होता रहा, कि आकाशमें देवता भी उसे देखकर स्तम्भित हो गये। अर्जुनने अनेक बार कर्णको रथ और शस्त्र रहित बनाया, किन्तु इससे विचलित न हो, कर्णने नये नये रथ और

शस्त्र ग्रहण कर, अर्जुनसे लड़ना चालू रक्खा। अन्तमें जब उसके समस्त शस्त्रास्त्र समाप्त हो गये, तब वह तलवार लेकर रथसे कूद पड़ा और आसपासके सैनिकोंको मारता हुआ अर्जुनकी ओर आगे बढ़ा। अर्जुनने इस समय बाणोंकी घोर वर्षा की, जिससे वीरकुञ्जर कर्ण घबड़ा उठा। उसका समूचा शरीर पहलेहीसे चलनी हो रहा था। इस बार अर्जुनके कई बाण छातीमें लगते ही वह भूमि पर गिर पड़ा और उसके प्राण निकल गये।

कर्णके गिरते ही भीम और अर्जुनने जय-सूचक शंखनाद किया, जिससे उनकी सेनाका उत्साह चौगुना बढ़ गया। जयद्रथ और कर्णके मारे जानेसे दुर्योधनको बड़ा क्रोध आया और उसने हस्तियोंकी बड़ी सेना लेकर भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। उसका यह साहस देखकर भीमको भी बड़ा जोश आगया और उन्होंने रथके ऊपर रथ अश्वके ऊपर अश्व और हाथीके ऊपर हाथीको पटककर दुर्योधनकी सेना नष्ट-भ्रष्ट कर दी। परन्तु इतनेहीसे भीमकी युद्ध कामना पूर्ण न हुई। वे इसी

तरह सेनाका संहार करते हुए महामानी दुर्योधनके निकट जा पहुँचे।

दुर्योधनकी सेना भीमसेनकी विकट मारके कारण अस्त व्यस्त हो रही थी, इसलिये उसे धैर्य देकर, दुर्योधन भीमकी ओर झपट पड़ा। केसरीके समान क्रुद्ध हो, मेघ की भाँति गर्जना करते हुए वह दोनों वीर एक दूसरेके सामने डट गये और दीर्घकाल तक विविध शस्त्रों द्वारा युद्ध करते रहे। अन्तमें द्यूतके वैरको स्मरण कर भीम-सेनने अपनी विशाल गदा द्वारा दुर्योधनको मारकर यम-सदन भेज दिया। उसकी मृत्यु होते ही उसके सैनिक भागकर सेनापति हिरण्यनाभकी शरणमें गये और पाण्डव तथा यादवगण सेनापति अनाधृष्टिके निकट चले गये।

अपनी सेनाको स्थान स्थान पर पराजित होते देख-कर सेनापति हिरण्यनाभ बेतरह चिढ़ उठा और यादवोंको ललकारता हुआ सेनाके अग्रभागमें आ खड़ा हुआ। उसे देखकर राजा अभिचन्द्रने कहा :—"हे नृपाधम! एक नीच पुरुषकी भाँति तू बकवाद क्या करता है? क्षत्रिय वचनसे शूर नहीं होते, बल्कि पराक्रमशूर होते हैं।"

अभिचन्द्रके यह वचन सुनकर हिरण्यनाभने क्रोधपूर्वक उसपर कई बाण छोड़े, परन्तु अर्जुनने उनको बीचहीमें काट दिया। अर्जुनका यह कार्य देखकर हिरण्यनाभने उनपर भी कई बाण छोड़े, परन्तु इसी बीच भीमसेन वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने गदाका प्रहार कर हिरण्यनाभको रथसे नीचे गिरा दिया। हिरण्यनाभ इससे लज्जित होकर दूसरे रथपर बैठ गया और क्रोधपूर्वक यादव सेना पर ऐसी बाणवृष्टि करने लगा, कि जिससे एक भी ऐसा आदमी न बचा, जिस पर कहीं चोट न आयी हो। उसकी इस बेढब मारसे यादवसेनामें खलबली मच गयी।

हिरण्यनाभकी यह उद्दण्डता देखकर समुद्रविजयका पुत्र जयसेन क्रुद्ध हो उठा और धनुष खींच कर उससे युद्ध करनेको तैयार हुआ। यह देखकर हिरण्यनाभने कहा :—"हे जयसेन! तू व्यर्थ ही मरनेके लिये क्यों तैयार हुआ है?" यह कहनेके साथ ही उसने जयसेनके सारथीको मार डाला। इससे जयसेनने तुरन्त उसके कवच, धनुष और ध्वजको छेद कर उसके सारथीको मार डाला। जयसेनके इस कार्यने हिरण्यनाभकी क्रोधाग्निमें

आहुतीका काम दिया। उसने जयसेनको मारनेके लिये उसपर दस मर्मवेधी बाण छोड़े, जिससे जयसेनका प्राणान्त हो गया। भाईकी यह अवस्था देखकर महीधर अपने रथसे कूद पड़ा और ढाल तलवार लेकर हिरण्यनाभको मारने दौड़ा, परन्तु हिरण्यनाभने दूरसे ही देखकर क्षुरप्र बाणसे शिर काट डाला।

अपने दो भाइयोंकी यह गति देखकर अनाधृष्टिको क्रोध आ गया! इसलिये वह हिरण्यनाभके सामने आकर उससे युद्ध करने लगा। उधर जरासन्ध आदिक राजा भी भीम और अर्जुनादिक सुभटोंके साथ पृथक पृथक द्वन्द्वयुद्ध करने लगे।

प्रागज्योतिष्कका भगदत्त नामक राजा भी जरासन्धकी ओरसे रण-निमन्त्रण पाकर इस युद्धमें भाग लेने आया था। वह अपने हाथी पर बैठकर महानेमिके सामने आ उठा और उनको ललकार कर कहने लगा :- "मैं तेरे भाईके साले रुक्मी या अश्मकके समान नहीं हूँ। मैं तो नारकियोंका वैरी यम हूँ। इसलिये अब तू सावधान हो जा।"

उत्सुक हूँ। मैं आपकी तरह आत्म-प्रशंसा नहीं करता, परन्तु इतना अवश्य कहता हूँ कि आपकी पुत्रीकी प्रतिज्ञा अल्प समयमें अवश्य पूरी होगी, किन्तु वह पूरी होगी अग्नि प्रवेश द्वारा, किसी दूसरे कार्यद्वारा नहीं। मेरे इस कथनमें सन्देहके लिये जरा भी स्थान नहीं है।"

कृष्णके इन वचनोंसे क्रुद्ध होकर जरासन्धने उनपर कई तीक्ष्ण बाण छोड़े, किन्तु कृष्णने उन सबोंको काट डाला। इसके बाद वे दोनों क्रोधपूर्वक अष्टापदकी भाँति स्थिर हो युद्ध करने लगे। उस समय उनके धनुर्दण्डके शब्दसे दसों दिशाएँ व्याप्त हो गयीं, युद्धके वेगसे समुद्र क्षुब्ध हो उठे और आकाशमें विद्याधर भी त्रसित हो गये। पर्वतके समान उनके रथोंके इधर उधर दौड़नेके कारण पृथ्वी भी क्षणभरके लिये काँप उठी। वह युद्ध क्या था, मानो प्रलयकाल उपस्थित हो गया था।

थोड़ी ही देरमें कृष्णने जरासन्धके समस्त अस्त्रोंको क्षणभरमें काट डाले। यह देख, अभिमानी जरासन्धने अपने अमोघास्त्र चक्ररत्नको याद किया, इसलिये वह

उसी समय आ उपस्थित हुआ। क्रोधान्ध जरासन्धने उसको भी चारों ओर घुमाकर कृष्ण पर छोड़ दिया।

वेगके कारण वह चक्र हाथसे छूटकर जिस समय आकाशमें पहुँचा, उस समय उसे देखकर विद्याधर भी काँप उठे। कृष्णकी समस्त सेना व्याकुल हो, एक दूसरेका मुँह ताकने लगी। उस चक्रको रोकनेके लिये कृष्ण, बलराम, पञ्च पाण्डव तथा अन्यान्य योद्धाओंने अपने अपने अस्त्र छोड़े, किन्तु वे सब बेकार हो गये। लोगोंने समझा कि अब कृष्णकी खैर नहीं। यह अवश्य ही उनके प्राण ले लेगा। सब लोग चिन्तित और व्याकुल भावसे यह देखनेके लिये कृष्णकी ओर दौड़ पड़े, कि वह चक्र लगने पर उनकी क्या अवस्था होती है।

चक्र वास्तवमें दुर्निवार्य था। उसकी गति कोई भी न रोक सकता था। साथ ही वह अमोघ भी था। यह भला कब हो सकता था कि वह कृष्ण तक न पहुँचे? वह कृष्ण तक पहुँचा और उनके भी लगा, किन्तु शस्त्रकी तरह नहीं, फूलोंके एक गेंदकी तरह। उसका स्पर्श कृष्णके लिये मानो सुख और शान्तिदायक बन-

गया। वह चक्र क्या था, मानो कृष्णका मूर्तिमान् प्रताप था। कृष्णने छातीमें लगते ही उसे एक हाथसे पकड़ लिया। उनका यह कार्य देखते ही देवतागण पुकार उठे—"भरतक्षेत्रमें नवे वासुदेव उत्पन्न हो गये। नवम वासुदेवकी जय हो!" यह कहकर उन्होंने कृष्ण पर सुगन्धित जल और पुष्पोंकी वृष्टि भी की।

कृष्णने उस चक्रको हाथमें ही लिये हुए कहा :—"हे अभिमानी जरासन्ध! क्या यह भी मेरी माया है? यदि तू अपना कल्याण चाहता हो, तो मेरी बात मानकर अब भी वापस चला जा और वहाँ जाकर पूर्ववत् राज्य कर। तू वृद्ध है, इस संसारमें चन्द दिनोंका मेहमान है, इसलिये मैं तेरा प्राण नहीं लेना चाहता। यदि तू मेरे इन वचनों पर ध्यान न देगा तो यह तेरा ही चक्र तेरे प्राणोंका ग्राहक बन जायगा।"

मानी जरासन्धने कहा :—"अपने ही चक्रसे मुझे इस तरह डरनेका कोई कारण नहीं। यह तो मेरे लिये कुम्हारके चक्रके समान है। तेरी आज्ञा मानकर मैं रणसे विमुख होना भी पसन्द नहीं कर सकता। यदि

तू चक्र चलाना चाहता है, तो सहर्ष चला, मैं तुझे मना नहीं करता।"

जरासन्धके यह वचन सुनकर कृष्णने रोषपूर्वक वह चक्र जरासन्ध पर छोड़ दिया। किसीने ठीक ही कहा है कि पराया हथियार भी पुण्यवानके हाथमें पड़ने पर अपना बन जाता है। चक्र लगते ही जरासन्धका शिर धड़से अलग हो गया और वह चौथे नरकका अधिकारी हुआ। कृष्णकी इस विजयसे चारों ओर आनन्द छा गया और देवताओंने भी उनकी जय मनाकर उनपर पुष्प-वृष्टि की।

सत्रहवाँ परिच्छेद

कृष्ण वसुदेवका राज्याभिषेक

युद्ध समाप्त हो जानेपर नेमिनाथ प्रभुने कृष्णके शत्रु राजाओंको बन्धन-मुक्त कर दिया। फलतः वे हाथ जोड़, प्रभुको प्रणाम कर कहने लगे :—"हे नाथ! यदुवंशमें तीनों लोकके स्वामी आपका अवतार होनेसे ही

क्या अवस्था होगी ? मुझे कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे उन्हें मेरा भुजबल तो मालूम हो जाय, किन्तु उन्हें किसी प्रकार कष्ट न हो। यह सोचकर उन्होंने कृष्णसे कहा :—"आप जो बाहुयुद्ध पसन्द करते हैं, वह बहुतही मामूली है। बारंबार जमीनपर लोटनसे भली भाँति बलकी परीक्षा नहीं हो सकती। मेरी समझमें, हमलोग एक दूसरेकी भुजाको झुकाकर अपने अपने भुजबलका परिचय दें, तो वह बहुतही अच्छा हो सकता है।"

कृष्णने नेमिकुमारका यह प्रस्ताव स्वीकार कर वृक्ष शाखाकी भाँति पहले अपनी भुजा फैला दी और नेमिकुमारने उसे कमल-नालकी भाँति क्षणमात्रमें झुका दी। इसके बाद उसी तरह नेमिकुमारने अपनी भुजा कृष्णके सामने फैला दी, किन्तु अपना समस्त बल लगा देने पर भी कृष्ण उसे झुका न सके। इससे वे कुछ लज्जित हो गये, किन्तु इस लज्जाको उन्होंने मनमें ही छिपाकर नेमिकुमारको आलिङ्गन करते हुए कहा :—"भाई! तुम्हारा यह बल देखकर आज मुझे असीम आनन्द हुआ

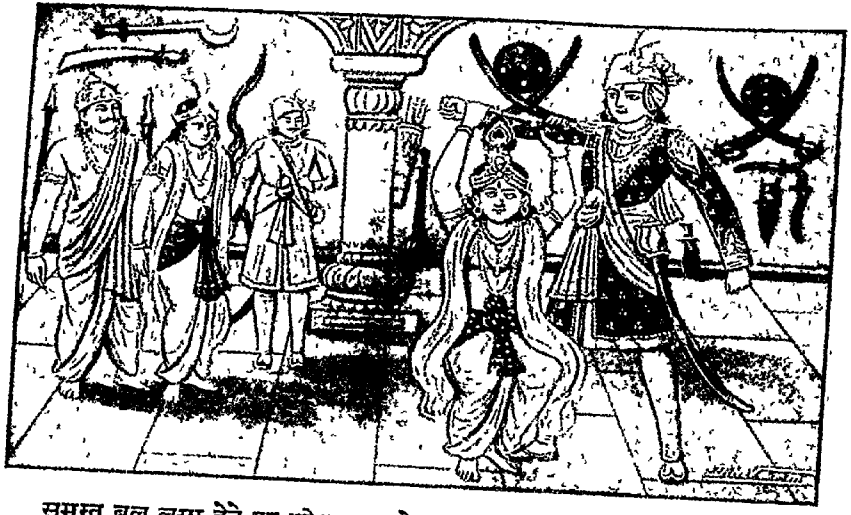

समस्त बल लगा देने पर भी कृष्ण उसे झुका न सके

(पृष्ठ ७१८)

है। जिस प्रकार बलराम मेरे बलसे इस संसारको तृणवत् मानता है उसी प्रकार अब मैं आपके बलसे जगतको तृणवत् समझूँगा।"

इतना कह कृष्णने नेमिकुमारको विदा कर दिया। इसके बाद उन्होंने बलरामसे कहा :—"हे बन्धु! तुमने नेमिकुमारका बल देखा? मैं समझता हूँ कि त्रिभुवनमें कोई भी इसके बलकी समता नहीं कर सकता। मैं वासुदेव होने पर भी उसकी भुजामें उसी तरह लटक कर रह गया, जिस प्रकार पक्षी वृक्षकी शाखामें लटक कर रह जाते हैं। निःसन्देह चक्रवर्ती या सुरेन्द्र भी अब नेमिकुमारके सामने नहीं ठहर सकते। यदि इस बलके कारण वह समूचे भरतक्षेत्रको अपने अधिकारमें करले, तो उसमें भी हमें आश्चर्य न करना चाहिये। और वह कुछ न कुछ ऐसा उद्योग जरूर करेगा; क्योंकि यह कभी सम्भव नहीं कि वह अपना सारा जीवन यों ही बिता दे।

बलरामने कहा :—"आपका कहना यथार्थ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नेमिकुमार बड़ेही बलवान हैं,

आशीर्वाद देते हुए अपने अपने स्थानको चले गये। इधर नेमिकुमारने सारथीको आज्ञा दी, कि अब अपना रथ वापस लौटा लो! तदनुसार सारथीने ज्योंही रथको घुमाया, त्योंहीं चारों ओर घोर हाहाकार मच गया। राजा समुद्रविजय, बलराम, कृष्ण, शिवादेवी, रोहिणी, देवकी तथा अन्यान्य स्वजन भी अपने अपने वाहनसे उतर कर उनके पास दौड़ गये। राजा समुद्रविजय तथा शिवादेवीने आँसू बहाते हुए पूछा :—"हे पुत्र! अचानक इस तरह तुम वापस क्यों जा रहे हो? आज विवाहकी अन्तिम घड़ी है, ऐसे समय रंगमें भंग क्यों कर रहे हो?"

नेमिकुमारने गंभीरतापूर्वक कहा :—"पिताजी! मुझे आप लोग क्षमा करिये, मैं व्याह नहीं करना चाहता। यह सब प्राणी अब तक जिस प्रकार बन्धनसे बँधे हुए थे, उसी प्रकार हमलोग भी कर्म बन्धनसे बँधे हुए हैं। जिस प्रकार यह अब बन्धन-मुक्त हुए हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने आत्माको कर्म-बन्धनसे रहित करनेके लिये समस्त सुखोंकी कारण रूप दीक्षा ग्रहण करूँगा।"

नेमिकुमारका यह वचन सुनतेही शिवादेवी और समुद्रविजय मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। अन्यान्य स्वजनोंके नेत्रोंसे भी दुःखके कारण अश्रुधारा बहने लगी। यह देखकर कृष्णने सब लोगोंको सान्त्वना देकर शान्त किया। तदनन्तर उन्होंने नम्रतापूर्वक नेमिकुमारसे कहा :—"हे बन्धो! हम सबलोग तुम्हें सदा आदरकी दृष्टिसे देखते आये हैं। इस समय भी हमलोगोंने कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जिससे तुम्हें किसी प्रकारका दुःख हो। तुम्हारा रूप अनुपम और यौवन नूतन है। तुम्हारी वधू राजीमती भी रूप और गुणोंमें सर्वथा तुम्हारे अनुरूप ही है। ऐसी अवस्थामें ठीक विवाहके समय, तुम्हें यह वैराग्य क्यों आ रहा है? जो लोग निरामिष भोजी नहीं हैं, उनके यहाँ ऐसे समयमें पशु-पक्षियोंका वध होता ही है, इसलिये उसका संग्रह भी एक साधारण घटना थी। परन्तु अब तो तुमने उनको बन्धन-मुक्त कर दिया है, इसलिये उस सम्बन्धमें अब कोई शिकायतका स्थान नहीं हैं। अतएव अब तुम्हें अपने माता-पिता और बन्धुओंका मनोरथ

पूर्ण करना चाहिये। यदि तुम ऐसा न करोगे, तो तुम्हारे माता-पिताको बड़ाही दुःख होगा। जिस प्रकार तुमने प्राणियोंको बन्धन-मुक्त कर उनको आनन्दित किया है, उसी प्रकार अपना विवाह दिखाकर अपने स्वजन स्नेहियोंको भी आनन्दित करना तुम्हें उचित है।"

नेमिकुमारने नम्रतापूर्वक कहा :—प्रिय बन्धु! मुझे मातापिता और आपलोगोंके दुःखका कोई कारण नहीं दिखायी देता है। मेरा वैराग्यका कारण तो चारगति रूप यह संसार है, जहाँ जन्म होने पर प्राणीको प्रत्येक जन्ममें दुःख ही भोगना पड़ता है। जीवको प्रत्येक जन्ममें माता, पिता, भाई तथा ऐसे ही अनेक सम्बन्धी प्राप्त होते हैं, परन्तु इनमेंसे कोई भी उसका कर्मफल नहीं बँटाता। उसे अपना कर्म स्वयं ही भोग करना पड़ता है। हे बन्धो! यदि एक मनुष्य दूसरेका दुःख बँटा सकता हो, तो विवेकी पुरुषको चाहिये, कि अपने माता पिताके लिये वह अपना प्राण तक दे दे, परन्तु पुत्रादि होनेपर भी प्राणीको जन्म, जरा और मृत्युका दुःख तो

स्वयं ही भोगना पड़ता है। इससे कोई किसीकी रक्षा नहीं कर सकता। यदि आप यह कहें कि पुत्र पिताकी दृष्टिको आनन्द देनेवाले होते हैं, तो मैं कहूँगा कि महानेमि आदिक मेरे कई भाई इस कार्यके लिये विद्यमान हैं। मैं तो बुढ़े मुसाफिरकी भाँति इस संसार मार्गके गमनागमनसे ऊब गया हूँ। इसीलिये मैं उसके हेतुरूप कर्मोंका अब नाश करना चाहता हूँ। परन्तु दीक्षाके बिना यह नहीं हो सकता, इसलिये सर्व प्रथम मैं उसीको ग्रहण करने जा रहा हूँ। हे बन्धो! आप अब मेरे इस कार्यमें व्यर्थ ही बाधा न दीजिये।"

इधर राजा समुद्रविजय भी यह बातें सुन रहे थे, इसलिये वे नेमिसे कहने लगे :—"प्यारे पुत्र! तुम तो गर्भसे ही ईश्वर हो, किन्तु तुम्हारा शरीर अत्यन्त सुकुमार है, तुम इस व्रतका कष्ट किस प्रकार सहन करोगे? हे पुत्र! ग्रीष्मकाल की कड़ी धूपका सहना दूर रहा, तुम तो अन्य ऋतुकी साधारण धूप भी बिना छातेके सहन नहीं कर सकते। भूख प्यासका परिषह वे लोग भी सहन नहीं कर सकते, जो अत्यन्त परिश्रमी और कष्ट

सहिष्णु होते हैं, तब इस देवभोगके योग्य शरीरसे तुम इन्हें कैसे सहन करोगे ?"

नेमिकुमारने कहा—"पिताजी ! उत्तरोत्तर दुःखों के समूहको भोगते हुए नारकी जीवोंको जाननेवाले पुरुष क्या इसे दुःख कह सकते हैं ? तपके दुःखसे तो अनन्त सुख देनेवाले मोक्षकी प्राप्ति होती है और विषय-सुखसे तो अनन्त दुःखदायी नरक मिलता है। इसलिये आपही विचार करके बतलाइये कि मनुष्यको क्या करना उचित है ? विचार करने पर यह तो सभी समझ सकते हैं कि क्या भला और क्या बुरा है, किन्तु दुःखका विषय यह है कि विचार करनेवाले विरले ही होते हैं।"

नेमिकुमारकी यह बातें सुनकर उनके माता पिता, कृष्ण, बलराम तथा समस्त स्वजनोंको विश्वास हो गया, कि वे अब दीक्षा लिये बिना नहीं रह सकते, इसलिये सब लोग उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। किन्तु नेमि-कुमार तो कुञ्जर की भाँति स्नेह-बन्धनोंको छिन्न भिन्न कर अपने वासस्थानको चले गये। यह देख, लोकान्तिक देवोंने प्रभुके पास आकर कहा :—"हे नाथ !

अब आप तीथ प्रवर्तित कीजिये।" इसके बाद इन्द्रके आदेशानुसार जम्भक देवताओंके भरे हुए द्रव्यसे भगवान वार्षिक दान देने लगे।"

उधर राजीमतीने जब सुना कि नेमिकुमार दीक्षा लेना चाहते हैं और इसीलिये वे द्वार परसे लौटे जा रहे हैं, तब वह व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। यह देख कर उसकी सखियाँ अत्यन्त चिन्तित हो गयीं। उन्होंने समुचित उपचार कर शीघ्र ही उसे सावधान किया। उस समय राजीमतीके युगल कपोलों पर केश लटक रहे थे और अश्रुओंसे उसकी कञ्चुकी भीग गयी थी। होशमें आते ही उसे सब बातें फिर स्मरण हो आयीं, और वह विलाप करते हुए कहने लगी—"हा दैव! मैंने तो कभी स्वप्नमें भी यह मनोरथ नहीं किया था कि नेमिकुमार मेरे पति हों। फिर तूने किसकी प्रार्थनासे उनको मेरा पति बनाया? और यदि उनको मेरा पति बनाया, तो असमयमें वज्रपात की भाँति तूने यह विपरीत घटना क्यों घटित कर दी? निःसन्देह तू महा कपटी और विश्वास घातक है। मैंने तो अपने

भाग्य विश्वाससे पहले ही यह जान लिया था कि कहाँ परम प्रतापी नेमिकुमार और कहाँ हतभागिनी मैं ? मेरा और उनका योग कैसा ? परन्तु हे नेमिकुमार ! यदि तुम मुझे अपने लिये उपयुक्त न समझते थे, तो फिर मेरे पाणिग्रहण की बात स्वीकार कर मेरे मनमें व्यर्थ ही मनोरथ क्यों उत्पन्न किया ? हे स्वामिन् ! यदि मनोरथ उत्पन्न किया, तो उसे बीचहीमें नष्ट क्यों कर दिया ? महापुरुष तो प्राण जाने पर भी अपने निश्चयसे नहीं टलते। फिर आपने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया ? हे प्रभो ! यदि आप अपनी प्रतिज्ञासे इस प्रकार विचलित होंगे, तो समुद्र भी अवश्य मर्यादा छोड़ देगा। परन्तु नहीं, मैं भूल करती हूँ, यह आपका नहीं, मेरे ही कर्मका दोष है। मेरे भाग्यमें केवल वचनसे ही आपका पाणिग्रहण बदा था। यह मनोहर मातृगृह, यह रमणीय और दिव्य मण्डप, यह रत्नवेदिका तथा हमारे विवाहके लिये जो जो तैयारियाँ की गयी हैं, वे सब अब व्यर्थ हो गयीं। 'मंगलगानोंमें जो गाया जाता है, वह सब सत्य नहीं होता'—यह

लोकोक्ति भी आज यथार्थ प्रमाणित हो गयी ; क्योंकि पहले आप मेरे पति कहलाये, किन्तु बादको कुछ भी न हो सका। मैंने पूर्व जन्ममें दम्पतियोंका वियोग किया होगा, इसीलिये इस जन्ममें मुझे आपके समागमका सुख उपलब्ध न हो सका !"

इस प्रकार विलाप करती हुई राजीमती पुनः जमीन पर गिर पड़ी। होश आने पर उसने अपनी छाती पीटते पीटते अपना हार तोड़ डाला और अपने कङ्कण भी फोड़ डाले।

उसकी यह व्याकुलता देखकर उसकी सखियोंने नेमिकुमार की ओरसे उसका ध्यान हटानेके उद्देशसे कहा :—"हे सखी ! नेमिनाथका स्मरण कर अब तुम व्यर्थ ही अपने जीको दुःखित क्यों करती हो ? उससे अब तुम्हें प्रयोजन ही क्या है ? वह तो स्नेह रहित, स्पृहा रहित, और लोक व्यवहारसे विमुख है। जिस तरह जंगलके पशु बस्तीसे डरते हैं, उसी तरह वह भी गार्हस्थ्य जीवनसे डरता है। वह दाक्षिण्य रहित, स्वेच्छाचारी और निष्ठुर था। यदि चला गया तो उसे जाने दो।

यह अच्छा हुआ, जो उसके गुण आरम्भमें ही प्रकट हो गये। व्याहके बाद यदि उसने ऐसी निष्ठुरता दिखलायी होती, तो निःसन्देह वह कुएँमें उतार कर रस्सी काट देनेका सा काय होता। अब उसे जाने दो। शाम्ब, प्रद्युम्न आदि और भी अनेक राजकुमार हैं। उनमेंसे जिसके साथ इच्छा हो, उसके साथ तुम्हारा व्याह किया जा सकता है। हे सखी! संकल्प मात्रसे तुम नेमिको दी गयी थीं, परन्तु उसके स्वीकार न करने पर तुम अब भी कन्या ही हो!"

सखियोंके यह वचन राजीमतीको बहुत ही अप्रिय मालूम हुए। उसने क्रुद्ध होकर कहा :—"तुमलोग कुलटाकी भाँति कुलको कलङ्कित करनेवाली यह कैसी बातें कहती हो? नेमि तो तीनों लोकमें उत्कृष्ट हैं। संसारमें क्या कोई भी पुरुष उनकी बराबरी कर सकता है? और यदि कर भी सकता हो, तो उनसे मुझे क्या प्रयोजन?—क्योंकि कन्यादान एक ही बार किया जाता है। मैंने मन और वचनसे नेमिकुमारको ही पति माना था और उन्होंने भी गुरुजनोंके अनुरोधसे मुझे

राजकन्याने दीक्षा ली। उसे स्वामीने प्रवर्तिनीके पद पर स्थापित किया। दस दशार्ह, बलराम, कृष्ण, राजा उग्रसेन, प्रद्युम्न तथा शाम्ब आदिकने श्रावक धर्म स्वीकार किया। शिवादेवी, रोहिणी, देवकी, रुक्मिणी आदि रानियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंने भी श्रावक धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार समवसरणमें प्रभुका संघ हुआ। दूसरे दिन सुबह प्रथम पोरुषीमें प्रभुने उपदेश दिया और द्वितीय पोरुषीमें वरदत्त गणधरने धर्मोपदेश दिया। इसके बाद शक्रादि देवता तथा कृष्णादिक राजा भगवानको वन्दन कर अपने अपने वासस्थानको चले गये।

तदनन्तर उसी तीर्थमें गोमेध नामक भगवानका एक शासनदेव उत्पन्न हुआ और अम्बिका नामक उनकी एक शासनदेवी उत्पन्न हुई। गोमेधके तीन मुख, वर्ण श्याम, पुरुष वाहन, दाहिनी ओरके तीन हाथोंमें बीज पूर (बिजौरा)। परशु और चक्र नामक तीन आयुध तथा बायीं ओरके तीन हाथोंमें नकुल, त्रिशुल और शक्ति नामक आयुध थे। अम्बिकाकी कान्ति सुवर्ण समान, सिंह वाहन, दाहिनी ओरके दो हाथोंमें आम्रका

गुच्छ, और पाश तथा बायीं ओरके दोनों हाथोंमें नर-मुण्ड और अंकुश शोभित हो रहे थे। अम्बिकाका दूसरा नाम कुष्माण्डी भी था।

इस प्रकार देव देवीसे अधिष्ठित नेमिनाथ भगवानने दो ऋतुओंके चार मास (वर्षाकाल) उपवनमें व्यतीत किये। इसके बाद वे अन्य देशकी ओर विहार कर गये।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

द्रौपदी-हरण

इधर पञ्च पाण्डवों पर जबसे कृष्णकी कृपादृष्टि हुई, तबसे उनके समस्त दुःख दूर हो गये। अब वे आनन्द-पूर्वक हस्तिनापुरमें रहते हुए द्रौपदीके साथ भोगविलास करते थे। एकदिन कहींसे घूमते धामते नारदमुनि द्रौपदीके घर आ पहुँचे। द्रौपदीने उनको विरक्त समझ कर न तो उनको सम्मान ही दिया, न उनका आदर-

सत्कार ही किया। इससे नारद मुनि क्रुद्ध हो उठे और द्रौपदीको किसी विपत्तिमें फँसानेका विचार करते हुए उसके महलसे बाहर निकल आये।

नारदने सोचा कि यदि किसीके द्वारा द्रौपदीका हरण करा दिया जाय तो मेरी मनोकामना सिद्ध हो सकती है। परन्तु पाण्डव कृष्णके कृपापात्र थे, इसलिये नारद यह अच्छी तरह समझते थे कि उनके भयसे भरत-क्षेत्रमें कोई द्रौपदीका हरण करनेको तैयार न होगा। निदान, बहुत कुछ सोचनेके बाद वे धातकी खण्डके भरतक्षेत्रमें गये। वहाँपर अमरकंका नगरीमें पद्मनाभ नामक राजा राज्य करता था; जो चम्पा नगरीके स्वामी कपिल वासुदेवका सेवक था। नारदको देखते ही वह खड़ा हो गया और उनका आदर सत्कार कर उन्हें अपने अन्तःपुरमें लिवा ले गया। वहाँ अपनी रानियोंको दिखाकर उसने नारदसे पूछा :—"हे नारद! क्या ऐसी सुन्दर स्त्रियाँ आपने और भी कहीं देखी हैं?"

नारदमुनिने हँसकर कहा :—"हे राजन्! कूप-मण्डूककी भाँति तुम इन स्त्रियोंको देखकर व्यर्थही

आनन्दित होते हो। जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें हस्तिनापुर नामक एक नगर है। वहाँके पञ्च पाण्डवोंकी पटरानी द्रौपदी इतनी सुन्दर है, कि उसके सामने तुम्हारी यह सब रानियाँ दासी तुल्य प्रतीत होती हैं।"

इतना कह नारद तो अन्तर्धान हो गये, परन्तु पद्मनाभके हृदयमें इतनेहीसे उथलपुथल मच गयी। वह द्रौपदीको अपने अन्तःपुरमें लानेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठा। परन्तु द्रौपदीको लाना कोई सहज काम न था। इसलिये वह अपने पूर्वपरिचित एक पातालवासी देवकी आराधना करने लगा। आराधनासे प्रसन्न हो, उस देवने प्रकट होकर पूछा :—"हे पद्मनाभ! तुमने मुझे किसलिये याद किया है?"

पद्मनाभने कहा :—"नारद मुनिने जबसे द्रौपदीके रूपकी प्रशंसा की है तभीसे मैं उसपर अनुरक्त हो रहा हूँ। अतएव आप मुझपर दयाकर, जैसे भी हो, उसे मेरे पास ला दीजिये।"

देवने कहा :—"द्रौपदीकी गणना महासतियोंमें की जाती है। यह पाण्डवोंके सिवा स्वप्नमें भी अन्य

चाहे उन्होंने दीक्षा ले ली हो, मेरे लिये वह सब समान हैं। किन्तु दुःखका विषय यह है, कि तुममेंसे एकको भी मैं अपनी गोदमें बैठा कर तुम्हारा दुलार नहीं कर सकी।"

इस पर भगवानने कहा :—"हे देवकी! इस बातके लिये तुझे वृथा खेद न करना चाहिये। यह तेरे पूर्व-जन्मके कर्मका फल है, जो इस जन्ममें उदय हुआ है। पूर्व-जन्ममें तूने अपनी सपत्नी (सौत)के सात रत्न ले लिये थे। इससे वह बहुत रोने लगी, तब तूने एक रत्न उसे वापस दे दिया था। यह तेरे उसी कर्मका फल है।"

भगवानके मुखसे यह हाल सुनकर देवकी अपने पूर्व-पापकी निन्दा करती हुई अपने वासस्थानको लौट आयी। किन्तु उसी समयसे उसके हृदयमें एक नयी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी। वह चाहने लगी कि उसके एक और पुत्र उत्पन्न हो, तो उसे खिलाकर वह अपनी साध पूरी कर ले। इसी विचारसे वह रातदिन चिन्तित रहने लगी। उसकी यह अवस्था देखकर एकदिन कृष्णने

पूछा :—"हे माता! कुछ दिनोंसे तुम उदास क्यों रहती हो?"

देवकीने खिन्नता-पूर्वक उत्तर दिया :—"यह मेरा अहो भाग्य है, जो मेरे सभी पुत्र अब तक जीवित हैं, परन्तु मुझे इतनेहीसे सन्तोष नहीं हो सकता। तुम नन्दके गोकुलमें बड़े हुए और तुम्हारे छः भाई सुलसाके यहाँ लालित-पालित हुए हैं। मुझे तो कोयलकी भाँति अपने एक भी पुत्रका लालन-पालन करनेका सौभाग्य प्राप्त न हुआ—मैंने अपने एक भी पुत्रको स्तन-पान न कराया। हे कृष्ण! इसीलिये मेरे हृदयमें एक पुत्रकी इच्छा उत्पन्न हुई है। मैं तो उन पशुओंको भी धन्य समझती हूँ जो अपने बच्चोंको खिलाते हैं। सात पुत्रोंकी माता होकर भी मैं मातृत्वके इस स्वर्गीय सुखसे वंचित रह गयी।"

माताके यह वचन सुनकर कृष्णने उसे सान्त्वना देते हुए कहा :—"हे माता! आप धैर्य धारण करें। मैं आपकी यह इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा।"

इतना कह, कृष्ण माताके पाससे चले आये। इसके

बाद वे शीघ्रही अट्ठम तप द्वारा इन्द्रके सेनापति हरिणीगमेषी देवकी आराधना करने लगे। इसपर हरिणीगमेषीने प्रकट होकर कहा :—"हे कृष्ण! आपकी इच्छानुसार आपकी माताके आठवाँ पुत्र अवश्य होगा, परन्तु पुण्यात्मा होनेके कारण यौवन प्राप्त होते ही वह दीक्षा ले लेगा।"

कृष्णने इसमें कोई आपत्ति न की, इसलिये वह देव कृष्णको वैसा वर देकर अन्तर्धान हो गया। इसके बाद शीघ्रही देवलोकसे एक महर्द्धिक देव च्युत होकर देवकीके उदरसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। देवकीने उसका नाम गजसुकुमाल रक्खा। कृष्णके समान उस देवकुमार जैसे बालकको देवकीने खूब खिलाया और जी भर कर उसका दुलार-प्यार किया। क्रमशः जब वह बालक बड़ा हुआ और उसने युवावस्थामें पदार्पण किया, तब वसुदेवने द्रुम राजाकी प्रभावती नामक सुन्दर कन्यासे उसका विवाह कर दिया। दूसरी ओर कृष्णादिक भाइयोंने तथा माता देवकीने सोमा नामक एक कन्यासे विवाह करनेके लिये उस पर जोर डाला। सोमा

सोमशर्माकी पुत्री थी और एक क्षत्राणीके उदरसे उत्पन्न हुई थी। इच्छा न होने पर भी माता और भाइयोंकी बात माननेके लिये गजसुकुमालको उससे भी व्याह करना पड़ा।

उस व्याहके कुछ ही दिन बाद सहस्राम्रवनमें नेमि-प्रभुका शुभागमन हुआ। उनके आगमन समाचार सुन गजसुकुमाल भी स्त्रियों सहित उनकी सेवामें उपस्थित हो, बड़े प्रेमसे उनका धर्मोपदेश सुनने लगा। धर्मोपदेश सुनकर उसे वैराग्य आगया, फलतः बड़ी कठिनाईसे मातापिता और भाइयोंको समझा कर, उसने दोनों स्त्रियों सहित प्रभुके निकट दीक्षा ले ली। उसके इस कार्यसे उसके मातापिता तथा कृष्णादिक भाइयोंको बड़ाही दुःख हुआ और वे उसके वियोगसे व्याकुल हो विलाप करने लगे।

इसके बाद संध्याके समय भगवानकी आज्ञा लेकर गजसुकुमाल श्मशानमें जाकर कायोत्सर्ग करने लगा। उस समय सोमशर्माने उसे देख लिया। देखते ही उसके बदनमें मानों आग लग गयी। वह क्रोध-पूर्वक अपने

करनेके लिये तुम्हारे साथ उसका विवाह नहीं किया। उसे अब तुम राजकुमारी नहीं, किन्तु अपनी पत्नी समझो और पत्नीकी ही तरह उससे सब काम लो। यदि वह सीधी तरह सब काम न करे तो तुम मार-पीट भी कर सकते हो यदि तुम ऐसा न करोगे, तो मैं तुम्हें कैदखानेमें बन्द करवा दूँगा।

बेचारा वीर अपने भाग्यको कोसता हुआ अपने घर लौट आया। कृष्णकी यह कृपा उसके लिये भार रूप हो पड़ा थी, परन्तु अब क्या, अब तो गले पड़ा ढोल बजानेमेंही शोभा थी। इसलिये घर आते ही उसने केतुमंजरीको एक फटकार सुनाते हुए कहा :—"तू निठल्ली होकर क्या बैठी रहती है? कपड़ोंके लिये जल्दी माड़ बना ला!"

केतुमंजरी तो उसका यह रोब देखकर सन्नाटेमें आ गयी। उसने कहा :—"तू क्या जानता नहीं है, कि मैं कौन हूँ? मुझ पर हुक्म चलानेके पहले आइनेमें अपना मुँह तो देख आ!"

कृष्णने तो वीरसे मारपीट करनेको भी कह दिया

था, इसलिये केतुमंजरीके यह वचन सुनते ही, उसने एक रस्सीसे उसको अच्छी तरह पीट दिया। इससे केतुमंजरीको बड़ाही दुःख हुआ और उसने रोते कलपते अपने पिताके निकट जाकर इसकी शिकायत की। इसपर पिताने कहा :—"बेटी! मैं क्या करूँ? तूने तो स्वयं कहा था, कि मुझे दासी होना पसन्द है, रानी होना नहीं।"

केतुमंजरीने कहा :—पिताजी! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं अब रानी होना पसन्द करती हूँ। मुझे यह दासता न चाहिये।"

कृष्णने कहा :—"बेटी! अब मैं क्या कर सकता हूँ? तुम तो अब वीरके अधिकारमें हो!"

केतुमंजरीने कहा :—"पिताजी! आप सब कुछ कर सकते हैं। जैसे भी हो मुझे इस दुःखसे छुड़ाइये!"

केतुमंजरीकी यह प्रार्थना सुनकर कृष्णको उसपर दया आ गयी। इसलिये उन्होंने वीरको समझाकर, उसे नेमिभगवानके निकट दीक्षा दिलवा दी।

एकबार कृष्ण अपने परिवारके साथ समस्त मुनियों-

का द्वादशावर्त्तवन्दना करने लगे। उस समय समस्त राजा थक कर बीचहीमें बैठ गये, परन्तु कृष्णकी भक्ति और कृपाके कारण वीरको थकावट न मालूम हुई और उसने भी कृष्णकी भाँति द्वादशावर्त्त वन्दनामें सफलता प्राप्त की। वन्दना पूरी होने पर कृष्णने भगवानसे कहा :—"हे भगवन्! तीन सौ साठ संग्राम करने पर मुझे जितनी थकावट न मालूम हुई थी, उतनी यह वन्दना करने पर मालूम होती है!"

कृष्णका यह वचन सुनकर भगवानने कहा :—"तुमने आज बहुत पुण्य प्राप्त किया है और क्षायिक सम्यक्त्व तथा तीर्थंकर नाम कर्म भी उपार्जन किया है। अब तक तुम्हारी आयु सातवें नरकके योग्य थी, परन्तु आजसे वह घटकर तीसरे नरक योग्य हो गयी है। इसी पुण्यके प्रभावसे तुम अन्तमें निकाचित भी कर सकोगे।"

कृष्णने आनन्दित होकर कहा :—"हे नाथ! यदि ऐसी हीं बात है, तो एकबार मैं पुनः वन्दना करूंगा, जिससे मेरी नरकायु समूल नष्ट हो जाय।"

भगवानने कहा :—"अब तो तुम्हारी यह वन्दना द्रव्य वन्दना हो जायगी और फल तो भाव वन्दनासे ही प्राप्त होता है।"

यह सुनकर कृष्णने वैसा करनेका विचार छोड़ दिया। इसके बाद उन्होंने वीरकी वन्दनाका फल पूछा। इसपर भगवानने कहा :—"उसे केवल काय-क्लेशका फल हुआ है, क्योंकि उसने तो तुम्हारा ही अनुकरण किया है।"

इसके बाद कृष्णराज भगवानको वन्दन कर, इन्हीं सब बातों पर विचार करते हुए अपने राज-मन्दिरमें लौट आये।

एकबार नेमिनाथ भगवानने श्रोताओंको धर्मोपदेश देते हुए अष्टमी और चतुर्दशी आदि पर्वदिनोंका माहात्म्य वर्णन किया। उसे सुन, कृष्णने हाथ जोड़कर प्रभुसे पूछा :—"हे स्वामिन्! राज-काजमें व्यस्त रहनेके कारण मैं समस्त पर्व दिनोंकी आराधना नहीं कर सकता, इसलिये मुझे एक ऐसा दिन बतलाइये, जो वर्ष भरमें सर्वोत्तम हो!"

भगवानने कहा :—"ऐसा दिन तो मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीका ही है। उस दिन तीर्थंकरोंके डेढ़ सौ कल्याणक हुए हैं। पूर्वकालमें भी सुव्रत श्रेष्ठी आदिने इसकी आराधना की है।"

कृष्णने पुनः पूछा :—"हे जिनेन्द्र! सुव्रत श्रेष्ठी कौन था?"

भगवानने इस प्रश्नके उत्तरमें सुव्रत श्रेष्ठीका समस्त वृत्तान्त कृष्णको कह सुनाया, जिसे सुनकर उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। इसके बाद कृष्णने एकादशीके तपकी विधि पूछी, जिसके उत्तरमें भगवानने मौन सहित गुणव्रतादि विधिका वर्णन कह सुनाया। सुनकर कृष्णको परम सन्तोष हुआ और उस समयसे वे प्रतिवर्ष अपनी प्रजाके साथ मौन एकादशीके महापर्वकी आराधना करने लगे।"

कृष्णकी एक रानीका नाम ढंढणा था, जिसके उदरसे ढंढण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। युवावस्था प्राप्त होनेपर ढंढणने अनेक राजकुमारियोंके साथ विवाह किया। एक बार भगवानका धर्मोपदेश सुनकर उसे वैराग्य आ गया। इससे कृष्णने उसका दीक्षा महोत्सव

कर, उसे दीक्षा दिला दी। उस दिनसे ढंढण प्रभुके साथ विचरण करने लगा और अपनी धर्मनिष्ठाके कारण वह अनेक साधुओंका प्रियपात्र हो पड़ा।

इतनेमें उसका अन्तराय कर्म उदय हुआ, इसलिये वह जहाँ जहाँ गया, वहीं उसे आहार-पानीकी कुछ भी सामग्री प्राप्त न हो सकी। उसके साथ जितने मुनि गये, उन सबोंको भी इसी तरह निराश होना पड़ा। यह देखकर उन मुनियोंने नेमिभगवानसे पूछा :—"हे स्वामिन्! इस नगरीमें धनीमानी, सेठ साहूकार और धार्मिक तथा उदार पुरुषोंकी कमी नहीं है। फिर भी यहाँपर ढंढण मुनिको भिक्षा नहीं मिलती, इसका क्या कारण है?"

प्रभुने विचार करनेके बाद कहा :—"एक समय मगध देशके धान्यपूरक नामक ग्राममें पराशर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह राजाका प्रधान कर्मचारी था। इसलिये उसने एकदिन ग्राम्य जनोंको बेगारमें पकड़ कर उनसे सरकारी खेत जुतवाये। दो-पहरमें जब भोजनका समय हुआ, तब उन किसानोंके घरसे उनके लिये भोजन आया, परन्तु पराशरने उनमेंसे किसीको

छुट्टी न दी। उसने क्षुधित और तृषित अवस्थामें ही उन किसान और बैलोंसे खेतोंमें एक एक फेरा और लगवाया। इससे उसने अन्तराय कर्म उपार्जन किया। मृत्युके बाद अनेक योनियोंमें भटककर वही पराशर ढंढण हुआ है। इस समय उसका वही कर्म उदय हुआ है, जिससे उसे भिक्षा नहीं मिल रही है।"

भगवानके यह वचन सुनकर ढंढण मुनिको संवेग उत्पन्न हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि आजसे मैं परलब्धि द्वारा प्राप्त आहार ग्रहण न करूँगा। इसके बाद उन्होंने अन्य लब्धिसे आहार न ग्रहण करते हुए कुछ दिन इसी तरह व्यतीत किये।

एकदिन सभामें बैठे हुए कृष्णने भगवानसे पूछा :—"हे भगवन्! इन मुनियोंमें ऐसा मुनि कौन है, जो दुष्कर तप कर रहा हो?

भगवानने कहा :—"यद्यपि यह सभी मुनि दुष्कर तप करनेवाले हैं, किन्तु असह्य परिषहको सहन करनेवाले ढंढण इन सबोंमें श्रेष्ठ हैं।"

इसके बाद भगवानको वन्दन कर कृष्ण आनन्द-

पूवक द्वारिका नगरीमें प्रवेश करने लगे। मार्गमें उनकी दृष्टि ढंढण मुनि पर जा पड़ी, जो उस समय गोचरीके निमित्त नगरमें भ्रमण कर रहे थे। कृष्णने हाथीसे उतरकर अत्यन्त सम्मानपूर्वक उनको वन्दन किया। उनका यह कार्य देखकर एक श्रेष्ठी अपने मनमें कहने लगा कि :—"यह कोई अवश्य ही महान मुनि हैं, तभी तो कृष्ण इनको वन्दन कर रहे हैं।"

इसके बाद गोचरीके निमित्त भ्रमण करते हुए ढंढण मुनि भी उसी सेठके घर जा पहुँचे। सेठने उनका अत्यन्त सत्कार कर भक्तिपूर्वक उनको लड्डू प्रदान किये। ढंढण लड्डू लेकर भगवानके पास आये और उनसे कहने लगे कि :—"हे स्वामिन्! मालूम होता है कि मेरा अन्तराय कर्म क्षीण हो गया है, क्योंकि आज मुझे अपनी लब्धिसे आहार प्राप्त हुआ है।"

भगवानने कहा :—"तुम्हारा अन्तराय कर्म क्षीण नहीं हुआ है। यह तो कृष्णकी लब्धि है। तुमको कृष्णने वन्दन किया था, इसीलिये भद्रकभावी श्रेष्ठीने तुमको आहार दिया है।"

यह सुनकर रागादि रहित ढंढण मुनिने उन लड्डुओंको परलब्धि मानकर उनका त्याग कर दिया। तदनन्तर वे अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! जीवोंके पूर्वोपार्जित कर्म दुरन्त होते हैं।" इसी समय स्थिर ध्यान करते और भवका स्वरूप सोचते सोचते ढंढण मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। फलतः देवताओंने उनकी पूजा की और उन्होंने केवलीकी सभामें स्थान ग्रहण किया।

एकबार नेमि प्रभु ग्राम, और नगरादिकमें विहार करते हुए पापादुर्ग नामक नगरमें जा पहुँचे। वहाँ भीम नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम सरस्वती था, जो राजगृहके राजा जितशत्रुकी पुत्री थी। सरस्वती जन्मसे ही परम मूर्ख थी। इसलिये उसके पतिने भगवानको वन्दन करनेके बाद उनसे प्रश्न किया कि :—"भगवन्! मेरी यह रानी इतनी मूर्खणी क्यों है।" इस पर भगवानने कहा :—"हे राजन्! पूर्व-जन्ममें पद्मराजके पद्मा और चन्दना नामक दो रानियाँ थीं। राजाने एकदिन पद्मासे एक गाथाका अर्थ पूछा,

जिसे पढ़ाने सहर्ष बतला दिया। उस पर पतिका अनुराग देख कर चन्दनाके हृदयमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उसने उस पुस्तकको ही जला दिया। उस जन्ममें वही चन्दना तुम्हारी रानी हुई है और अपने उपरोक्त कर्मके कारण मूर्ख हुई है।" यह सुनकर सरस्वतीने कहा :—"हे भगवन्! मेरा यह ज्ञानान्तराय कर्म कैसे क्षीण हो सकेगा?"

भगवानने कहा :—"ज्ञानपञ्चमीकी आराधना करनेसे।"

तदनन्तर भगवंतके आदेशानुसार सरस्वतीने शीघ्रही ज्ञानपञ्चमीकी आराधना की, जिससे उसका ज्ञानान्तराय कर्म क्षीण हो गया।

इसके बाद वहाँसे विचरण करते हुए भगवान पुनः द्वारिकामें आये। इसी समय वहाँ एकबार अचानक वृष्टि हुई। वृष्टिके पहिले रथनेमि गोचरीके लिये भ्रमण करने निकला था। वहाँसे लौटते समय वह भीग गया और वर्षासे बचनेके लिये एक गुफामें जा छिपा। इसी समय साध्वी राजीमती भी भगवानको वन्दन कर वास-

स्थानकी ओर लौट रही थी। उसके साथकी अन्यान्य साध्वियाँ वृष्टिके भयसे इधर उधर भाग गयीं, किन्तु राजीमती धैर्यपूर्वक एक स्थानमें खड़ी हो गयी। वह उस स्थानमें बहुत देरतक खड़ी रही। उसके सब वस्त्र भीग गये और शरीर शीतके कारण थर थर काँपने लगा, किन्तु फिर भी जब वर्षा बन्द न हुई, तब आश्रय ग्रहण करनेके लिये अनजानमें वह भी उसी गुफामें चली गयी, जिसमें रथनेमि पहलेहीसे छिपा था। वहाँ अन्धकारमें वह रथनेमिको न देख सकी। उसने अपने भीगे हुए वस्त्रोंको खोलकर उन्हें सुखानेके लिये उसी गुफामें फैला दिये। उसको वस्त्र रहित देखकर रथनेमिके हृदयमें दुर्वासनाका उदय हुआ। उसने काम पीड़ित हो राजीमतीसे कहा :—"हे सुन्दरी! मैंने पहले भी तुमसे प्रार्थना की थी, और अब फिर कर रहा हूँ। आओ, हमलोग एक दूसरेको गले लगायें। विधाताने मानो हमारे मिलनके ही लिये हम दोनोंको इस एकान्त स्थानमें एकत्र कर दिया है।"

राजीमती आवाजसे ही रथनेमिको पहचान गयी।

उसने तुरन्त अपने कपड़े उठाकर अपना शरीर ढक लिया। तदनन्तर उसने रथनेमिसे कहा :—"हे रथनेमि! कुलीन पुरुषको ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।" तुम सर्वज्ञ भगवन्तके लघु भ्राता और शिष्य हो। फिर ऐसी कुबुद्धि तुम्हें सूझ रही है? मैं भी सर्वज्ञ कि शिष्या हूँ, इसलिये स्वप्नमें भी तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण नहीं कर सकती। साधु पुरुषको तो ऐसी इच्छा भी न करनी चाहिये, क्योंकि वह नरकमें डालनेवाली है। शास्त्रका कथन है कि चैत्य द्रव्यका नाश करने, साध्वीका सतीत्व नष्ट करने, मुनिका घात करने और जिन शासनकी उपेक्षा करनेसे प्राणी सम्यक्त्वरूपी वृक्षके मूलमें अग्नि डालता है। अगन्धक कुलमें उत्पन्न सर्प, जलती हुई अग्निमें प्रवेश कर सकते हैं, किन्तु खुद वमन किया हुआ विष कदापि पान नहीं कर सकते। परन्तु हे नराधम! तुझे धिक्कार है कि तू अपनी दुर्वासनाको तृप्त करनेके लिये परस्त्रीकी कामना करता है। ऐसे जीवनसे तो तेरे लिये मृत्यु ही श्रेयस्कर है। मैं राजा उग्रसेन की पुत्री और तू राजा समुद्रविजय का पुत्र है। हमें अगन्धक

आये। वहाँ उन्होंने पुनः पहले जैसी घोषणा करायी, जिससे नगरनिवासी धर्मकार्यमें विशेष रूपसे प्रवृत्त रहने लगे।

उधर कुछ दिनोंके बाद द्वैपायन मुनिकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके बाद दूसरे जन्ममें वह अग्निकुमार हुआ। यथा समय पूर्व वैरका स्मरण कर वह द्वारिकामें आया, किन्तु वहाँके लोगोंको चतुर्थ, षष्ठ अष्टमादिक तप तथा देवपूजा आदि धर्म-कार्य करते देख, वह उनका कुछ भी न बिगाड़ सका। इसके बाद अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए उसने ग्यारह वर्षतक वहाँ वास किया। बारहवाँ वर्ष आरम्भ होने पर लोग समझने लगे कि हमारे धर्माचरणसे द्वैपायन पराजित हो गया। यदि इतने दिनोंमें वह हमारा कोई अनिष्ट न कर सका, तो अब उससे डरनेका कोई कारण नहीं।

इस प्रकार विचार कर सब लोग धर्म-कर्म छोड़, इच्छानुसार मद्यमांसका सेवन करने लगे। बस, लोगोंके धर्म-विमुख होते ही द्वैपायनको मौका मिल गया। अब आये दिन द्वारिका नगरीमें नये नये उत्पात होने

लगे। कभी उल्कापात होता, कभी मेघकीसी गर्जना सुनायी देती, कभी भूकम्प होता, कभी सूर्य्यमण्डलसे अग्निवर्षा होती, कभी अचानक सूर्य्य या चन्द्रग्रहण होता, पत्थरकी पुतलियाँ भी अस्वाभाविक रुपसे हास्य करने लगतीं, कभी चित्राङ्कित देव भी क्रोध दिखाते, कभी व्याघ्र आदिक हिंसक पशु नगरमें विचरण करते। और कभी द्वैपायन असुर, भूत, प्रेत तथा वैताल आदिको साथ लेकर चारों ओर घूमता हुआ दिखायी देता। उसी समय स्वप्नमें लोगोंको ऐसा मालूम हुआ मानो उनका शरीर रक्त वस्त्रसे ढका हुआ है और वे कीचड़में सने हुए, दक्षिण दिशाकी ओर खिंचे जा रहे हैं। कृष्ण और बलरामके हल मूशल तथा चक्रादिक अस्त्र भी इसी समय अचानक नष्ट हो गये। इन सब उत्पातोंके कारण नगरमें आतङ्क छा गया और सब लोग समझ गये कि अब विनाशकाल समीप आ गया है।

उपरोक्त प्रकारके आरम्भिक उपद्रवोंके बाद द्वैपायनने शीघ्र ही संवर्तक वायु उत्पन्न किया। इस वायुके कारण चारों ओरसे न जाने कितना तृणकाष्ट द्वारिका

नगरीमें खिंच कर इकट्ठा हो गया। प्राण भयसे जो लोग भागकर नगरके बाहर चले गये थे, वे भी सब इस वायुसे खिंच कर नगरमें आ पड़े। इस प्रकार अगणित वृक्ष, बहत्तर कोटि नगर निवासी और साठ कोटि आस-पासके लोगोंको द्वारिकामें एकत्र कर द्वैपायनने उसमें आग लगा दी।

प्रलयकालके वायुसे प्रेरित और निबिड़ धूम्रसमूहसे संसारको अन्ध बनानेवाली वह अग्नि देखते ही देखते चारों ओर फैल गयी और समूची नगरी धाँय धाँय जलने लगी।

एक ओर वायुका प्रबल तूफान, दूसरी ओर अन्ध बनानेवाला धुआँ और तीसरी ओर आगकी भयंकर लपटोंने लोगोंको हत बुद्धि बना दिया। उन्हें अपनी रक्षाका कोई भी उपाय न सूझ पड़ा। वे एक दूसरेसे चिपट-चिपट कर जहाँके तहाँ खड़े रह गये और अग्निमें जलजल कर धुएँमें घुट घुट कर अपना प्राण त्याग करने लगे।

बलराम और कृष्णने वसुदेव, देवकी तथा रोहिणी-

का प्राण बचानेके लिये उनको एक रथपर बैठाया, किन्तु असुरद्वारा स्तम्भित होनेके कारण उसके अश्व और बैल अपने स्थानसे एक पद भी आगे न बढ़ सके। यह देखकर कृष्ण और बलराम स्वयं उस रथको खींचने लगे, परन्तु उस स्थानसे आगे बढ़ते ही रथके दोनों पहिये शाखाकी भाँति टूटकर गिर पड़े। यह देखकर वसुदेव आदिक बहुत भयभीत हो गये और 'हे बलराम! हे कृष्ण! हमें बचाओ! हमें बचाओ! आदि कह कह कर करुण-क्रन्दन करने लगे। इससे बलराम और कृष्ण बहुत खिन्न हो गये और किसी तरह अपने सामर्थ्यसे उस रथको नगरके द्वारतक घसीट ले गये। परन्तु वहाँ पहुँचते ही उस असुरने द्वारके किवाड़ बन्द कर दिये। यह देखकर बलरामने उन किवाड़ोंपर इतने वेगसे पाद-प्रहार किया, कि वे तुरन्त चूर्ण विचूर्ण हो गये, किन्तु इतने पर भी वह रथ वहाँसे बाहर न निकल सका और ऐसा मालूम होने लगा, मानो किसीने उसको जकड़ कर पकड़ रक्खा है।

इस पर भी बलराम और कृष्ण उस रथको बाहर

निकालनेकी चेष्टा करने लगे। यह देख, द्वैपायनने प्रकट होकर उनसे कहा :-"अहो! आप लोग मोहमें कितने फँसे हुए हो! मैंने पहलेसे ही कह दिया था कि तुम दोनोंको छोड़कर और कोई जीता न बच सकेगा। फिर यह व्यर्थ चेष्टा क्यों कर रहे हो?"

उसकी यह बातें सुनकर वसुदेव और देवकी आदिने जीवनकी आशा छोड़कर, कृष्ण तथा बलरामसे कहा :- "हे वत्स! तुम दोनों अब हमें यहीं छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाओ और जैसे भी हो, अपनी प्राणरक्षा करो। तुम दोनोंके जीवन समस्त यादवोंके जीवनकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान हैं। तुमने हमारे प्राण बचानेके लिये यथेष्ट चेष्टा की, किन्तु भावीको कौन टाल सकता है? इसे हमलोगोंका दुर्भाग्य ही कहना चाहिये, जो हमलोगोंने नेमिभगवानके निकट दीक्षा न ले ली। तुम लोग खुशीसे जाओ, हमलोग अब अपने कर्मका फल यहींपर भोग करेंगे।

मातापिताके यह वचन सुनकर कृष्ण और बलरामका शोकसागर और भी उमड़ पड़ा। वे वहीं खड़े होकर

दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाने लगे। किन्तु वसुदेव, देवकी और रोहिणीने उनकी ओर ध्यान न देकर कहा :- "अब हम त्रिगजतके गुरु नेमिनाथकी शरण स्वीकार करते हैं। हमने इसी समय चतुर्विध आहारका प्रत्याख्यान किया है। हमलोग अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और आर्हत धर्मकी शरणमें हैं। अब इस संसारमें हमारा कोई नहीं और हम किसीके नहीं।"

इस प्रकार आराधना कर वे सब नमस्कार मन्त्रका स्मरण करने लगे। यह देख, द्वैपायनने उन तीनोंपर मेघकी भाँति अग्नि वर्षा की, जिससे मृत्यु प्राप्त कर वे स्वर्गके लिये प्रस्थान कर गये।

अब कृष्ण और बलरामके दुःखका वारापार न रहा। वे दोनों नगरके बाहर एक पुराने बागमें गये। वहाँसे वे दोनों जलती हुई नगरीका हृदयभेदक दृश्य देखने लगे। उस समय माणिक्यकी दीवालें पाषाणके टुकड़ोंकी तरह चूर्ण हो रही थीं, गोशीर्षचन्दनके मनोहर स्तम्भ धाँय धाँय जल रहे थे, किलेके कंगूरे भयंकर शब्दके साथ टुट टुट कर गिर रहे थे, बड़े बड़े मन्दिर और प्रासाद

भस्म हो होकर मिट्टीमें मिल रहे थे, चारों ओर अग्निकी भयंकर लपटोंके सिवा और कुछ भी दिखायी न देता था। प्रलयकालके समुद्रकी भाँति उस समय समूचे नगर पर अग्निकी लपटें हिलोरें मार रही थीं। द्वारिका नगरीके समस्त लोग अपनी समस्त सम्पत्तिके साथ उसीमें विलीन हो रहे थे। उस समय उनका चित्कार सुननेवाला या उनके प्रति सहानुभूति दिखानेवाला कोई भी न था।

नगर और नगरनिवासियोंकी यह अवस्था देखकर कृष्णका हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने बलरामसे कहा :—"अहो! मुझे धिकार है कि नपुंसककी भाँति इस समय मैं तटस्थ रहकर अपनी जलती हुई नगरीको देख रहा हूँ। मैं इस समय जिस प्रकार नगरीकी रक्षा करनेमें असमर्थ हूँ, उसी प्रकार इस प्रलयकारी दृश्यको देखनेमें भी असमर्थ हूँ। इसलिये हे आर्य! शीघ्र कहो, कि इस समय हमें कहाँ जाना चाहिये? मुझे तो इस विपत्तिकालमें कोई भी अपना मित्र नहीं दिखायी देता।"

बलरामने कहा :—"हे बन्धो! ऐसे समयमें

विचलित न होकर धैर्यसे काम लो। पाण्डव लोग हमारे मित्र और आत्मीय हैं। वे हमें भाईकी ही तरह प्रेम करते थे। इसलिये चलो, हमलोग इस समय उन्हींके यहाँ चलकर आश्रय ग्रहण करेंगे।"

कृष्णने कहा :—"भाई मैंने तो उन लोगोंको देशसे निर्वासित कर दिया था, इसलिये मुझे वहाँ जाते हुए लज्जा मालूम होती है। अब मैं कौन मुँह लेकर उनके यहाँ जाऊँगा ?

बलरामने कहा :—"आप इस संकोचको हृदयसे निकाल दीजिये। सज्जन पुरुष अपने हृदयमें सदा उपकारको ही धारण करते हैं और अपकारको कुस्वप्नकी भाँति भुला दिया करते हैं। पाण्डव भी सज्जन हैं। आपने उन पर अनेक उपकार किये हैं। इसलिये इस विपत्ति कालमें वे अपकार न कर, सत्कार ही करेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे कभी अकृतज्ञ न होंगे, इसलिये आप लज्जा-संकोच छोड़ कर उन्हींके यहाँ चलना स्थिर कीजिये।"

कृष्णने व्यथित हृदयसे बलरामका यह प्रस्ताव

स्वीकार कर लिया। उन्होंने अन्तिम बार अपनी प्राण-प्रिय नगरी पर एक दृष्टि डाली। इसके बाद वे बलरामके साथ पाण्डु-मथुराके लिये अग्नि कोणकी ओर चल पड़े।

कृष्णके चले जानेपर भी द्वारिका नगरी उसी तरह धाँय धाँय जलती रही। इस विपत्तिका शिकार होने-वालोंमें बलरामका एक पुत्र कुब्जवारक भी था। वह चरम शरीरी था। उसने राजमहलकी अट्टालिका पर चढ़, दोनों हाथ उठा, उच्च स्वरसे कहा :—"इस समय मैं नेमिनाथ भगवानका शिष्य हूँ। कुछ समय पहले भगवानने मुझे चरम शरीरी और मोक्षगामी बतलाया था। यदि जिनाज्ञा सच है, तो यह अग्नि मुझे क्यों जला रही है?"

उसके यह वचन सुनते ही जृम्भक देव उसे उठाकर प्रभुके पास ले गये। उस समय नेमिनाथ भगवान पल्लव देशमें विराजमान हो रहे थे। वहाँ पुण्यात्मा कुब्जवारकने दीक्षा ले ली। उसके सिवा नगरमें जितने मनुष्य थे, वे सभी उसमें स्वाहा हो गये। बलराम और कृष्णकी जिन स्त्रियोंने दीक्षा न ली थी, उन्होंने भी

विलाप करते रहे, किन्तु जब अपने स्थानसे न उठे, तब बलराम मोहके कारण उनके मृत शरीरको कन्धे पर उठा, गिरि-गुहा और वनादिकमें भ्रमण करने लगे। दिनमें एकबार पुष्पादिक द्वारा उस शरीरकी पूजा कर देना और फिर उसे कन्धे पर लिये लिये दिन भर घूमते रहना यही बलरामका नित्यकर्म हो गया। इसी अवस्थामें उन्होंने छः मास व्यतीत कर दिये।

धीरे धीरे वर्षाकाल आ गया, किन्तु बलरामकी इस नित्यचर्यामें कोई परिवर्तन न हुआ। बलरामके मित्र सिद्धार्थ सारथीको इसके पहले ही देवत्व प्राप्त हो चुका था, उसे अवधि ज्ञानसे यह सब हाल मालूम हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा :—"अहो! भ्रातृवत्सल बलराम कृष्णके मरे हुए शरीरको उठाकर चारों ओर घूम रहा है। उसे उपदेश देकर उसका मोह दूर करना चाहिये। उसने दीक्षा लेनेकी आज्ञा देते समय मुझसे उपदेश देनेकी प्रार्थना भी की थी। इसलिये मुझे अब अपना कर्त्तव्य अवश्य पालन करना चाहिये।"

यह सोचकर सिद्धार्थने पत्थरका एक रथ बनाया

संसारमें कहीं नहीं देखा। पाषाणमें क्या कभी कमल ऊग सकते हैं?"

मनुष्य वेशधारी सिद्धार्थने उत्तर दिया :—"यदि आपका यह लघु भ्राता जीवित हो सकता है, तो पाषाणमें कमल क्यों नहीं ऊग सकते?"

बलराम इस उत्तर पर विचार करते हुए चुपचाप वहाँसे आगे बढ़ गये। कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि एक मनुष्य जले हुए वृक्षको सींच रहा है। यह देख, बलरामने कहा :—"हे बन्धो! यह व्यर्थ परिश्रम क्यों कर रहे हो? क्या जला हुआ वृक्ष, हजार सींचने पर भी कभी विकसित हो सकता है?"

मनुष्य वेशधारी सिद्धार्थने उत्तर दिया :—"यदि तुम्हारे कन्धेका शव जीवित हो सकता है, तो यह वृक्ष क्यों नहीं पल्लवित हो सकता?" बलराम पुनः निरुत्तर हो गये।

कुछ आगे बढ़ने पर बलरामने पुनः देखा कि एक मनुष्य कोल्हूमें बालू भर कर उसे पेर रहा है। यह देख, बलरामने पूछा :—"क्यों भाई! इसमेंसे क्या तेल निकल

पर एक स्त्री अपने बालकके साथ जल भरने आयी थी। बलरामका अलौकिक रूप देखकर उसका चित्त अस्थिर हो गया और वह घड़ेके बदले उस बालकके गलेमें रस्सी बाँधकर, उसे उस कुएंमें डालने लगी। उसका यह कार्य देखकर बलराम अपने मनमें कहने लगे :—"अहो! मेरे इस रूपको धिक्कार है, कि जिसको देखकर इस अबलाके चित्तमें चंचलता उत्पन्न हो गयी है। अब आज से मैं किसी भी ग्राम या नगरमें प्रवेश न करूँगा और वनमें काष्टादिक लेनेके लिये जो लोग आयेंगे, उन्हींसे भिक्षा माँगकर वहीं पारण कर लिया करूंगा। ऐसा करनेसे भविष्यमें किसी प्रकारका अनर्थ तो न होगा।"

इसके बाद उस स्त्रीको उपदेश देकर बलराम वनको चले गये और वहाँ पुनः मास क्षमणादिक दुस्तप तप करने लगे। पारणके समय तृण काष्टादिक संग्रह करने वाले उन्हें जो कुछ दे देते, उसीसे वे पारण कर लिया करते थे इससे उनके चित्तको परम सन्तोष और शान्ति मिलती थी।

कुछ दिनोंके बाद तृण काष्टादिक संग्रह करनेवालोंने

बलराम की इस तपस्याका हाल अपने अपने राजासे कहा। इसपर सभी राजा चिन्तित हो उठे और कहने लगे कि हमारा राज्य छीननेके लिये ही तो कोई यह तप नहीं कर रहा है? उन लोगोंमें अधिक विचार शक्ति न थी, इसलिये उन्होंने स्थिर किया कि उसे मारकर सदाके लिये यह चिन्ता दूर कर देनी चाहिये। निदान, उन सबोंने एक साथ मिलकर अपनी अपनी सेनाके साथ, उस वनके लिये प्रस्थान किया। जब वे बलराम मुनिके पास पहुँचे, तब उनके रक्षपाल सिद्धार्थने अनेक भयंकर सिंह उत्पन्न किये, जिनकी गर्जना से सारा वन प्रतिध्वनित हो उठा। राजागण इसे मुनिराजका प्रताप समझ कर बहुत ही लज्जित हुए और उनसे क्षमा प्रार्थना कर अपने अपने स्थानको वापस चले गये।

इस दिनसे बलराम आसपासके स्थानोंमें नरसिंह मुनिके नामसे सम्बोधित किये जाने लगे। उनकी तपस्या और उनके धर्मोपदेशके प्रभावसे सिंहादिक हिंसक पशुओंको भी आन्तरिक शान्ति प्राप्त हुई। उनमेंसे अनेक श्रावक हुए, अनेक भद्रक हुए, अनेकने कोयोत्सर्ग

किया, और अनेकने अनशन किया। मांसाहारसे तो प्रायः सभी निवृत्त हो गये और तिर्यञ्च रूपधारी शिष्यों की भाँति वे महामुनि बलरामके रक्षक होकर सदा उनके निकट रहने लगे।

जिस वनमें बलराम तपस्या करते थे, उसी वनमें एक मृग रहता था। वह बलरामके पूर्वजन्मका कोई सम्बन्धी था। जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होनेके कारण उसे अत्यन्त संवेग उत्पन्न हुआ था, फलतः वह बलराम-का सहचारी बन गया था। बलराम मुनिकी उपासना कर, वह हरिण वनमें घूमा करता और अन्न सहित तृण काष्टादिक संग्रह करनेवालोंको खोजा करता। यदि सौभाग्यवश, कभी कोई उसे मिल जाता, हो वह ध्यानस्थ बलराम मुनिके चरणों पर शिर रखकर, उन्हें इसकी सूचना देता। बलराम भी उसका अनुरोध मानकर, क्षण भरके लिये ध्यानको छोड़, उस अग्रगामी हरिणके पीछे पीछे उस स्थान तक जाते और वहाँसे भिक्षा ग्रहण कर अपने वासस्थानको लौट आते।

एकबार अच्छे काष्टकी तलाश करते हुए कई रथकार

भी अभ्यास किया। कुछ दिनोंके बाद उन्हें नेमि भगवानको वन्दन करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई, इसलिये वे पृथ्वी पर विचरण करते हुए नेमि भगवानके प्रवास स्थानकी ओर विहार कर गये।

उस समय नेमिभगवान मध्य देशादिमें विहार कर उत्तर दिशामें राज-गृहादिक नगरोंमें विचरण कर रहे थे। वहाँसे हीमान पर्वत पर जा, अनेक म्लेच्छ देशोंमें विचरण कर भगवानने वहाँके अनेक राजा तथा मन्त्री आदिको धर्म्मोपदेश दिया। इस प्रकार आर्य-अनार्य देशका भ्रमण समाप्त कर वे फिर हीमान पर्वत पर लौट आये। वहाँसे वे किरात देशमें गये। इसके बाद हीमान पर्वतसे उतर कर उन्होंने दक्षिण देशमें विचरण किया। इस प्रकार केवल ज्ञानकी उत्पत्तिसे लेकर इस समय तक उनके धर्मोपदेशसे अठारह हजार साधु, चालीस हजार साध्वियाँ, ४१४ पूर्वधारी, १५०० अवधिज्ञानी, १५०० वैक्रियलब्धिवाले और केवल ज्ञानी, १००० मनःपर्यव-ज्ञानी, ८०० वादी, १ लाख ६९ हजार श्रावक तथा ३ लाख ४९ हजार श्राविकाएँ हुईं।